गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष: 40, 41 सितंबर 2017-फरवरी 2018 (संयुक्तांक)

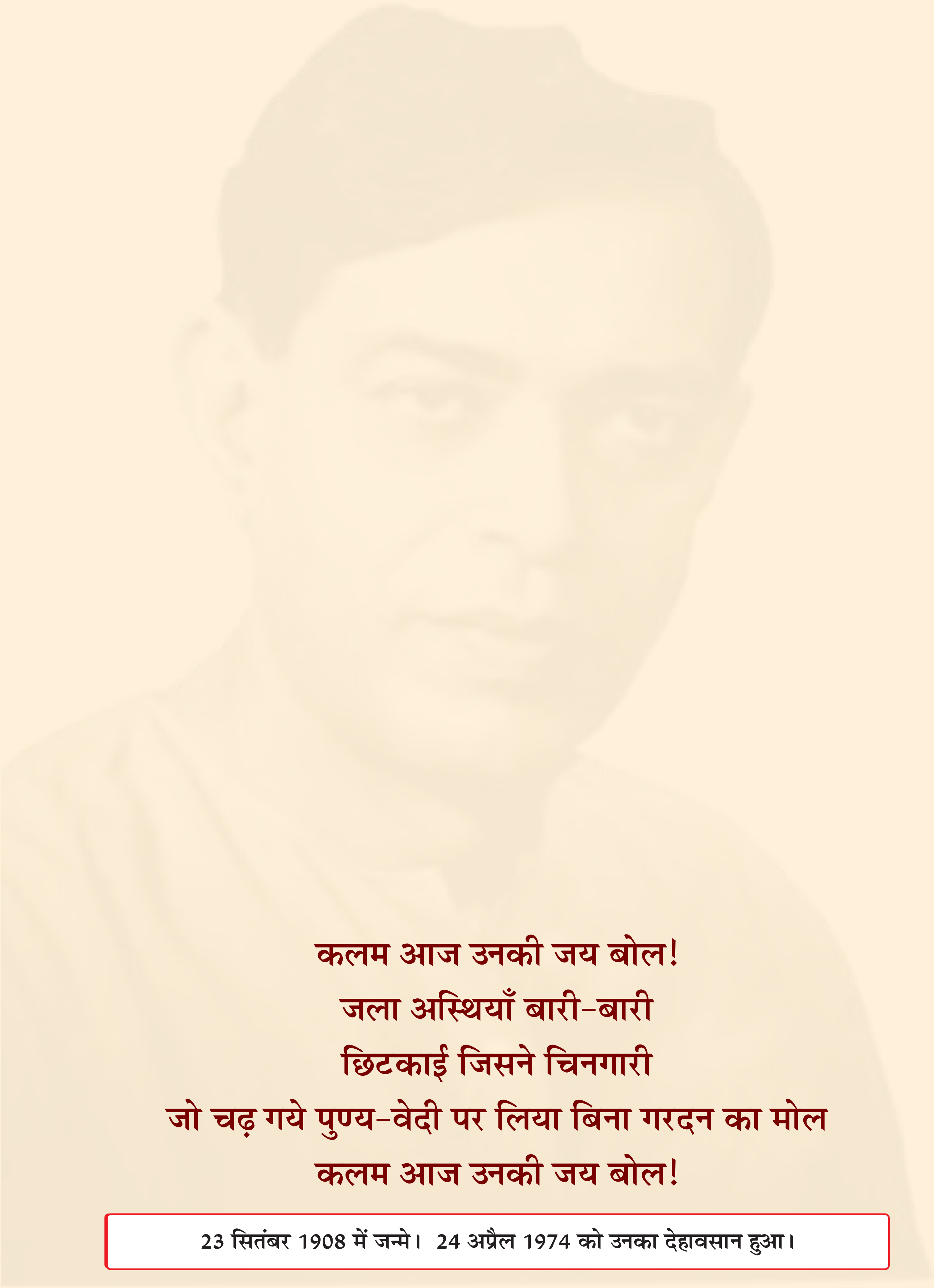

कलम आज उनकी जय बोल!

जला अस्थियाँ बारी-बारी

छिटकाई जिसने चिनगारी

जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिया बिना गरदन का मोल

कलम आज उनकी जय बोल!

23 सितंबर 1908 में जन्मे। 24 अप्रैल 1974 को उनका देहावसान हुआ।

गगनांचल

सितंबर 2017-फरवरी 2018 (संयुक्तांक)

प्रकाशक
रीवा गांगुली दास
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली

संपादक
डॉ. हरीश नवल

सह संपादक
डॉ. आशीष कंधवे

ISSN : 0971-1430

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002
ई-मेल: **spdawards.iccr@gov.in**

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों और फोटोग्राफ्स की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

शुल्क दर

वार्षिक	:		₹ 500
		यू.एस.	$ 100
त्रैवार्षिक	:		₹ 1200
		यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : इमेज इंडिया, नई दिल्ली-110002
9953906256

अनुक्रम

हिंदी दिवस

महावीर प्रसाद द्विवेदी होने का अर्थ 5
हेमंत कुकरेती

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का हिंदी साहित्य में योगदान 11
डॉ. महीपाल सिंह राठौड़

राष्ट्रभाषा: उलझा सवाल, नहीं सुलझी बात 13
डॉ. प्रकाश कृष्णा कोपार्डे

हिंदी की राहें 18
सुभाष सेतिया

दक्षिण कोरिया में हिन्दी-शिक्षण 21
द्विवेदी आनन्द प्रकाश शर्मा

हिंदी ग़ज़ल : उच्चारण के आधार पर मान्य शब्द-प्रयोग 25
ज़हीर कुरेशी

मेरी हिन्दी यात्रा 28
सुधीश पचौरी

हिंदी जगत के दिव्यमान नक्षत्र डॉ. प्रभाकर माचवे 32
सुरेंद्र अग्निहोत्री

बॉलीवुड के गीत-संगीत और संवादों के माध्यम से बोलचाल की हिंदी का प्रशिक्षण 35
विजय कुमार मल्होत्रा

गाँधी जयंती

लोकगीतों में गाँधी: चंपारण-सत्याग्रह के संदर्भ में 44
डॉ. धनंजय सिंह

मेरी ज़िंदगी में गाँधी 49
इंदु प्रकाश पांडेय

बाल दिवस

विष्णु प्रभाकर का बाल साहित्य 58
डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

राम नवमी

पंजाब की संत-परंपरा और रामचरित 63
डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

नववर्ष

कालगणना की भारतीय पद्धति 68
प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

अन्य विशेष

लोक के आलोक में रानी रूपमती 72
डॉ. वर्षा नालमे

कृष्णा सोबती: मुहावरों के बावजूद पीड़ा का राग 78
मृदुला गर्ग

भारत की जरूरत है साहित्यिक पर्यटन 82
डॉ. पुनीत बिसारिया

हबीब तनवीर के नाटक में लोक तत्व 86
रैना पी

भावों की गगरी गिरिजा देवी की ठुमरी 91

डॉ. राजेश कुमार व्यास

सार्थक सिनेमा : अब भी संभावना है 94

संजीव श्रीवास्तव

गाँव के रंग हाइकु के संग 98

पूर्वा शर्मा

नर्मदा घाटी का राबिन हुड टंट्या भील 103

डॉ. हीरालाल बाछोतिया

कहानियाँ

एक और इरोस्ट्रेटस 105

मूल लेखक: ज्याँ पाल सार्त्र

अनुवाद: सुशांत सुप्रिय

चेरापूँजी 114

मूल: संयुक्ता महान्ति

भाषांतर: सुरभि बेहेरा

वह एक भला आदमी 120

मूल लेखक: ओ हेनरी

रूपांतर: तरसेम गुजराल

बेटी 122

ओम सपरा

टाईगर हिल 123

निर्मला सिंह

तुम्हारे लिए 129

डॉ. प्रीति

अपने होने का एक दिन 136

जयश्री रॉय

हथेलियों में कंपन 140

तेजेंद्र शर्मा

लघुकथा

दो लघुकथाएँ 148

डॉ. ज्योत्सना शर्मा

शून्य होती संवेदनाएँ 149

अशोक जैन 'पोरवाल'

युक्ति 149

सदाशिव कौतुक

दूध में छौंहुँका 150

मृदुला श्रीवास्तव

आस्था 151

पुष्पेश कुमार पुष्प 151

प्रभात कुमार की दो लघुकथाएँ 152

काव्यनिधि

आधा 153

राजेंद्र उपाध्याय

अशोक वर्मा की तीन ग़ज़लें 154

बचपन का स्कूल 155

डॉ. ब्रिजेश माथुर

तारिक असलम तस्नीम की तीन ग़ज़लें 156

शशिकांत की दो ग़ज़लें 157

भानुमित्र की दो ग़ज़लें 157

पनघट–पनघट प्यास भी... 158

जय चक्रवर्ती

मदन देवड़ा की दो कविताएँ 159

जनार्दन मिश्र की दो कविताएँ 160

दोहे 161

डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल

संजीव निगम के दो गीत 162

गीत 163

डॉ. राजेंद्र मिलन 163

पुष्पिता अवस्थी की दो कविताएँ 164

विवेक गौतम की दो कविताएँ 166

कारोबार 168

मनोज कामदेव

विगत 168

सरिता शर्मा

कुलदीप सलिल की दो ग़ज़लें 169

पंडित सुरेश नीरव की तीन ग़ज़लें 170

व्यंग्य

परीक्षा के साइड इफेक्ट 171

डॉ. अतुल चतुर्वेदी

गंगा का वरदान 172

अनिता उपाध्याय

बनना किस्सागो का व्यंग्यकार 173

दिलीप तेतरबे

एक खुला पत्र 176

अशोक स्वतंत्र

समीक्षा ग्राम

रामदरश मिश्र कृत 'रात सपने में' 178

अलका सिन्हा

राजेन्द्र राजन कृत 'मौन से संवाद' 181

बी.डी. बजाज

राहुल सेठ कृत 'अंतर्ध्वनि, तुम भी ?' 183

डॉ. अवध बिहारी पाठक

डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' कृत 'तेरे चरणों में' 187

डॉ. शकुंतला कालरा

आयोजन

दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी सम्मेलन 190

अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव 191

शशिप्रभा तिवारी

अंततोगत्वा

ईमानदारी एट जिम्मेदारी डॉट कॉम 193

हरीश नवल

प्रकाशकीय

रीवा गांगुली दास
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अभिनंदन आपका!

आपकी शुभकामनाओं से यह पत्रिका शनैः शनैः तीव्र गति पकड़ रही है। नित्य प्रति इसमें प्रकाशित होने को इच्छुक रचनाकारों की संख्या बढ़ती जा रही है—यह संतोष का विषय है। पाठकों के मतों से भी ज़ाहिर है कि उन्हें पत्रिका के स्वरूप में गुणात्मक सुधार दिख रहा है एवं 'अंतर्राष्ट्रीय' प्रतीत हो रहा है। साहित्य की प्रमुख विधाएं 'गगनांचल' में स्थान पा रही हैं।

पाठकों के सुझावों का स्वागत है जिनसे पत्रिका और बेहतर हो सके।

आगामी अंक एक विशिष्ट अंक होगा। ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर मॉरीशस में उसका भव्य लोकार्पण हो सकेगा। विशेषांक का आधार विषय है : 'भारतीय संस्कृतिः विविध आयाम'। आशा और प्रयास है कि यह अंक एक संग्रहणीय अंक बने जिसके लिए संपादकीय टीम सार्थक प्रयास कर रही है।

इस पुनीत यज्ञ में आपकी समिधा का भी स्वागत है।

शुभकामनाओं सहित!

रीवा दास

संपादकीय

हरीश नवल
संपादक

प्रिय पाठक,

'गगनांचल' के अंक आपको संतुष्टि दे रहे हैं, इसका भान पत्रों, सोशल मीडिया, फोनादि द्वारा हमें हो रहा है। धन्यवाद। हम प्रयासरत हैं कि प्रत्येक अंक स्तरीय छपे और आप उससे जुड़ाव महसूस करें।

यद्यपि प्रस्तुत अंक किसी विशेष विषय पर आधारित नहीं है तथापि 'हिंदी दिवस', 'बाल दिवस' 'गांधी जयंती' संदर्भित रचनाएँ इसमें आप पढ़ सकेंगे।

'गगनांचल' में आपको हिंदी, अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं की रचनाएं पढ़ने को उपलब्ध हो सकें, यह ध्यान भी प्राय: प्रत्येक अंक में रखा जाता है। इस अंक में ज्यां पाल सार्त्र की फ्रेंच और ओ. हेनरी की अंग्रेजी कहानियों के रूपांतरों के साथ ओड़िया कहानी का अनूदित रूप आप पढ़ सकेंगे।

'गगनांचल', प्रवासी हिंदी साहित्य के प्रति भी सजग है। इस अंक में आपको इंग्लैंड के हिंदी कथाकार तेजेंद्र शर्मा और नीदरलैंड की हिंदी कवयित्री पुष्पिता अवस्थी की रचनाओं को पढ़ पायेंगे। शेष हिंदी के प्रखर रचनाकारों की रचनाएं सदा की भांति आपके समक्ष होंगी।

अपरिहार्य कारणों से यह अंक भी संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। अगले अंक के पश्चात 'गगनांचल' के अंक नियमित हो सकेंगे, ऐसी आशा है।

कृपया सहयोग बनाए रखिये।

आभार,

महावीर प्रसाद द्विवेदी होने का अर्थ

हेमंत कुकरेती

> *साहित्यिक महत्व की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी की मौलिक रचनाओं की भले ही अधिक महत्ता न रही हो लेकिन एक सफल संपादक, पत्रकार और अनुवादक के रूप में उन्होंने बड़ा काम करते हुए साहित्य की प्रत्येक विधा को प्रभावित किया। उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक पत्रकार, कवि और गद्यकार तैयार किये तथा साहित्य-सृजन में अपनी भूमिका निभा चुकी ब्रजभाषा की जगह पर गद्य एवं पद्य दोनों में नई जनभाषा खड़ीबोली को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने भाषा की अस्थिरता को दूर करते हुए उसे व्याकरणसम्मत बनाया। आधुनिक पैराग्राफ प्रणाली एवं विभक्ति प्रयोग का प्रचार आचार्य द्विवेदी ने किया।*

आधुनिक हिंदी साहित्य का दूसरा चरण द्विवेदी युग कहलाता है। इसकी समयावधि सन् 1900 से 1920 तक मानी जाती है। भारतेंदु युग के समाप्त होते ही हिंदी साहित्य ने फिर करवट ली। उसकी हँसी-दिल्लगी, चुटीलापन, बाल-सुलभ चंचलता और स्वच्छंदता का सम्मोहन धीरे-धीरे लुप्त होने लगे। उसका स्थान अनुशासन, गाम्भीर्य तथा तत्व-चिंतन लेने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन भार स्वीकार करते ही हिंदी साहित्य को एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया।

वे लंबे समय तक 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी का परिष्कार करते रहे। उनकी अनथक कोशिशों से ही गद्य-पद्य दोनों में एक बनती हुई नई साहित्यिक भाषा खड़ीबोली प्रतिष्ठित हो सकी। खड़ीबोली के व्याकरण की रचना, भाषिक परिष्कार और काव्यगत संस्कार का सारा श्रेय आचार्य द्विवेदी और उनके समकालीन कवियों को जाता है। आचार्य द्विवेदी से पूर्व हिंदी में भाषिक अराजकता थी। उसमें बंगला, उर्दू, मराठी, गुजराती, अवधी, ब्रज आदि देसी-विदेशी भाषाओं और बोलियों के शब्दों का अव्याकरणिक और अमानक प्रयोग प्रचुरता से हो रहा था। हिंदी का शब्द भंडार सीमित था। हिंदी वाले इसके लिए संस्कृत या उर्दू-फारसी की तरफ ही देखा करते थे। भारतीय भाषाओं के शब्दों के मनचाहे और अव्याकरणिक इस्तेमाल से हिंदी में भदेसपन झलकने लगा था। आचार्य द्विवेदी ने विशुद्ध व्याकरणसम्मत भाषा लिखने-लिखाने का आंदोलन आरंभ किया। भाषा परिष्कार के इस कार्य में प्रसिद्ध निबंधकार बालमुकुंद गुप्त जैसे कई साहित्यकार आचार्य द्विवेदी से टकराए। इस वाद-विवाद से भाषा सुधार-संबंधी सम्वाद ही आगे बढ़ा।

खड़ीबोली और आचार्य द्विवेदी

भारतेंदु और आचार्य द्विवेदी अपने समय के साहित्यिक नेता रहे। द्विवेदी युग में देसी-विदेशी भाषाओं की रचनाओं का खड़ीबोली में प्रतिष्ठित लेखकों ने बेहतरीन अनुवाद किये। आचार्य द्विवेदी ने अनुवाद की प्रवृत्ति को बढ़वा दिया क्योंकि वे हिंदी को समृद्ध करना चाहते थे। इससे हिंदी साहित्य के विषय और शिल्पगत परिधि व्यापक हुई।

सम्पर्क: ए-3/50, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063,
मो: 9818540187, ई-मेल: hemantkukreti65@gmail.com

भाषा की दृष्टि से द्विवेदी युग सुधारवादी युग माना जाता है। इस युग में ब्रजभाषा का स्थान खड़ीबोली ने ले लिया। आचार्य द्विवेदी ने भाषा-सुधारक की भूमिका निभाते हुए खड़ीबोली को स्वतंत्र अस्तित्व वाली व्याकरणसम्मत और परिमार्जित भाषा बना दिया। उन्होंने खड़ीबोली की देहाती कर्कशता को दूर कर इसे साहित्यिक भाषा बनाने की राह दिखाई। इससे खड़ीबोली सुधर कर काव्यार्थ संपन्न रचनात्मक भाषा बन गई। कविता में राष्ट्रीयता और सुधारवाद की आवाज तेज हुई।

20वीं सदी के पहले दशक में हिंदी पत्रकारिता और खड़ी बोली आंदोलन का समानांतर उभार शुरू हुआ। तब साहित्य और पत्रकारिता एक-दूसरे के पर्याय थे। कहना होगा कि दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ रहे थे। पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्य को सुदृढ़ मंच प्रदान किया। इस दौर में खड़ी बोली आंदोलन का उदय भी हुआ। इसके पीछे भी तत्कालीन पत्रकारिता का अहम रोल था। सन् 1900 में मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। इंडियन प्रेस इलाहाबाद से चिंतामणी घोष ने इसे प्रकाशित किया। इसके प्रकाशन के पीछे उस दौर के प्रमुख पत्रकार रामानंद चटर्जी की प्रखर और सतर्क दृष्टि भी काम की रही थी। वह अध्यापक होने के साथ-साथ इलाहाबाद से 'दासी' और 'प्रवासी' पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से भी जुड़े रहे। रामानंद चटर्जी ने 1907 में ऐतिहासिक महत्व के अंग्रेजी मासिक 'मॉडर्नरिव्यू' का प्रकाशन भी किया। चिंतामणि घोष के पास उस समय का सबसे अच्छा प्रेस था। लेकिन उनकी नजर एक दक्ष संपादक को ढूँढ रही थी। इसीलिए उन्होंने 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से 'सरस्वती' के प्रकाशन का निवेदन किया। यह उस दौर की हिंदी प्रकाशन की दृष्टि से सर्वाधिक प्रतिष्ठित संस्था थी। 'सरस्वती' के संपादन के लिए सभा ने एक समर्थ और सुपठित संपादक मंडल नियुक्त किया जिसमें राधाकृष्ण दास, कार्तिकप्रसाद खत्री, जगन्नाथदास रत्नाकर, किशोरीलाल गोस्वामी और श्यामसुंदर दास थे। ये सभी पत्रकारिता और अकादमिक क्षेत्रों के साथ-साथ प्रशासन और साहित्य से जुड़े हुए विद्वान थे। 1900 से 1903 तक बीच-बीच में आने वाली बाधाओं से टकराती हुई 'सरस्वती' बची रहने के लिए संघर्ष करती रही। साहित्यिक पत्रकारिता को गंभीरता और तल्लीनता से लेने वाले संपादक की खाली जगह 1903 में महावीरप्रसाद द्विवेदी के आने पर भरी।

द्विवेदी पत्रकारिता और आचार्य द्विवेदी

आचार्य द्विवेदी के पत्रकारीय योगदान को समझने के लिए संक्षेप में द्विवेदीयुगीन पत्रकारिता पर सरसरी निगाह डालते हैं। असल में द्विवेदी युग को पत्रकारिता का पूर्व स्वच्छंदतावादी युग कहते हैं। इस दौर में कई राजनीतिक तथा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। कलकत्ता से दो दैनिक पत्र 'कलकत्ता समाचार' तथा 'विश्वामित्र' और दो साप्ताहिक पत्र 'हितवाणी' एवं 'नरसिंह' प्रकाशित होते थे। प्रयाग से दो साप्ताहिक 'अभ्युदय' तथा 'कर्मयोगी' और मासिक 'मर्यादा', 'प्रताप', और 'प्रभा' जैसी पत्र-पत्रिकाएँ उस दौर में छप रही थीं। इनके संपादकों के रूप में मदनमोहन मालवीय और गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे बड़े नाम जुड़े थे। यह मुख्य रूप से राजनीतिक पत्र थे। सन् 1900 में हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना घटी। इलाहाबाद से मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पहले इसका संपादन काशी से होता था। 1903 में आचार्य द्विवेदी इसके संपादक नियुक्त हुए। और समूचे साहित्यिक पत्रकारिता परिसर पर उनका वर्चस्व स्थापित हो गया। वे 1920 तक संपादक बने रहे। कुछ समय तक बाबू श्यामसुंदर दास भी इसके संपादक रहे। आचार्य द्विवेदी के बाद पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी, देवीदत्त शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि इसके संपादक रहे थे।

'सरस्वती' और आचार्य द्विवेदी दोनों व्यक्ति या पत्रिका न होकर भाषा और साहित्य की बड़ी संस्थाएँ थीं। आचार्य द्विवेदी चर्चित नामों से विचलित हुए बिना अपने शर्तों पर रचनाएँ छापते थे। उनके संपादन में द्विवेदीयुगीन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त और छायावादियों में पंत सबसे ज्यादा बाद में छपे जबकि द्विवेदीजी के संपादक रहते हुए निराला की कविताएँ इन पत्रिकाओं में कभी नहीं छपीं।

'सरस्वती' ने नवजागरण के नए विषय प्रस्तावित किये। इससे भाषा और साहित्य में युगांतर हुआ। हिंदी भाषा के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा हुई। साहित्यिक पत्रकारिता कर श्रेष्ठ रूप सामने आया। इससे प्रेरित होकर देवकीनंदन खत्री एवं माधवप्रसाद मिश्र सहसंपादन में बनारस से 'सुदर्शन' जयपुर से गुलेरी के संपादन में 'इंदु' और शाहाबाद से ईश्वरप्रसाद शर्मा के संपादन में 'मनोरंजन' का प्रकाशन हुआ। ये सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पत्रिकाएँ थीं। इनमें तत्कालीन घटनाओं से जुड़ी राजनीतिक

टिप्पणियाँ भी प्रकाशित होती थीं। 'देवनागर' तथा 'सरस्वती' पत्रिकाओं में सभी विषयों के लेख छपते थे। इन साहित्यिक पत्रिकाओं में हिंदी भाषा के परिष्कार तथा गद्य-पद्य की विविध शैलियों और विधाओं के विकास में निर्णायक भूमिका निभाई है।

आचार्य द्विवेदी: सतर्क और तटस्थ संपादक

साहित्यिक महत्व की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी की मौलिक रचनाओं की भले ही अधिक महत्ता न रही हो लेकिन एक सफल संपादक, पत्रकार और अनुवादक के रूप में उन्होंने बड़ा काम करते हुए साहित्य की प्रत्येक विधा को प्रभावित किया। उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से अनेक पत्रकार, कवि और गद्यकार तैयार किये तथा साहित्य-सृजन में अपनी भूमिका निभा चुकी ब्रजभाषा की जगह पर गद्य एवं पद्य दोनों में नई जनभाषा खड़ीबोली को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने भाषा की अस्थिरता को दूर करते हुए उसे व्याकरणसम्मत बनाया। आधुनिक पैराग्राफ प्रणाली एवं विभक्ति प्रयोग का प्रचार आचार्य द्विवेदी ने किया। उन्होंने हिंदी भाषा के संस्कार-परिष्कार का जो व्यापक आंदोलन चलाया था, उसमें कामताप्रसाद गुरू, चंद्रधर शर्मा गुलेरी तथा गौरीशंकर मिश्र ने सक्रिय सहयोग दिया। शांतिप्रिय द्विवेदी सरीखे प्रतिभाशाली लेखकों का जुड़ाव भी 'सरस्वती' पत्रिका के साथ रहा है। इससे हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता का त्वरित विकास हुआ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी 30 रुपये मासिक वेतन और 3 रुपये डाक खर्च के साथ 'सरस्वती' के संपादन से जुड़े। हालाँकि वे रेलवे की अच्छी-खासी नौकरी कर रहे थे। शुरू में उन्होंने झाँसी और बाद में कानपुर से पत्रिका का संपादन किया। प्रारंभिक दौर में गणेश शंकर विद्यार्थी ने कुछ महीने 'सरस्वती' के संपादन में योगदान दिया। लेकिन बाद में वे 'साप्ताहिक अभ्युदय' के सहायक संपादक बनकर प्रयाग चले गए। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी पत्रकारिता, भाषा और साहित्य की सेवा-भावना से संपन्न एक ऐसे संपादक की भूमिका निभाई, जिसके बारे में आज कल्पना करना भी मुश्किल है।

अपने रेलवे कार्यालय में महावीरप्रसाद द्विवेदी सबसे बड़े अधिकारी थे। मिशनरी भावना के चलते 150 रुपये की सरकारी नौकरी छोड़ कर वे आर्थिक मुश्किलों और दूसरे जोखिमों से भरी अस्थाई नौकरी करने के लिए तैयार हो गए। वे 'सरस्वती' के संपादक होने से पहले ब्रजभाषा में कविताएँ लिखते थे। ब्रजभाषा से प्रभावित गद्य में उन्होंने कुछ लेख भी लिखे लेकिन फतहगढ़ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'कवि व चित्रकार' के संपादक कुंदनलाल शर्मा की सलाह पर वे खड़ी बोली में लिखने लगे। शर्मा ने उनसे कहा कि 'यद्यपि ब्रज हमें प्रिय है क्योंकि यह हमारी मातृभाषा है परंतु मातृभाषा के मोह के कारण हमें पूरे देश का हित अनदेखा नहीं करना चाहिये और जिस भाषा में गद्य लिखा और समझा जा रहा है, उसी भाषा में पद्य भी लिखना चाहिये।' (सरस्वती, सन् 1959) यही कारण है कि ब्रजभाषा में 'सरस्वती' के लिए कविताएँ भेजने वाले कवियों मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा इत्यादि की अच्छी रचनाएँ उन्होंने केवल इसलिए सखेद वापस कर दी कि वे खड़ी बोली में नहीं थी। इतना ही नहीं, उन्होंने मानक खड़ीबोली में न होने के कारण और रीतिकालीन विषय-वस्तु के चलते निराला की महत्वपूर्ण रचनाएँ भी पत्रिका में नहीं प्रकाशित की थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ही दृष्टि में परिष्कृत खड़ीबोली में उस समय केवल सुमित्रानंदन पंत की काव्य-रचना कर रहे थे। इसीलिए छायावादी कवियों में 'सरस्वती' में सबसे ज्यादा स्थान और सम्मान के साथ पंत की कविताएँ ही छपी हैं।

'सरस्वती' का वार्षिक सदस्यता शुल्क 3 रुपये और एक प्रति का मूल्य 5 आना था। जनवरी 1900 में प्रकाशित पहले अंक में ही स्पष्ट कर दिया गया था कि यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका है। इसके मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर वीणा वादन करती सरस्वती का चित्र था। दाईं ओर कबीर और सूर, बाईं ओर तुलसी तथा नीचे राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद और भारतेंदु के चित्र थे। इससे पत्रिका की मर्यादावादी छवि का पता चलता है। संत और भक्त कवियों के साथ आधुनिक काल के भारतेंदु जैसे कवि तथा खड़ीबोली के लिए लड़ने वाले सितारेहिंद तो वहाँ मौजूद थे लेकिन अतिशय शृंगारिकता के कारण कोई भी रीतिकालीन रचनाकार पत्रिका के मुख पृष्ठ पर जगह नहीं पा सका। पत्रिका की बाइलाइन थी-'सचित्र हिंदी मासिक पत्रिका (काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन के प्रतिष्ठित)'

'सरस्वती' में ऐसे साहित्यिक लेख छपते थे जिनमें तत्कालीन समाज और संस्कृति से जुड़े मुद्दे रहते थे। राजनीतिक चिंताएँ अप्रत्यक्ष तरीके से इनमें उजागर होती थी। खासकर आज़ादी और दूसरी राजनीतिक चिंताओं से जुड़े साहित्य की समीक्षा से संबंधित लेख उसमें होते थे।

'सरस्वती ने अपने समय के महत्वपूर्ण लेखकों को पुख्ता मंच दिया। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी जैसे उस समय साहित्य-परिसर में नए प्रवेश करने वाले रचनाकारों के अलावा आचार्य द्विवेदी ने अपने हम-उम्र राय देवीप्रसाद पूर्ण, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, नाथूराम शर्मा शंकर के साथ-साथ सय्यद अमीर अली मीर, मन्नन द्विवेदी, मुकुटधर पांडे, रूपनारायण पांडे, सियारामशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, राय कृष्णदास, बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों को प्रतिष्ठित कर दिया।

संपादक के रूप में आचार्य द्विवेदी ने रुचि-परिष्कार के साथ-साथ भाषिक-परिष्कार का भी ध्यान रखा। उन्होंने खड़ीबोली हिंदी की वर्तनी की स्थिरता और शुद्धता पर बल दिया। व्याकरण के धरतल पर वे शास्त्र की हिमायत करते रहे। वे परोक्ष रूप से खड़ीबोली के अपने व्याकरण को भी सामने रख रहे थे। उनका मानना था कि हिंदी प्रदेश के लोग अपनी स्थानीय विभिन्नताओं के कारण जिन क्षेत्रीय बोलियों का इस्तेमाल करते हैं, अगर उन्हें व्याकरणसम्मत किये बिना लिखा जाएगा तो पाठकों को अर्थ संबंधी भ्रम बना रहेगा। इसीलिए वे स्वयं पत्रिका में प्रकाशित होने वाली सामग्री को संशोधित और संपादित करते थे। हिंदी को लिखित मानक रूप देने के लिए उन्होंने एक संपादक के रूप में 17 वर्षों तक लंबा रचनात्मक संघर्ष किया।

भाषा और विषय के धरातल पर आचार्य द्विवेदी लेखकों को ही नहीं, सामान्य पाठकों को भी चर्चा और विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए उकसाते थे। इसके लिए वे विचारोत्तेजक संपादकीय लिखते और उस समय की अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाली रचनाओं तथा पाठ्य-पुस्तकों की स्वयं तर्कसंगत आलोचना करते थे उन्होंने प्रतिष्ठित विद्वानों के लेखन में भाषा-संबंधी त्रुटियों को उजागर किया और साहसपूर्वक उस आलोचना को अलग-अलग मंचों तक संप्रेषित किया। इस संबंध में बड़े कथाकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी के द्विवेदीजी को लिखे 2 पत्र ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। जिसमें उन्होंने आचार्य द्विवेदी से असहमत होते हुए भी उनकी सूक्ष्म संपादकीय दृष्टि की सराहना की-'आपके कार्ड से मालूम होता है कि आपको मेरी भाषा, मेरा तर्ज पसंद नहीं है, पर लेख के प्रति आपकी आसक्ति मालूम होती है।' जैसाकि पहले कहा, व्याकरण और वर्तनी पर आचार्य द्विवेदी विशेष ध्यान देने के लिए ऐसी संपादकीय टिप्पणियाँ लिखा करते थे, जिनसे भाषा-संबंधी विवाद उत्पन्न होते थे। उनका उद्देश्य वैचारिक विमर्श को बढ़ाना था। उस समय के कई चर्चित लेखकों की भाषा-नीति से सहमत नहीं होने और उनके विषय चयन से संतुष्ट न होने के कारण वे उनकी रचनाएँ लौटा देते थे। यही कारण था कि प्रबुद्ध और चर्चित लेखकों का एक बड़ा वर्ग महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा-नीति संपादकीय-विवेक से असहमत होता चला गया।

'सरस्वती' के नवंबर 1905 अंक में आचार्य द्विवेदी ने 'भाषा और व्याकरण' जैसा प्रखर लेख लिखा। इसमें भारतेंदु-युग और द्विवेदी-युग के कुछ बड़े लेखकों की भाषा-संबंधी गलतियाँ रेखांकित की गई थीं। उन्होंने एक जगह पर भाषा की 'अनस्थिरता' का इस्तेमाल किया। ऐसे में उनसे असंतुष्ट लेखकों ने शोर मचाना शुरू कर दिया कि खुद आचार्य द्विवेदी अशुद्ध, अमानक और व्याकरण-विरुद्ध भाषा का इस्तेमाल करते हैं। क्योंकि 'अनस्थिरता' के बजाय 'अस्थिरता' सही शब्द था। उस समय के सबसे लोकप्रिय निबंधकार बालमुकुंद गुप्त ने द्विवेदीजी की भाषा और व्याकरण के सिद्धांतों के साथ उनकी संपादकीय समझ की तीखी आलोचना करते हुए आत्माराम के दद्म नाम से 'भारतमित्र' में एक लेखमाला लिखी। लेकिन कलकत्ता के गोविंदनारायण मिश्र ने 'हिंदी बंगवासी' में द्विवेदीजी को बचाते हुए 'आत्माराम की टें टें' शीर्षक से एक लंबी लेखमाला में आचार्य द्विवेदी की भाषा-नीति का समर्थन किया। उस समय के चर्चित पत्रकार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने इस विमर्श को आगे बढ़ाते हुए हिंदी के नए व्याकरण का निर्माण करने की बजाय संस्कृत व्याकरण के आधार पर ही खड़ीबोली गद्य लिखने का सुझाव दिया। उन्होंने 'भारतमित्र' में अपने तीखे लेख 'साहित्य में हाईकोर्ट' में महावीर प्रसाद द्विवेदी से अनेक प्रश्न पूछे और संतुलन साधते हुए विरोधी लेखकों से यह आग्रह भी किया कि द्विवेदीजी की व्याकरण-संबंधी दृष्टि को समझने की जरूरत है। स्पष्ट है कि तत्कालीन भाषिक और साहित्यिक पत्रकारिता में आचार्य द्विवेदी के हस्तक्षेप खास मायने रखते थे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी की मानसिक बनावट के गठन में उस समय की सुधारवादी दृष्टि काम कर रही थी। अंग्रेज मिशनरीज द्वारा प्रस्तावित विक्टोरियन पवित्रता और ब्रह्म समाज, आर्य

समाज, प्रार्थना समाज इत्यादि सामाजिक-सांस्कृतिक संगठनों द्वारा प्रसारित सामूहिक और निजी जीवन में जो शुद्धता, निर्मलता और मर्यादा पर बल दे रहे थे, उन सबका मिला-जुला असर द्विवेदीजी जी मानसिकता पर पड़ा। वे ब्रजभाषा में लिखी कविताओं को इसलिए भी मान्यता नहीं देते थे क्योंकि उसमें शृंगार का अतिरेक था। इतना ही नहीं, उन्होंने संस्कृत कवियों की भी नैतिकतावादी अस्त्र-शस्त्र से पिटाई की। उन्होंने 'कालिदास की निरंकुशता' शीर्षक लेख में कवि की सौंदर्य-दृष्टि को अमर्यादित बताया। इस मर्यादावादी आलोचक दृष्टि के प्रतिपक्ष को प्रस्तुत करने के क्रम में बाद में नंददुलारे वाजपेयी सरीखे स्वच्छंदतावादी आलोचक का उभार हुआ। द्विवेदीजी के समय में ही उनके घनघोर आलोचक जगन्नाथदास प्रसाद चतुर्वेदी ने 'निरंकुशता निर्देशन' शीर्षक ग्रंथ में लिखा कि द्विवेदीजी की सौंदर्यशास्त्रीय समझ पिछड़ी हुई है। असल में महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक कद इतना ऊँचा था कि उनके आलोचक सीधे-सीधे अपने नाम से कोई टिप्पणी करने से बचते थे। चतुर्वेदी ने अपने ग्रंथ में अपना वास्तविक नाम न देते हुए लेखक का नाम दिया-मनसाराम! एक और कारण यह भी था कि विरोधी खेमे के लेखक और पत्रकार 'सरस्वती' ही नहीं, महावीरप्रसाद द्विवेदी को भी चुनौती की तरह लेने लगे थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने समय की पत्रकारिता और साहित्य-भाषा के सवालों को अकेली इस पत्रिका के माध्यम से उन ऊँचाइयों पर पहुँचा दिया, जो आज भी अकल्पनीय है। उन्होंने संपादकीय टिप्पणियों के अलावा स्वयं ऐसी समालोचनाएँ लिखीं, जिसने रचनात्मक उत्तेजना उत्पन्न की। उनकी दृष्टि में समाज और मनुष्य दोनों महत्वपूर्ण थे। लोक-जीवन के आधार पर उन्होंने अपनी संपादकीय दृष्टि विकसित की। वे इतने बड़े संपादक थे लेकिन हमेशा एक छात्र की तरह सीखने की इच्छा और उत्सुकता उनमें अंत तक बनी रही। इस संदर्भ में वे छोटे-बड़े की परवाह किये बगैर अपने आलोचकों का भी आभार मानते थे। उनके समय में भी प्रबुद्ध पत्रकार और संपादक उनसे नाराज रहते थे और आज भी उनकी समूची संपादकीय दृष्टि और भाषा-संबंधी समझ से हम भले ही पूरी तरह सहमत न हों लेकिन आज खड़ीबोली हिंदी, विशेष कर साहित्यिक पत्रकारिता जिन शिखरों तक पहुँची है, उसके पीछे महावीर प्रसाद द्विवेदी का बहुपठित व्यक्तित्व, उनका श्रम और साहस आज भी महसूस होता है।

द्विवेदी युग की कविता और आचार्य द्विवेदी

द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, नाथुराम शर्मा शंकर, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, सत्यनारायण 'कविरत्न' प्रमुख हैं। इन सुकवियों ने गद्यकाल में कविता को जीवित रखा। इन सबके अग्रणी साहित्यिक नेता आचार्य द्विवेदी थे। उन्होंने इस युग में वही भूमिका निभाई, जो भारतेंदु ने पूर्ववर्ती युग में निभाई थी। जगन्नाथदास रत्नाकर द्विवेदी युग के ऐसे कवि हैं, जो आद्यंत ब्रजभाषा में कविता करते रहे। जबकि आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा से श्रीधर पाठक 'शंकर', 'हरिऔध' सरीखे महत्वपूर्ण कवियों ने ब्रजभाषा छोड़ कर खड़ीबोली में काव्य-रचना प्रारंभ की। रचना के धरातल पर यह ऐतिहासिक दृष्टि से निर्णयात्मक कदम था।

'सरस्वती' को हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता को प्रतिष्ठित करने वाली पत्रिका ठीक ही कहा जाता है। पत्रिका ने खड़ीबोली कवियों और गद्यकारों की एक भरीपूरी जमात खड़ी कर दी। प्रकाशित होने वाले शुरुआती कवियों में राधाकृष्ण दास, जगन्नाथदास रत्नाकर और किशोरीलाल गोस्वामी प्रमुख थे। गोस्वामी की 'मलयानिल' 'सरस्वती' में छपने वाली खड़ीबोली की पहली कविता थी। 'सरस्वती' में आने से पहले सन् 1900 में ही महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'द्रौपदी वचनावली' और 1901 में 'हे कविते' प्रकाशित हो चुकी थी। इनमें आचार्य द्विवेदी ने उस समय के लोकप्रिय काव्य-विषय उठाए लेकिन तत्कालीन प्रचलित काव्य-भाषा से अलग संस्कृतनिष्ठ शब्दावली को महत्व दिया। लेकिन बाद में जब वे 'सरस्वती' के संपादक हुए तो 'सरस्वती' में छपने वाले दूसरे कवियों ने उनकी भाषा-नीति को ही अपनाया। 'हे कविते' रचना में आचार्य द्विवेदी ने स्वतंत्रता और दासता के द्वंद्व को उजागर करते हुए आजादी के मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया-

सेवा समान अति दुस्तर दुखदाई,
दुवत्ति और अवलोकन में न आई।
जीना कभी न उसका जग में भला है,
जो पेट-हेत पर-सेवन को चला है।।
स्वातंत्र्य-तुल्य अति ही अनमूल्य रत्न,
देखा न और बहु बार किया प्रयत्न।
स्वातंत्र्य में नरक-बीच विशेषता है,
न स्वर्ग भी सुखद जो परतंत्रता है।।

(सरस्वती, हीरक जयंती अंक, पृ. 16)

यहाँ आचार्य द्विवेदी के निजी अनुभव भी व्यक्त हुए हैं। अंग्रेजी सरकार की अच्छे वेतन वाली नौकरी को गुलामी से जोड़ कर द्विवेदीजी यह दिखाना चाहते हैं कि स्वर्ग में कभी भी सुख अनुभव नहीं हो सकता, अगर वहाँ व्यक्ति को गुलाम बना कर रखा जाए। जबकि नरक की आज़ादी भी सुखद होती है। इस कविता से इतना पता चलता है कि महावीरप्रसाद द्विवेदी रेलवे की नौकरी छोड़ने का मन बना चुके थे। कविता प्रकाशित होने के कुछ ही समय बाद वे 'सरस्वती' के संपादक हो गए थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी इस दौर के सबसे प्रभावशाली साहित्यकार थे। वे संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं के मर्मज्ञ थे। उन्होंने 80 ग्रंथ लिखे। उनकी कविताओं का मुख्य स्वर सुधारवादी है। 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'गंगा लहरी', 'ऋतु तरंगिणी', इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। इनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता की प्रमुखता है।

आचार्य द्विवेदी अच्छे संपादक, आलोचक, निबंधकार और कवि थे। उन्होंने संस्कृत कवियों पर अच्छी समालोचनाएं लिखी। उनके प्रयासों से कविता ही नहीं, निबंध, आलोचना और कथा-साहित्य में पर्याप्त प्रौढ़ता आई।

द्विवेदीयुगीन निबंध और आचार्य द्विवेदी

आधुनिक युग के पहले चरण भारतेंदुयुग में नाटक मुख्य विधा के रूप में सामने आया, वहीं द्विवेदीयुग में निबंध प्रमुख विधा बन गया। महत्वपूर्ण लेखक निबंधों में अपनी बात रखने लगे। हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त जैसे दो बड़े कवि इस युग के अंतिम चरण में जरूर प्रतिष्ठित हुए लेकिन शुरू में माधवप्रसाद मिश्र, मिश्रबंधु, गुलेरी, अध्यापक पूर्ण सिंह, श्यामसुंदर दास, जगन्नाथप्रसाद, रामचंद्र शुक्ल, माधवराव सप्रे, चतुरसेन शास्त्री और आचार्य द्विवेदी सरीखे बड़े निबंधकार इस दौर में विपुल मात्रा में निबंध लेखन करते रहे। निबंध को केंद्रीय विधा बनाने में नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका और 'सरस्वती' का बड़ा योगदान रहा। आचार्य द्विवेदी ने कई विषयों पर विचारोत्तेजक निबंध लिखे और दूसरे लेखकों को भी उत्कृष्ट निबंध लेखन के लिए जमीन उपलब्ध करवाई। आचार्य द्विवेदी ने इतिहास और साहित्य-विषयक कई ज्ञानवर्धक निबंध लिखे और खुद गद्य की कई निबंध-शैलियों को प्रस्तुत किया। इस सिलसिले में अपने समय की साहित्य-भाषा को सुधारा। निबंध साहित्य को समृद्ध करने के लिए भारतीय और विदेशी निबंध साहित्य का हिंदी में अनुवाद किया। आचार्य द्विवेदी और उनके समकालीन लेखकों ने निबंध विधा पर अद्भुत पकड़ का परिचय दिया।

विषय-वैविध्य की दृष्टि से द्विवेदीयुगीन निबंध उल्लेखनीय हैं। निबंध-कला में अनेकरूपता, नवीन स्फूर्ति और नए दृष्टिकोण का आगमन द्विवेदीयुग में हुआ। इसी युग में निबंध गंभीर साहित्य विवेचन का माध्य बना। आचार्य द्विवेदी ने निबंध की भाषा में कृत्रिमता और शब्दाडम्बर की विदाई सुनिश्चित की। अनावश्यक भूमिका बाँधने की परिपाटी का अंत किया। माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, गोविंदनारायण मिश्र, पद्म सिंह शर्मा, गुलेरी, पूर्ण सिंह, मिश्रबंधु, श्यामसुंदर दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, गणेशशंकर विद्यार्थी, द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी, गौरीशंकर हीरानंद ओझा आदि द्विवेदीयुगीन निबंधकारों ने साहित्य, विज्ञान, इतिहास, पुरातत्व, भूगोल, जीवन-चरित्र, धर्म-अध्यात्म आदि विषयों पर निबंध लिखे। भाषा तथा व्याकरण-विषयक जितने निबंध इस युग में लिखे गए, उतने पहले कभी नहीं लिखे जा सके। भाषा-परिष्कार के कारण ऐसे निबंधों की रचना स्वाभाविक थी लेकिन भाषा-परिष्कार पर अतिरेक के कारण निबंधों में पाई जाने वाली जीवंतता कम हो गई। लेखकों का ध्यान मनोरंजन की बजाय ज्ञानवर्धन की ओर अधिक रहा।

द्विवेदीयुग में आचार्य द्विवेदी के साथ दूसरे लेखक भाषा सुधार और विषय-परिष्कार के लिए जूझ रहे थे। कुछ लोग यह मानते हैं कि भाषा-विषयक शुद्धता और मर्यादावादी दृष्टि के कारण उत्कृष्ट आत्माभिव्यंजक निबंध इस दौर में नहीं लिखे गए क्योंकि आत्मानुभूति नहीं हो पाई लेकिन यह निष्कर्ष अधूरा है। निबंधकार खड़ीबोली साहित्य का निर्माण करने के लिए संघर्षरत थे लेकिन उससे पहले वे मुक्त रूप से स्वयं को अभिव्यक्त करने वाली विधा पाने के लिए छटपटा रहे थे। अगर ऐसा नहीं होता तो इस युग में इतना बेहतरीन निबंध साहित्य लिखना नामुमकिन था। अकेले एक युग में आचार्य द्विवेदी ने मूल रूप से एक ही विधा निबंध के माध्यम से कविता, पत्रकारिता और व्याकरण का बीजगणित बदल कर रख दिया।

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का हिंदी साहित्य में योगदान

डॉ. महीपाल सिंह राठौड़

> *ग्रियर्सन ग्राम गीतों को भी साहित्य का हिस्सा मानते थे। इतिहास लेखन की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि ''अगणित एवं अज्ञात कवियों द्वारा विरचित स्वतंत्र महाकाव्यों एवं ग्राम गीतों (जैसे कजरी, जँतसार और इसी प्रकार के अन्य भी) को, जो संपूर्ण उत्तरी भारत में प्रचलित है मैंने इसमें सम्मिलित करने से अपने को रोका है।''*

सम्पर्क: असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, मो. 9413323330, ई-मेल: mpsrchopasni@gmail.com

''श्री ग्रियर्सन जी,
आपने विदेशी होते हुए भी, हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास लिखा।

अनुवाद तो आपका ही है उसे क्या समर्पित करूँ? हाँ टिप्पणियाँ मेरी है उन्हें स्वीकार करें।''

डॉ. सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'द मॉर्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' का सं. टिप्पण अनुवाद प्रस्तुत करते हुए किशोरीलाल गुप्त ने उस पुस्तक का समर्पण ग्रियर्सन को इन्हीं शब्दों के साथ किया है। ग्रियर्सन का जन्म आयरलैंड के डबलिन परगने में, राथफर्नहम घराने में 7 जनवरी, 1851 ई. में हुआ था। इनका पूरा नाम जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन था। यही नाम इनके पिता का भी था। 17 वर्ष की उम्र में इन्होंने उच्च शिक्षा के लिए प्रसिद्ध ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश लिया और वहाँ से स्नातक उतीर्ण की। ग्रियर्सन ने सन् 1868 में 'राबर्ट एटकिन्सन' से संस्कृत वर्णमाला का ज्ञान प्राप्त किया और बाद में मीर औलाद अली से हिंदुस्तानी भी सीखी। सन् 1871 ई. में ग्रियर्सन ने भारतीय सिविल परीक्षा उत्तीर्ण की और 1873 ई. में यह भारत आये और बंगाल में नियुक्त हुए।

1886 ई. में वियना में आयोजित अंतरराष्ट्रीय प्राच्य विद्या विशारद सम्मेलन में भारत की ओर से भाग लिया और हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश के मध्यकालीन भाषा-साहित्य और तुलसी पर एक लेख पढ़ा। इस लेख की शोधपरक दृष्टि के फलस्वरूप ग्रियर्सन को प्रोत्साहन मिला और इसी से प्रेरित होकर 'द मॉर्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' ग्रंथ का निर्माण हुआ जो सर्वप्रथम 1888 ई. के रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के जर्नल के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ। और इसके पश्चात् 1889 ई. में सोसाइटी ने इसे स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया।

ग्रियर्सन ने सर्वाधिक महत्व के तीन कार्य किये-

1. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण

2. द मॉर्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान

3. तुलसीदास का वैज्ञानिक अध्ययन

ग्रियर्सन ने (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया) भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण का कार्य 1894 ई. से आरंभ कर 1927 में समाप्त किया। इसकी विशालता का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि यह ग्यारह बड़ी-बड़ी जिल्दों में प्रकाशित हैं। कई जिल्दें तो कई-कई भागों में विभक्त हैं। यह विशाल ग्रंथ भारतीय सरकार के केंद्रीय प्रकाशन विभाग की कलकत्ता शाखा के द्वारा प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका में ग्रियर्सन ने लिखा है-It is a comparative Vocabulary of 168 selected words. In about 368 different languages and dialects. ...... gramophone records are available in this Country and in Paris.

इसमें भारतीय भाषाओं, उप भाषाओं और बोलियों के उदाहरण संकलित हैं। जिसमें तिब्बती, चीनी, बर्मी और ईरानी भाषा परिवार को भी सम्मिलित किया गया है। उन भाषाओं की सूची जिनके ग्रामोफोन रेकार्ड इस देश में तथा पेरिस में उपलब्ध हैं। भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास का सबसे अधिक प्रामाणिक तथा क्रमबद्ध वर्णन इस भूमिका में सुगमता से मिल सकता है। ग्रियर्सन लिखते हैं- Finish a work extending over thirty years that after writing this Preface, the pen will be laid down. ...... I plead guilty to a vain boast whom I claim that what has been done in it for India has been done for no other country in the world.

मैथिल कोकिल विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' नामक दो ग्रंथों का परिचय साहित्य जगत को करवाने वाले ग्रियर्सन ही थे।

ग्रियर्सन ठेठ हिंदुस्तानी को साहित्यिक उर्दू तथा हिंदी की जननी मानते थे।

इतिहास को लिखते समय उन्होंने 'शिव सिंह सरोज' को आधार माना, जिसका उल्लेख शुक्ल जी ने भी किया है।

ग्रियर्सन की यह मान्यता थी कि 'मैं इसको एक ऐसे सामग्री संग्रह के रूप में ही भेंट कर रहा हूँ जो नींव का काम दे सके।' जिनके लेखकों का नाम हम जानते तक नहीं किंतु वे जनता के हृदयों में जीवित वाणी बनकर बचे हुए हैं, क्योंकि उन्होंने जन की सत्य और सुंदर की भावना को प्रभावित किया।

ग्रियर्सन ने भाषा-शास्त्र के साथ ही साथ लोक साहित्य के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने सन् 1884 ई. में 'सम बिहारी फोक सांग्स' तथा सन् 1886 ई. में 'सम भोजपुरी फोक सांग्स' नामक दो प्रामाणिक लेखों को प्रकाशित किया। इसमें भोजपुरी लोक गीतों का मूल पाठ व उनका अंग्रेजी अनुवाद व टिप्पणियाँ दी हैं। यह भोजपुरी लोकगीतों का प्रथम संग्रह माना जाता है। सन् 1885 ई. में इन्होंने 'दि सांग ऑफ आल्हाज मैरेज' लेख इंडियन एंटीक्वेटी पत्रिका में प्रकाशित करवाया। इसी वर्ष इन्होंने 'टू वर्शन्स ऑफ दि सॉग ऑफ गोपी चंद' को संकलित किया। सन् 1889 ई. में जर्मनी की सुप्रसिद्ध पत्रिका जे.डी.एम.डी. में 'नयकवा बनजारा' गीत प्रकाशित करवाया।

डॉ. ग्रियर्सन की एक मौलिक कृति है 'बिहार पीजेंट्स लाइफ' यह बिहारी लोक जीवन का विश्वकोश माना जाता है। इस ग्रंथ की शैली नागरी और रोमन दोनों लिपियों में है। सचित्र व्याख्या से ग्रंथ बड़ा उपयोगी बन गया है। सन् 1885 ई. में कलकत्ता के बंगाल सेक्रेटेरियेट प्रेस से यह पुस्तक प्रकाशित की गयी थी।

ग्रियर्सन ग्राम गीतों को भी साहित्य का हिस्सा मानते थे। इतिहास लेखन की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "अगणित एवं अज्ञात कवियों द्वारा विरचित स्वतंत्र महाकाव्यों एवं ग्राम गीतों (जैसे कजरी, जँतसार और इसी प्रकार के अन्य भी) को जो संपूर्ण उत्तरी भारत में प्रचलित है मैंने इसमें सम्मिलित करने से अपने को रोका है।"

तुलसी की उदारता ने ग्रियर्सन का मन मोह लिया। ग्रियर्सन ने वर्नाक्युलर लिटरेचर में तुलसी पर लिखा है-

> 'as a father and mother delight to hear the
> lisping practice of their little one.'

तुलसी ने चिर सौरभ की माला गूँथी और जिस देवता की भक्ति वे करते थे, उसके चरणों में उसे दीनतापूर्वक चढ़ा दी।

ग्रियर्सन ने भाषा, साहित्य और लोक संस्कृति के संरक्षण में उल्लेखनीय कार्य किया।

इस हिंदी प्रेमी अंग्रेज का 90 वर्ष की वय में 8 मार्च, 1941 ई. को निधन हो गया। ❍❍❍

राष्ट्रभाषा: उलझा सवाल, नहीं सुलझी बात

डॉ. प्रकाश कृष्णा कोपार्डे

> *गाँधी, सुभाषबाबू, बंकिमचंद्र, प्रेमचंद तथा अन्य विद्वान भी स्वतंत्रता के साथ-साथ अपनी भाषा के प्रति आग्रही रहे थे, इसका कारण देशोन्नति में निहित था। वे सभी दूरदृष्टा एवं भविष्यचेता थे। यही उन महान नेताओं और पुरोधाओं की हमारे लिए पूँजी थी, जिसके प्रति वर्तमान में सतर्क होकर चिंतन करना अनिवार्य है, नहीं तो आर्थिक गुलामी की श्रृंखलाओं में आबद्ध होना पड़ेगा और यह गुलामी भाषा के माध्यम से हमारी राष्ट्रीय नसों में जगह बना रही है तो वहीं सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में प्रदूषण का कारण भी बन रही है।*

अमीर खुसरो ने तेरहवीं सदी में जिस भाषा को अपना जीवित माना, वह भाषा एक सुप्तावस्था में ही क्यों न हो, समय की धारा में अस्तित्व को टिकायी रही। मध्यकाल में मुगलों ने उसे अपनाया; उसे अरबी, फारसी से सजाया। उतना ही नहीं बल्कि अनेक नज्मों का तजूर्मा भी करवाया। समय और सत्ता ने जिस तिस हाल में सजीव बनाए रखा इस भाषा को। क्यों उतना सहेजा गया इस भाषा को? क्योंकि भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में समानता को अपने में विराजमान रखने वाली भाषा यहीं भाषा थी। हैमिलटन ने सन् 1727 में लिखे यात्रा वृतांत में मुगल शासन की भाषा हिंदुस्तानी थी, यह माना है। इतना ही नहीं जिस दक्षिण में हिंदी का विरोधी स्वर होने का डंका बजाया जाता है, वहाँ भी मध्यकाल में हिंदी अपनी जड़ें 'दक्खिनी हिंदी' के नाम से जमाने लगी थी। सोलहवीं सदी में आंध्र के कवि पेद्दना ने हिंदी में काव्यसाधना की। केरल के राजा रामवर्मा, वहीं के राजा स्वाति तिरूनाष्ठ (सत्रहवीं सदी), तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रह्मणम भारती तो गृह-त्याग करके इलाहाबाद बसकर संस्कृत, हिंदी भाषा में महारथ हासिल की। कन्नड़ कवि निजलिंगप्पा ने भी हिंदी में साधना की थी। मराठी में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम और समर्थ रामदास के नाम सर्वपरिचित हैं। अत: दक्षिणी में हिंदी प्रतिरोध मात्र तत्कालीन राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा का ही परिणाम था। इसका प्रमाण भी उपलब्ध है सन् 1938 में बतौर मुख्यमंत्री राजाजी ने हिंदी शिक्षा को अपने राज्य में अनिवार्य घोषित किया था, उन्होंने ही आगे चलकर विरोधी स्वर आलापे। यही स्थिति भाषाविद् सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की रही।

इन विरोधी स्वरों के बावजूद भी जन-मन का प्राण बनी हिंदुस्तानी भाषा हिंदी प्रदेशों के साथ-साथ हिंदीतर प्रांतों में भी बनी रही और इसे सँवारा भी गया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जितने भी समाज सुधार आंदोलन चल रहे थे उसमें हिंदी ने अहम किरदार निभाया। आर्य समाजी दयानंद सरस्वती अपने विचारों को संस्कृत में रखते थे; किंतु जब केशवचंद्र सेन ने उन्हें समझा दिया तब उम्र के 47वें साल में हिंदी को सीख अपने विचार उन्होंने हिंदी में रखना आरंभ किया। यहाँ यह

सम्पर्क: हिंदी विभागाप्रमुख, वैद्यनाथ कॉलेज परली वै., जिला-बीड (महाराष्ट्र),मो:9405814730 ई-मेल:pkkkoparde@rediffmail.com

स्पष्ट करना अनिवार्य है कि हिंदी मात्र राजनीतिक आजादी की नहीं सामाजिक आजादी के लिए भी पुल का कार्य कर रही है।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर बंगाल में स्वतंत्रता और समाजोद्धार का आंदोलन चला रहे थे। इन्होंने सन् 1826 में अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए 'बंगदूत' निकाला और वहीं इस पत्र को हिंदी, अंग्रेजी और बंगला भाषा में निकाला। भारतीय समाज में चेतना का संवाहन करने के लिए भाषा की अनिवार्यता को वे लोग समझते थे और उन पुराधाओं ने नीति के रूप में स्वीकारा था। सन् 1909 में अरविंद घोष ने 'वंदे मातरम्' में एक लेख में हिंदी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकारने की बात कही। आजादी के आंदोलक हिंदी की पहल कर रहे थे, यह तथ्य यहाँ रेखांकित करना आवश्यक है। इतने प्रमाणों के बाद भी हिंदी विरोध जारी है और आपसी स्वार्थों में देशहित कहीं कोने पड़ा कराह रहा है।

आप प्रश्न उठाने के लिए स्वतंत्र है कि हिंदी को ही राष्ट्रभाषा का सम्मान क्यों मिलना चाहिए? कसौटियों पर कसा सत्य अल्पजीवी नहीं बल्कि अमरता का परिचायक होता है। इसी कसौटी को हिंदी भाषा पर लागू करके निर्णायक मत का निर्माण करना मेरा विचार है। भारत भारतीय भाषाओं से समृद्ध राष्ट्र है, अतः राष्ट्र का मुख कौन हो, यह विवाद का मामला बन सकता है; किंतु किसी एक देश के लिए एक भाषा का होना क्यों जरूरी है इस पर विस्तार से पहल बहुत पहले से हुई है, अतः इसको समझना क्रमबद्ध है। इस संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद्र के विचार अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं-"यदि आज भारतवर्ष से अंग्रेजी राज्य उठ जाय, तो इन तत्वों में जो एकता इस समय दिखाई दे रही है, बहुत संभव है कि वह विभेद और विरोध का रूप धारण कर ले और भिन्न-भिन्न भाषाओं के आधार पर एक ऐसा नया संगठन उत्पन्न हो जाय, जिसका एक-दूसरे के साथ कोई संबंध ही न हो और फिर वहीं खींचतान शुरू हो जाय, जो अंग्रेजों के यहाँ आने से पहले थी। अतः राष्ट्र के जीवन के लिए यह बात आवश्यक है कि देश में सांस्कृतिक एकता हो। और भाषा की एकता उस सांस्कृतिक एकता का प्रधान स्तंभ है।" प्रेमचंद जैसे समाजमुखी रचनाकार का यह मानना कि भाषा सांस्कृतिक एकता के लिए साधन का कार्य करती है, यह इस समाज के लिए अमूल्य मार्गदर्शन ही है। अंग्रेजी तंत्र ने दमन तथा आर्थिक शोषण के माध्यम से भारत में जिस राष्ट्रीय बीज को बोया था, इसी तंत्र ने भारतीयों में राष्ट्रीयता को सटीक जामा पहनाकर राष्ट्र भाव के साथ राष्ट्रभाषा का दबाव भी बनाया। प्रेमचंद ने सांस्कृतिक एकता के लिए भाषिक एकता को महत्त्वपूर्ण माना, क्योंकि भारत की संस्कृति भिन्नता से वे भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए भारतीय स्वतंत्रता के भविष्य में भाषा पुनः इस देश के लिए कोई समस्या न खड़ी करें, यह उनका प्रामाणिक प्रयास था।

जितनी हमें आजादी महत्त्वपूर्ण थी उतना ही आजाद देश के संचालन का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था। यहीं कारण था कि आजादी के पहले ही हमारे पुरोधाओं ने आजाद भारत के भविष्य का चिंतन आरंभ किया था। जिसमें भारत की भाषा एक अहम मुद्दा रहा। किसी राष्ट्र और वहाँ की भाषा का अपना क्या संबंध होता है, इसे देखना हो तो थोड़ा इतिहास को खंगालना होगा। अर्नेस्ट हार्विज भाषा एवं राष्ट्र के सहबंध को लेकर अपना मत रखते हैं कि- "ईसा की छठीं शताब्दी में जब मगध साम्राज्य की अधोगति हुई तब उसकी भाषा भी क्रमशः विच्छिन होती गई। संस्कृत का स्थान मागधी ने राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रहण कर लिया और फिर यथासमय मागधी के भी अपने स्थान से च्युत हो जाने पर अन्य प्राकृत भाषाओं और बोलियों ने ले लिया। देश में मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व शौरसेनी अपभ्रंश का उपयोग अंतरप्रांतीय भाषा के रूप में हो रहा था।" अर्थात् इतिहास प्रमाणित करता है कि किसी राष्ट्र और वहाँ की भाषा की प्रगति अन्योन्याश्रित है। राष्ट्र संकट में आया की अपने आप वहाँ की भाषा लोक से दूर जाती है। वहीं भाषा के एक न होने से राष्ट्र अपना समूचा अस्तित्व खतरे में पाता है। इसीलिए प्रेमचंद ने सांस्कृतिक एकता से राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता को रेखांकित किया। मगध साम्राज्य की अधोगति ने जिस प्रकार संस्कृत को लोक से दूर रखा, ठीक इसी प्रकार अंग्रेजी अंग्रेज शासनकाल में भारतीयों की एकता में बाधक थी। इसीलिए स्वतंत्रता प्रेमियों ने एक भाषा की वकालत की। इतना ही नहीं इस भाषा को आजादी की, आंदोलन की भाषा के रूप में स्वीकारा।

डॉ. प्रभाकर माचवे स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी के महत्व को इस तरह अभिव्यक्त करते हैं-"सुभाषचंद्र बोस हिंदी में भाषण देते थे। सावरकर हिंदी में गरजते थे। लाला लाजपतराय उसी भाषा में बोलते थे। किसानों और मजदूरों के नेता और सारे

भारत में वहीं भाषा बोलते रहे।'' माचवे ही हिंदी का उल्लेख कर रहे हैं; किंतु भारत में हिंदी और उर्दू को लेकर बहुतों में विवाद चल रहा था और है। एक वर्ग मात्र लिपियों में अंतर मानता है। वहीं दूसरा वर्ग हिंदी और उर्दू को एक ही मानता है। इसीलिए मुंशी प्रेमचंद ने स्वतंत्रता पूर्व ही इस विवाद पर अपने बेबाक विचार रखे थे–''जो हो, परंतु भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा न तो उर्दू ही है और न हिंदी; बल्कि वह हिंदुस्तानी है, जो सारे हिंदुस्तान में समझी जाती है और उसके बहुत बड़े भाग में बोली जाती है।'' प्रेमचंद्र ने भाषिक संप्रेषणीयता को केंद्र में रखा था, वे स्वयं को हिंदी से ज्यादा उर्दू के पास पाते थे। वे हिंदी की जगह 'हिंदुस्तानी' जुबान को राष्ट्र के लिए हितकारी मानते थे। आजादी का आंदोलन और हिंदुस्तानी भाषा के लिए आंदोलन पहले समांतर तौर पर चल रही थी, मात्र प्रेमचंद जैसे हिंदी उपजीवी दावा कर रहे हैं; यह मानकर इसे स्वीकारने का दावा करना, अपनी भाषा के प्रति और आग्रह और दूसरी भाषाओं के प्रति उदासीनता का प्रतीक बन जाएगा।

आजादी के आंदोलन को जिन्होंने संपूर्णता प्रदान की ऐसे महात्मा गाँधी के विचार देखना अनिवार्य है। दक्षिण में हिंदी का विरोध हो रहा था। उस समय 22-1-1920 को 'यंग इंडिया' में मद्रासवासियों को गाँधी ने अपील की थीं जिसे भोलानाथ तिवारी ने उद्धृत किया–''मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हजारों प्रेक्षकों से इसकी चर्चा की है... सभी लोकसेवकों की अपेक्षा मैं शायद सारे सबसे ज्यादा घूमा-फिरा हूँ और पढ़े-लिखों व अनपढ़ों को मिलाकर सबसे ज्यादा लोगों से मिला हूँ, और मैं सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुँचा है कि राष्ट्र का कारबार चलाने के लिए या विचार विनियम के लिए हिंदुस्तानी को छोड़कर दूसरी कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके... जिस विचार को प्रेमचंद ने अपने निबंधों में दर्ज किया, उन्हीं विचारों को गाँधीजी ने पुष्ट किया है और अपना मत रखने से पूर्व आजादी के आंदोलन में इन्होंने जो भारतवर्ष की यात्रा की है, उस अनुभव को कसौटी मान मद्रासवासियों को हिंदुस्तानी भाषा स्वीकारने का आग्रह किया है। स्वयं हिंदी की व्यवहारक्षमता को गाँधी ने आंदोलनों में परखा था। एक साहित्य जगत् तथा दूसरा राजनीतिक जगत के महान व्यक्ति हिंदी अथवा हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के पक्ष में क्यों थे? यह प्रश्न साधारण जन के मन में उभर सकता है; किंतु हमारे भविष्य निर्माताओं ने स्वतंत्रता के सभी पहलुओं पर नजर पैनी रखी थीं। आजादी मात्र राजनीतिक मामला नहीं था, हम संपूर्ण आजादी चाहते थे। इसीलिए प्रेमचंद कहते हैं–''सभ्य जीवन के हर एक विभाग में अंग्रेजी भाषा ही मानो हमारी छाती पर मूंग दल रही है। अगर आज इस प्रभुत्व को हम तोड़ सके तो पराधीनता का आधा बोझ हमारी गर्दन से उतर जाएगा।'' अंग्रेजी सत्ता का प्रतिरोध हमारी भाषा के अस्वीकार से और अधिक मजबूत होगा, इस धारणा से हिंदी को नयी दिशाएँ प्राप्त होने लगीं। वहीं मध्यकाल में उत्तर प्रांत की भाषा के रूप में हुआ उसका विकास तथा मुसलमान सत्ता के समय में उर्दू के साथ इसके मेलजोल ने भारतीय भाषा के पद पर उसका दावा पक्का कर दिया।

मध्यकाल से ही हिंदी राजपाठ की भाषा के रूप में अपनी जगह निर्धारित कर रही थी। हिंदी के लिए दक्षिण नया नहीं था। वहाँ उसका हो रहा विरोध मात्र राजनीतिक असंतोष का परिणाम था। मध्यकाल में दक्षिण में हिंदी की पहल को भोलानाथ तिवारी अपने शब्दों में यों बयान करते हैं–''हैदर अली और टीपू सुल्तान इसको केरल तक ले गए। वहाँ कोच्चिन के राजा के साथ यह संधि हुई कि राज्य परिवार के लोगों को हिंदी सिखायी जाएगी। इसके लिए बाकायदा मुंशी की नियुक्ति हुई और इस भाषा को प्रशासन में भी स्थान दिया गया। मराठा राजाओं ने भी अंतःक्षेत्रीय भाषा होने से हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। पेशवा, सिंधिया, मराठा सरदारों और सेनानायकों के उत्तरी भारत के राजाओं के साथ पत्र-व्यवहार में हिंदी ही प्रयुक्त मिलती है।'' हिंदी राजपाठ की विरासत की तर्ज चलती रही। यही कारण है कि आजादी के आंदोलन तथा आजाद के निकटस्थ समय में हिंदी को राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हो सका। फिर भी दक्षिण में हिंदुस्तानी का विरोध चलता रहा। द्रविड़ लिपि होने के कारण प्रयोग के धरातल पर यह विरोध दिख रहा था। जिस पर हल निकालते हुए गाँधीजी ने समस्त भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने की सलाह रखी थीं, परंतु सांस्कृतिक विशेषताओं तथा भाषिक अस्मिताओं के चलते इस विचार पर कोई लंबी बहस नहीं चल पायी। यह सब आजादी के आंदोलन के समय भारतीय परिवेश में घटित हो रहा था। समस्त आंदोलन एवं स्वतंत्रता सेनानी हिंदी को अपनाने की धारणाओं पर सकारात्मक विचार रख रहे थे। वे

जानते थे कि आगे चलकर देश को संचालन की समस्याओं से नहीं गुजरना है तो पहले से ही भाषा की समस्या पर आम राय बनायी जाए।

मराठी भाषा के साहित्यकार साने गुरूजी ने 'अंतर-भारती' का विचार भाषा की समस्या को सुलझाने के लिए रखा। जो बहुत हद तक प्रेमचंद ने भी रखा था, क्योंकि भाषिक विद्वेष की समस्या को आजाद देश की पहली समस्या यह लोग नहीं बनाना चाहते थे। इसीलिए प्रेमचंद लिखते हैं कि-''प्रचार का एक और साधन है कि भारत के अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के पत्रों में हम इस बात पर आमादा कर सके कि वे अपने पत्र के एक दो कॉलम नियमित रूप से राष्ट्रभाषा के लिए दे सकें।'' जिससे उस भाषा के प्रति अपनत्व धीरे-धीरे ही सही आता जाएगा। भाषिक आदान-प्रदान के साथ-साथ वैचारिक आदान-प्रदान भी होता रहेगा। जिससे स्वतंत्रता आंदोलन को नयी ऊर्जा प्राप्त हो सके।

राजनीतिक आजादी के साथ ही न्यायिक आजादी की पहल में भी हिंदी भाषा अपना महत्व रेखांकित करती है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयासों से भारतीय राष्ट्रभाषा में न्याय व्यवस्था का कार्य संपन्न हो इसके प्रयास किए गए। जिसका उल्लेख डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने किया है-''काशी नागरी प्रचारिणी सभा और पं. मदनमोहन मालवीय के प्रयासों के फलस्वरूप ऐटनी मैकडॉनेल ने अदालत में हिंदी और नागरी लिपि व्यवहार में लाने के लिए आज्ञापत्र जारी किया पर इसका पालन आजतक नहीं किया गया।'' अर्थात् स्वतंत्रता सेनानी और हिंदी भाषा में ममत्व भाव था। वहीं अपनी भाषा कार्यालयों में प्रयुक्त हो यह भाव भी विराजमान था, किंतु न्यायपालिका जैसे समानता के द्योतक प्रतीकों में हमारी भाषा में कामकाज न होना, लज्जास्पद है। जो काम हमारे स्वतंत्रता सेनानियों ने अंग्रेजों से गुलामी में मनवाया था, वह आज भी एक सपना है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के किये प्रयास वंदनीय रहे।

आंदोलन काल में हिंदी को भारतीय भाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करने हेतु जितने भी प्रयास एवं उपक्रम करने आवश्यक थे, वे किये जा रहे थे। अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में सहमति बनाने के लिए सशक्त साधन है, इस सत्य को समझ प्रेमचंद ने अपने विचार इस प्रकार रखे थे-''बंगला साहित्य से तो हमने उसके प्रायः सारे रत्न ले लिए है और गुजराती, मराठी साहित्य से भी थोड़ी बहुत सामग्री हमने ली है। तमिल, तेलगू आदि भाषाओं से अभी हम कुछ नहीं ले सके; पर आशा करते हैं कि शीघ्र ही हम इस खजाने पर हाथ बटाएँगे, बशर्ते कि घर के भेदियों ने हमारी सहायता की।'' जहाँ विवाद था, उन विवादों की दीवार गिराने की पहल भी आजादी के समय बराबर हो रही थी। उतनी सारी उठा-पटक आजादी के पहले हमारे देश में बेहतर भविष्य के लिए हो रही थी और गौरवपूर्ण बात यह है, इसमें हिंदी भाषा की भूमिका अहम थी। स्वतंत्रता और देश का ऐक्य दोनों को हासिल करना इस समय के हर देशभक्त का सपना था।

'वंदे मातरम्' जहाँ एक ओर देश की एकता का नारा था, वहीं देश की एकता का रहस्य भी अपने पत्र 'बंगर्शन' के माध्यम से सन् 1877 में बताया-''हिंदी भाषा की सहायता से भारत वर्ष के विभिन्न प्रदेशों के बीच जो लोग ऐक्य बंध-स्थापित कर सकेंगे, वे ही सच्चे भारत बंधु की संज्ञा पाने के योग्य होंगे। सभी चेष्टा करें, प्रयत्न करें, कितने भी समय की आवश्यकता क्यों न हो, मनोरथ पूर्ण होगा।'' अर्थात् भारत में आजादी के साथ-साथ बंधुता भाव के निर्वाह के लिए एक भाषा की आवश्यकता थी, जिसे हिंदी निभाएगी ऐसी धारणा बंकिमचंद्र चटोपाध्याय ने की थी। इसलिए हिंदी केवल माध्यम नहीं थी बल्कि सामाजिक सेतु-बंध का कार्य वह आजादी के आंदोलन में कर रही थी। सामाजिक परिवर्तन से लेकर स्वतंत्रता तक हिंदुस्तानी भाषा ने सभी वर्ग, जाति, पंथ को शृंखला में बाँधने का महत्तम कार्य एक भाषा के रूप में किया।

मुंशी प्रेमचंद कहते हैं, ''यह समझ लीजिए कि जिस दिन आप अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जायेंगे। मुझे याद नहीं आता कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त कर सका हो। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है।'' स्वराज्य का एक पक्ष सांस्कृतिक भी है। हम हमारी सांस्कृतिक धरोहर के कारण विश्व में अलग पहचान बनाए है और इसे बचाए रखना अत्यंत साधारण काम है, जिसके हेतु हिंदुस्तानी भाषा संवाहक की भूमिका अदा कर रही है।

महात्मा गाँधी ने भी जब आंदोलन और राष्ट्र की भाषा के रूप में हिंदुस्तानी का विचार मन में पाला तब उन्होंने देश की भाषा के में रूप हिंदुस्तानी को स्वीकारने के पहले इस समय के महान लेखक रवींद्रनाथ टैगोर से पत्र-विमर्श किया। 21 जनवरी, 1918 को महात्मा गाँधी ने रवींद्रनाथ टैगोर को हिंदी भाषा के राष्ट्रीय प्रयोग को लेकर सुझाव माँगनेवाला एक पत्र लिखा था। जिसका उत्तर 24 जनवरी 1918 को देते हुए उन्होंने अंतरप्रांतीय भाषा के रूप में स्वीकारा, किंतु राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति को लेकर समस्या बतायी वहीं इसका हल भी बताया कि, ''इसीलिए हमारे राष्ट्रीय प्रस्तावों में हिंदी एक वैकल्पिक भाषा बनी रहेगी जब तक कि राजनेताओं की नई पीढ़ी इसके महत्व को अच्छी तरह नहीं समझ लेती और राष्ट्र के हित में स्वेच्छा से इसे स्वीकार करके, इसके सामान्य प्रयोग और निरंतर अभ्यास के द्वारा इसका मार्ग प्रशस्त नहीं करती।'' टैगोर ने हिंदी को अंतर भारती के रूप में स्वीकारा किंतु देश ने भाषा के रूप में आम सहमति को लेकर विवाद उत्पन्न होने की आशंका जतायी। वहीं नयी पीढ़ी का नेतृत्व ही इस संदर्भ में निर्णायक भूमिका ले सकता है, इस तथ्य को कहकर हिंदी का भविष्य आनेवाले नेतृत्व के हाथों में होने के संकेत दिए थे। हम देख सकते हैं कि वर्तमान दौर में हिंदी की दशा का उत्तरदायित्व टैगोर के मतानुसार स्वंतत्र्योतर नेतृत्व ही है।

जिन्होंने देश को राष्ट्रगान दिया वे हिंदी के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति उतने संवेदनशील रहे। टैगोर से विचार-विमर्श के बाद ही कांग्रेस के हीरपुर अधिवेशन में कांग्रेस का कामकाज हिंदी में हो, इस प्रकार का प्रस्ताव पारित हुआ। यह घटना अत्यंत महत्वपूर्ण घटना साबित हुई। हिंदी अब सशक्त रूप में आजादी की मुख्य भाषा बन गयी, वहीं देशभर में मान्यता भी प्राप्त की।

20 दिसंबर 1928 को कलकत्ता में हुए राष्ट्रभाषा सम्मेलन के सवागत समिति के अध्यक्ष के रूप में बोलते हुए सुभाषचंद्र बोस ने कहा था-''भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के भाइयों से बातचीत करने के लिए हिंदी या हिंदुस्तानी तो हमको सीखनी ही चाहिए और स्वाधीन भारत के नवयुवकों को हिंदी के अतिरिक्त जर्मन, फ्रेंच आदि यूरोपीय भाषाओं में एक दो सीखने पड़ेगी, नहीं तो हम अंतर्राष्ट्रीय मामलों में दूसरी जातियों का मुकाबला नहीं कर सकेंगे।'' सुभाषबाबू ने भारत संपर्क के लिए हिंदी अथवा हिंदुस्तानी को महत्त्वपूर्ण माना, वहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के विकास को सम्मानजनक बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं की ओर भी संकेत किया है। विभाषाओं के महत्व को तथा उनके अध्ययन के भविष्य को भी सुभाषजी ने रेखांकित किया था। वर्तमान में विभाषा एक रोजगार का माध्यम बनकर उभरता क्षेत्र है। भारतीय बाजार की व्यापकता ने हिंदी और विभाषा अध्ययन के नूतन आयामों को खोला है।

गाँधी, सुभाषबाबू, बंकिमचंद्र, प्रेमचंद तथा अन्य विद्वान भी स्वतंत्रता के साथ-साथ अपनी भाषा के प्रति आग्रही रहे थे, इसका कारण देशोन्नति में निहित था। वे सभी दूरदृष्टा एवं भविष्यचेता थे। यही उन महान नेताओं और पुरोधाओं की हमारे लिए पूँजी थी, जिसके प्रति वर्तमान में सतर्क होकर चिंतन करना अनिवार्य है, नहीं तो आर्थिक गुलामी की श्रृंखलाओं में आबद्ध होना पड़ेगा और यह गुलामी भाषा के माध्यम से हमारी राष्ट्रीय नसों में जगह बना रही है तो वहीं सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में प्रदूषण का कारण भी बन रही है। स्वतंत्रता के पश्चात वर्तमान समय में प्रविष्ट नयी समस्याओं को अगर हम देखें तो आजादी के पहले भाषा को लेकर इतनी चिंता क्यों की गयी, यह सत्य अपने आप खुलकर सामने आएगा। सुदामा पांडे 'धूमिल' की 'भाषा की रात' कविता स्वतंत्र्योतर भारत में भाषा दुराग्रहों तथा भाषा की राजनीति को स्पष्टत: हमारे सामने खोलती है।

हिंदी अथवा हिंदुस्तानी ने भारतीय स्वतंत्रता समर में सांस्कृतिक श्रृंखला को मजबूत बनाए रखा। सामाजिक एवं जातिय ऐक्य के प्रति अपना उदार मत बनाए रखा। वहीं अखिल राष्ट्र के संभाव को प्रत्येक नागरिक में संजोने का कठिन कार्य भी निभाया। आजादी राजनीतिक माँगों से जरूर शुरू हुई हो; किंतु इसकी व्यापकता सामाजिक, सांस्कृतिक, जातिगत, भाषागत एकता के रूप में विशाल थी और इस शिवधनुष्य को हिंदी ने सँभाला।

हिंदी की राहें

सुभाष सेतिया

यह संतोष का विषय है कि इन नकारात्मक स्थितियों के बावजूद कुछ वर्षों से लगने लगा है कि भारत ही नहीं अन्य देशों में भी हिंदी के प्रयोग और सम्मान में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। हिंदी का अध्ययन-अध्यापन अब यूरोप के कुछ देशों व विश्वविद्यालयों की सीमाएँ लाँघ कर अमरीका, लैटिन अमरीकी, एशियाई और अफ्रीकी देशों में प्रवेश कर चुका है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से बढ़ रही है, टेलीविजन चैनल और एफ एम रेडियो चैनल हिंदी कार्यक्रमों के बल पर राजस्व और वाहवाही लूट रहे हैं। सोशल मीडिया पर हिंदी में धड़ल्ले से विचारों का आदान-प्रदान हो रहा है।

हिंदी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा और देश की 40 प्रतिशत से अधिक आबादी की मातृभाषा है। इतने अधिक पदकों से सुशोभित होने पर भी देश में राष्ट्रीय या सामाजिक जीवन में समुचित स्थान नहीं मिल पा रहा तो उसके ठोस कारण होने चाहिए। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए केंद्र और राज्य सरकारें, विशेषकर हिंदी भाषी राज्यों की सरकारें बड़ा-बड़ा बजट निर्धारित करती हैं। मनोरंजन तथा विज्ञापन उद्योग, मीडिया, फिल्म जगत तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में हिंदी का बोलबाला है। इतना होने पर भी हिंदी भारत की केंद्रीय भाषा बनने की मंजिल से कोसों दूर दिखाई दे रही है। हिंदी की इस मंद गति के कारणों का विश्लेषण करने पर अनेक रोचक किंतु खेदजनक पहलू सामने आते हैं।

सितंबर 2017 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लगभग एक दशक पूर्व तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के उदाहरण का अनुसरण करते हुए जब संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में भाषण दिया तो हिंदी प्रेमियों में अतीव उत्साह और आशा का संचार हुआ और हिंदी मीडिया, साहित्यकारों तथा हिंदी को राजभाषा बनाने का सपना पालने वाले असंख्य लोग वाह-वाह कर उठे और यह आशा गूँजने लगी कि हिंदी का स्वर्णकाल आने वाला है। इसी प्रकार विश्व हिंदी सम्मेलनों में हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा घोषित किए जाने के प्रस्ताव पारित होते हैं तो हिंदी प्रेमियों की आशा व उत्साह आकाश छूने लगते हैं। किंतु कुछ समय बाद फिर वही ढाक के तीन पात दिखाई देने लगते हैं। हर वर्ष सितंबर में हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में सरकारी कार्यालयों और सार्वजनिक उपक्रमों में भव्य आयोजन होते हैं जिनमें हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने की प्रतियोगिताएँ की जाती हैं और नकद ईनाम भी दिए जाते हैं। किंतु जमीनी हकीकत में विशेष अंतर नहीं आ रहा। क्योंकि इन आयोजनों में कही गई बातें व्यवहार में कभी नहीं आ पाती।

मानसिक एवं व्यावहारिक दोनों स्तरों पर अनेक ग्रंथियाँ हैं जो हिंदी के प्रयोजनीय भाषा का रूप देने में आड़े आती हैं। सबसे पहली और आधारभूत अड़चन है हिंदी के प्रति गौरव भाव का अभाव। राजभाषा या राष्ट्रभाषा तो दूर, हिंदी को अपनी

सम्पर्क: सी-302, हिंद अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. 12, सेक्टर-5, द्वारका, नई दिल्ली-110075, मो. 9910907662,
ई-मेल: setia_subhash@yahoo.co.in

मातृभाषा के रूप में इस्तेमाल करने में हम गर्व महसूस नहीं करते। इस ग्रंथि से अन्य अनेक उपग्रंथियाँ जन्म लेती हैं जो कदम-कदम पर बाधक बनती हैं। इसके अलावा हिंदी की बात करते ही हम अंग्रेजी का मजाक उड़ाने और उसका उग्र विरोध करने पर उतारू हो जाते हैं। किंतु यह विरोध दिखावटी और कृत्रिम होता है। इस प्रकार का विरोध करने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हें काम अंग्रेजी में ही करना है क्योंकि हिंदी में काम करने से हम काम में कामचोर और दकियानूस माने जाएँगे। उन्हें पब्लिक स्कूल में पढ़ने वाले अपने बच्चों तथा समाज सेवा करने वाली पत्नी के साथ घर पर अंग्रेजी ही बोलनी पड़ती है। राजभाषा विभागों के अधिकारी तथा कर्मचारी और स्कूलों/कालेजों के हिंदी शिक्षक भी अपना अधिकतर व्यक्तिगत और शासकीय कार्य अंग्रेजी में करते हैं। बैंकों के चेकों पर अंग्रेजी में ही हस्ताक्षर करते हैं। निमंत्रण-पत्र और विजिटिंग कार्ड अंग्रेजी में ही छपवाते हैं। जब अन्य कर्मचारी इन हिंदी सेवी व्यक्तियों का ऐसा आचरण देखते हैं तो उनके मन में हिंदी में कार्य करने की सहज इच्छा भी शिथिल पड़ जाती है।

हिंदी को राजभाषा का वास्तविक रूप देने का अर्थ है उसे समूचे देश में स्वीकार्य बनाना। कहना न होगा कि विविध भाषाओं वाले हमारे देश में यह तभी संभव है जब अन्य भाषाभाषी लोगों को हम हिंदी भाषी लोग अपने साथ लेकर चलें। किंतु अक्सर होता इसके विपरीत है। हिंदी भाषी लोग स्वयं तो हिंदी में काम करते नहीं, परंतु अन्य भाषाभाषी कर्मचारियों, अध्यापकों, विद्यार्थियों या संचारकर्मियों के उच्चारण अथवा अन्य त्रुटियों को लेकर मजाक उड़ाते हैं और टाँग खिंचाई करते हैं। यहीं नहीं, उनके सामने हिंदी की उच्चता का झूठा बखान करके हिंदी का ही अहित करते हैं। इस संदर्भ में मैं एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। प्रकाशन विभाग में प्रशासनिक पद पर काम करते हुए एक बार मुझे सूचना और प्रसारण मंत्रालय की राजभाषा सलाहकार समिति की हैदराबाद में आयोजित बैठक में भाग लेने का अवसर मिला। बैठक में सूचना और प्रसारण मंत्री, राज्यमंत्री, सचिव, अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव, सभी मीडिया यूनिटों के प्रमुख तथा उनके राजभाषा अधिकारी सम्मिलित हुए। बैठक में मंत्रालय के हैदराबाद स्थित कार्यालयों के सभी अधिकारियों का मौजूद रहना अनिवार्य था। कई संसद सदस्य और समिति के गैर-सरकारी सदस्य भी बैठक में उपस्थित थे। कुछ सदस्यों ने अपने भाषण इतने भावुकतापूर्ण और उग्र ढंग से प्रस्तुत किए कि वहाँ मौजूद तेलुगु भाषी लोगों की भावनाओं को संभवत: ठेस लगी। मैंने कई बार महसूस किया कि ऐसे अवसरों पर हिंदी की जय-जयकार, जो अधिकाशत: दिखावटी होती है, करते हुए कुछ तथाकथित हिंदीसेवी लोग अन्य भाषाभाषियों की भावनाओं की परवाह नहीं करते। हिंदी में संस्कृत के तत्सम् शब्दों का अधिकाधिक इस्तेमाल करने पर बल और उर्दू-फारसी शब्दों का विरोध भी विवाद का विषय रहा है। सच तो यह है कि भाषा बहता नीर है और समय के साथ विभिन्न स्रोतों से नए-नए शब्द एवं अभिव्यक्तियां भाषा में जुड़ती जाती हैं। यह सही है कि संस्कृत के शब्द सभी भारतीय भाषाओं में मौजूद है किंतु अन्य देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों के इस्तेमाल का विरोध और संस्कृत शब्दों के प्रयोग का अति आग्रह हिंदी की स्वीकार्यता को कुंठित करता है।

हिंदी को अनुवाद की भाषा बना दिए जाने की प्रक्रिया भी इसे राजभाषा के राजमार्ग पर अग्रसर होने से रोकती है। अनूदित रूप में हिंदी एक प्रकार से डरावना रूप अपना लेती है जो पाठकों को आमंत्रित करने की बजाय आतंकित करती है। सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी से हिंदी में किया जाने वाला अनुवाद भाषा को क्लिष्ट एवं कृत्रिम बना देता है। अनुवाद की इस कृत्रिमता का मूल कारण यह है कि अनुवाद के लिए हिंदी की विद्वत्ता होना आवश्यक है। सच्चाई यह है कि स्रोत भाषा यानी अंग्रेजी के सम्यक ज्ञान के बिना सहज और सरल अनुवाद संभव नहीं है। अंग्रेजी के समुचित ज्ञान के अभाव में शब्दों के संदर्भ सहित सही अर्थ न समझ पाने पर शब्दकोष प्रेषित शब्दानुवाद किया जाता है जो असहज व क्लिष्ट हो जाता है। ये सभी स्थितियाँ हिंदी भाषी एवं अहिंदी भाषी दोनों तरह के लोगों को हिंदी के निकट आने में अवरोधक बनती हैं।

यह संतोष का विषय है कि इन नकारात्मक स्थितियों के बावजूद कुछ वर्षों से लगने लगा है कि भारत ही नहीं अन्य देशों में भी हिंदी के प्रयोग और सम्मान में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। हिंदी का अध्ययन-अध्यापन अब यूरोप के कुछ देशों व विश्वविद्यालयों की सीमाएँ लाँघ कर अमरीका, लैटिन अमरीकी, एशियाई और अफ्रीकी देशों में प्रवेश कर चुका है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से बढ़ रही है, टेलीविजन चैनल और एफ एम रेडियो चैनल हिंदी कार्यक्रमों के बल पर राजस्व और वाहवाही लूट रहे हैं। सोशल मीडिया पर हिंदी में धड़ल्ले से विचारों का आदान-प्रदान हो रहा है। तमिल भाषी वैज्ञानिक डॉ. कलाम राष्ट्रपति के रूप में

अपने भाषणों में हिंदी का सुखद छोंक लगाने का प्रयास करते थे। संसद में अहिंदी भाषी मंत्री और सदस्य हिंदी में अपनी बात रखने तथा अंग्रेजी में बोलते हुए हिंदी मुहावरों या उक्तियों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। हिंदी फिल्में अपने देश से ज्यादा कमाई विदेशों में कर रही है। अंग्रेजी विज्ञापन भी हिंदी की बैसाखी के बिना चल नहीं पाते। आकाशवाणी और दूरदर्शन के संवाददाता के रूप में अपनी विदेश यात्राओं के दौरान मुझे दो सुखद अनुभव हुए। जर्मनी के नगर फ्रेंकफुर्त में होटल की रिसेप्शनिस्ट ने विदाई के समय कहा–'नमस्ते।' दूसरा अनुभव लैटिन अमरीकी देश ब्राजील का है, जहाँ युवक–युवतियाँ हम से हिंदी शब्दों और मुहावरों के अर्थ जानने की कोशिश करते दिखाई दिए। ये सभी लक्षण हिंदी की बढ़ती हुई अंतर्राष्ट्रीय स्वीकार्यता और एक लोकप्रिय भाषा के रूप में उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत कर रहे हैं।

विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि हिंदी की स्वीकार्यता हिंदी दिवस या इसी तरह के अन्य सजावटी आयोजनों के कारण नहीं हो रही है। हिंदी को सहज ही अपने मार्ग पर चलने दीजिए। अब वह अपनी आंतरिक शक्ति तथा लोकतंत्र के बल पर पगडंडियों को पार कर सार्वदेशिक संपर्क भाषा के राजमार्ग पर डगर भर चुकी है। विदेशों में जा बसे भारतवंशियों ने वहाँ की भाषाओं को अपनाकर भी हिंदी का दामन थामे रखा है जिसके फलस्वरूप विदेशी लोग भारत और हिंदी के महत्व को समझने लगे हैं। सच तो यह है कि कोई भी भाषा उसके बोलने वालों की शक्ति से ही आगे बढ़ती है। अंग्रेजी तब सशक्त हुई जब उसे बोलने वालों का वर्चस्व आधी दुनिया तक फैल गया। जैसे–जैसे हिंदी भाषी प्रदेशों तथा भारत की आर्थिक–राजनीतिक क्षमता बढ़ेगी, वैसे–वैसे हिंदी का स्वत: विस्तार होगा ओर इसकी स्वीकार्यता में वृद्धि होगी।

जब हिंदी को स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिलेगी तो उसका प्रयोग हीन भावना का नहीं गौरव का विषय बन जाएगा। तब राजभाषा का व्यावहारिक स्वरूप ग्रहण करने का मार्ग स्वत: ही प्रशस्त हो जाएगा। उसके लिए हिंदी का झूठा प्रशस्ति गान बंद करना होगा। वर्षों से चली आ रही इस मादक लत को छोड़ना सरल नहीं है किंतु हिंदी को सचमुच राजभाषा और राष्ट्रभाषा का रूप देने के लिए हमें आत्मसंशय, निष्ठा एवं गंभीरता की कड़वी दवा पीनी होगी और ईमानदारी से व्यक्तिगत व प्रशासनिक स्तर पर अपना–अपना काम हिंदी में करना होगा।

❍❍❍

रचनाकारों से विशेष अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए–4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई–मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता आदि दो से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द–सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन–परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ (हाई रेज्योलेशन) भी भेज सकते हैं।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली–भांति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई–मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

दक्षिण कोरिया में हिन्दी-शिक्षण

(विशेष संदर्भ: हंकुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज)

द्विवेदी आनन्द प्रकाश शर्मा

हिन्दी-शिक्षण में प्रौढ़ता तथा भारत और दक्षिण कोरिया के संबंधों में प्रगाढ़ता की दृष्टि से पिछली सदी का अंतिम दशक (1990-99) महत्त्वपूर्ण रहा। उदारीकरण और अन्य आर्थिक सुधारों के कारण भारत में व्यापार करना आसान हुआ। परिणामत: दोनों देशों के वाणिज्य-व्यापार संबंधों में विस्तार और व्यापकता आई। भारत अब बुद्ध और गाँधी के देश से ज्यादा बाजार की संभावनाओं के देश के रूप में जाना जाने लगा। बाजार की संभावनाओं में नई पीढ़ी को अवसर दिखाई दिया। इस दौर में हिन्दी सीखने वालों की बढ़त के पीछे उपर्युक्त प्रवृत्ति क्रियाशील रही।

भारत-कोरिया संबंध और हिन्दी

भारत-कोरिया संबंध पर जब भी बात होती है तो संबंध की प्राचीनता बताने के लिए अयोध्या की राजकुमारी का कोरिया आकर गरक राजवंश के राजकुमार से विवाह करने का उल्लेख किया जाता है। यह भी उल्लेख मिलता है कि सातवीं सदी में एक बौद्ध भिक्षु अध्ययन के लिए नालंदा गए थे। तब से ही कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रसार होने लगा। चर्च के आगमन तक बौद्ध धर्म व्यापक रूप से कोरियाई जीवन का अंग रहा। बौद्ध धर्म के विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ 'सन्दर्भ पुण्डरीक सूत्रम' लोटस् सूत्र के कोरियाई संस्करण का प्रणयन और उसके प्रति श्रद्धा सांस्कृतिक संबंधों के जीवंत प्रमाण हैं। बौद्ध मठ और विहार यहाँ आज भी हैं और विश्वविद्यालय स्तर पर बौद्ध धर्म-दर्शन का अध्ययन भी होता है। इस मजबूत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को देखते हुए अपेक्षित तो यही था कि आजादी के बाद सांस्कृतिक संबंध और पहले बन जाता, लेकिन ऐसा लगता है कि दोनों देशों के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उथल-पुथल की वजह से यह संभव न हो पाया है। दक्षिण कोरिया में हिन्दी का आगमन बीसवीं सदी के सातवें दशक की घटना है जब सउल के हंकुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज (हुफ्स) में हिन्दी का विभाग खुला। तब से हिन्दी साल-दर-साल बढ़ती चली गई। हुफ्स की स्थापना और तत्कालीन पृष्ठभूमि से वाकिफ होना जरूरी है, इसलिए कि आगामी घटनाओं को तत्कालीन सन्दर्भों में समझा जा सके।

हुफ्स की स्थापना और विदेशी भाषाओं का अध्ययन

यह महज एक संयोग ही है कि 15 अगस्त, 1945 को कोरिया स्वतंत्र होता है और 15 अगस्त, 1947 को भारत। आजादी बाद दोनों देशों में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियों की दास्तान एक-दूसरे से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। विभाजन की त्रासदी और युद्ध की विभीषिका से दोनों गुजरते हैं। पाँचवाँ दशक दोनों देशों के इतिहास में आधुनिक राष्ट्र राज्य के रूप में नवनिर्माण का काल है। कोरियाई राष्ट्रीय जीवन में यह

सम्पर्क: प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंकुक यूनिवर्सिटी ऑफ फोरेन स्टडीज, दक्षिण कोरिया

सर्वाधिक चुनौती भरा दौर है। एक ओर आजादी की उमंग तो दूसरी ओर कम उत्पादन, महँगाई और बेरोजगारी जैसी गंभीर आर्थिक चुनौतियों से सामना। प्राकृतिक संसाधनों का अधिकांश उत्तर कोरिया के हिस्से में चला जाना। उधर, राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता पर कब्जे को लेकर अशांति। इन सबके बीच सामाजिक-आर्थिक विकास की दिशा में कोरियाई बुद्धिजीवियों एवं उद्यमियों द्वारा सामाजिक विकास के लिए अकादमिक संस्थाओं की स्थापना का भागीरथ प्रयत्न। विश्व-ज्ञान और कोरियाई कौशल के आदान-प्रदान के उद्देश्य से हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज की स्थापना (1954) को इसी पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। दरअसल, दक्षिण कोरिया में उत्कृष्ट मानव संसाधन तो था, लेकिन प्राकृतिक संसाधन और कृषि-उत्पादन की अधिकता का अभाव था। ऐसे में यह जरूरी था कि विश्व के देशों से संबंध स्थापित किया जाय और स्थानीय मानव संसाधन को वैश्विक जरूरतों के हिसाब से प्रशिक्षित किया जाए।

दक्षिण कोरिया में हिन्दी की नींव

दो युद्धों (1962, 1965) और भीषण अकाल (1966) के सदमें से उबरने के बाद छठे दशक के उत्तरार्ध में भारतीय आर्थिक-राजनीतिक परिदृश्य बदला। घरेलू उत्पादन और व्यापार बढ़ाने के लिए रुपये के अवमूल्यन, बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969) और पाकिस्तान से बांग्लादेश को मुक्त कराने में भारत की सफल भूमिका (1971) से विश्व का ध्यान भारत की ओर जाना स्वाभाविक था। दक्षिण एशियाई परिदृश्य पर राजनीतिक शक्ति के रूप में भारत की पहचान बनने लगी।

दिसंबर 1971 में हुफ्स में हिन्दुस्तानी भाषा विभाग खुला और मार्च 1972 में हिन्दी की पढ़ाई शुरू हो गई। इसके साथ ही विभाग का नाम बदलकर हिन्दी विभाग कर दिया गया। यह सुखद संयोग है कि हुफ्स और हिन्दी का संबंध पहले बन गया, जबकि भारत और दक्षिण कोरिया के बीच राजनयिक संबंध 1973 में बना।

आठवें दशक का बदलता परिदृश्य

आठवें दशक में वक्त बदला, परिस्थितियाँ बदलीं तो हुफ्स की हिन्दी भी बदली; बदली ही नहीं बल्कि हुफ्स की चारदीवारी से आगे भी बढ़ी। सन् अस्सी के आस-पास पहले बैच के विद्यार्थी भारतीय विश्वविद्यालयों/संस्थानों से हिन्दी भाषा और साहित्य पढ़कर वापस आए और उन्होंने हिन्दी-शिक्षण, पाठयक्रम-निर्माण और विस्तार को नई दिशा देने का काम शुरू किया। हिन्दी के विस्तार की दृष्टि से 1983-84 में दो महत्त्वपूर्ण काम हुए। एक तो हुफ्स के मुख्य परिसर से अलग ग्लोबल परिसर (योंगिन शी) में हिन्दी विभाग का खुलना और दूसरा, बुसान (कोरिया का दूसरा बड़ा शहर) के बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज (बुफ्स) में हिन्दी विभाग का खुलना। एक ओर हुफ्स का हिन्दी विभाग परिपक्वता की ओर बढ़ रहा था, जबकि दूसरी ओर बुफ्स का हिन्दी विभाग प्रारम्भिक दौर की चुनौतियों से जूझ रहा था।

1985 में भारत-दक्षिण कोरिया के बीच दोहरे कर (टैक्स) से बचाव का समझौता व्यापारिक और कामकाजी संबंधों के लिए बड़ा फायदेमंद साबित हुआ और इसका प्रभाव नौवें दशक में दिखाई दिया।

नौवाँ दशक: प्रौढ़ हिन्दी, प्रगाढ़ संबंध

हिन्दी-शिक्षण में प्रौढ़ता तथा भारत और दक्षिण कोरिया के संबंधों में प्रगाढ़ता की दृष्टि से पिछली सदी का अंतिम दशक (1990-99) महत्त्वपूर्ण रहा। उदारीकरण और अन्य आर्थिक सुधारों के कारण भारत में व्यापार करना आसान हुआ। परिणामत: दोनों देशों के वाणिज्य-व्यापार संबंधों में विस्तार और व्यापकता आई। भारत अब बुद्ध और गाँधी के देश से ज्यादा बाजार की संभावनाओं के देश के रूप में जाना जाने लगा। बाजार की संभावनाओं में नई पीढ़ी को अवसर दिखाई दिया। इस दौर में हिन्दी सीखने वालों की बढ़त के पीछे उपर्युक्त प्रवृत्ति क्रियाशील रही।

इक्कीसवीं शताब्दी में हुफ्स की हिन्दी

नौवें दशक में भारत में आर्थिक सुधारों और व्यापारों के लिए अनुकूल वातावरण-निर्माण का जो सिलसिला शुरू हुआ था, इक्कीसवीं शताब्दी में उसका अपेक्षित परिणाम सामने आया। वाणिज्य-व्यापार और आयात-निर्यात में बढ़ोत्तरी हुई। भारत की पहचान उसके सांस्कृतिक विरासत से होती थी, लेकिन अब इक्कीसवीं सदी में उसकी पहचान उभरी हुई आर्थिक महाशक्ति

(या यों कहें कि बड़े बाजार) के रूप में होने लगी। इसके दो सर्वथा विपरीत परिणाम सामने आए। भारतीय मध्यवर्ग अंग्रेजी की ओर लपक पड़ा, जबकि विदेशों में, अच्छी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त विद्यार्थी हिन्दी सीखने लगे। समय की माँग के अनुसार यह स्वाभाविक ही था।

हुफ्स में हिन्दी के पाठन-पाठन का स्वरूप

कतिपय व्यावहारिक कारणों से (2013 में) हुफ्स के ग्लोबल परिसर का हिन्दी विभाग का नाम बदलकर भारतीय अध्ययन विभाग कर दिया गया और इसकी सम्बद्धता अंतरराष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय अध्ययन विद्यापीठ (College of International and Asian Studies) से कर दी गई। लेकिन, दोनों ही विभागों में हिन्दी की पढ़ाई होती रही। दोनों विभागों में तीस-तीस विद्यार्थी हर साल दाखिला लेते हैं। पाठयक्रम के डिजाइन में व्यावहारिकता, व्यापकता और समय की माँग के संतुलन का ध्यान रखा गया है। पहले और दूसरे वर्ष के पाठयक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों के पढ़ने, लिखने, सुनने तथा बोलने की क्षमता के विकास पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। भाषा अर्जन के सांस्कृतिक संदर्भ के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए शुरू से ही भारतीय संस्कृति (प्रथम वर्ष में) और संस्कृत (द्वितीय वर्ष में) पढ़ाई जाती है ताकि विद्यार्थियों का आधार मजबूत हो। हिन्दी में उर्दू के शब्दों और गंगा-जमुनी संस्कृति की उपस्थिति को देखते हुए उर्दू को भी पाठयक्रम का हिस्सा बनाया गया है। तीसरे और चौथे वर्ष में पाठयक्रमों में अध्ययन का स्तर उच्चतर हो जाता है। अंतिम दोनों वर्षों के पाठ्यक्रमों की संरचना कुछ इस प्रकार है कि विद्यार्थी हिन्दी के साथ-साथ किसी एक विषय के उच्चतर अध्ययन की दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं, जैसे, हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य, संस्कृत, उर्दू, भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन, भारतीय अर्थव्यवस्था एवं दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय अध्ययन आदि।

1990 में हिन्दी विभाग ने दिल्ली विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान विभाग के साथ अल्पकालिक आदान-प्रदान कार्यक्रम शुरू किया था। बाद में यह कार्यक्रम ब्रिक्स (BRICS) प्रायोजित सेमेस्टर एक्सचेंज प्रोग्राम (7+1) में बदल गया। इसके तहत विद्यार्थी आठ में से एक सेमेस्टर दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में नौ महीने पढ़ने का अवसर भी उपलब्ध है। कोरिया व्यापार-निवेश संवर्धन एजेंसी, कोरियाई पर्यटन संगठन तथा हयुंदै मोटर्स के तहत भारत में इंटर्नशिप का विकल्प भी है। इधर हाल के वर्षों में भारत एवं कोरिया और भी करीब आये हैं। व्यापक आर्थिक भागीदारी समझौता (CEPA 2009) के बाद दोनों के बीच आदान-प्रदान का सिलसिला बढ़ा है। ऐसे में समय की माँग है कि गुणवत्तापूर्ण मानव संसाधन का निर्माण हो। इस महत्त्व को पहचानते हुए हुफ्स ने अपने ग्रेजुएट स्कूल में इंडियन-एशियन अध्ययन विभाग खोला है। इसी क्रम में हिन्दी विभाग ने भी हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्रजुएट प्रोग्राम शुरू किया है।

अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन का आयोजन

शिक्षण कार्यों के अतिरिक्त हिन्दी विभाग हिन्दी के विकास और विस्तार संबंधी विमर्श का वैश्विक आयोजन भी करता रहा है। हिन्दी विभाग हुफ्स में दो अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों का शानदार आयोजन कर चुका है। 2007 में आयोजित अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन का विषय था ''पूर्वी एशिया में हिन्दी शिक्षण और अध्ययन'' जबकि 2014 में आयोजित अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन का विषय था ''इक्कीसवीं शताब्दी में हिन्दी-शिक्षण : एशियाई पैसिफिक सन्दर्भ''।

इस प्रकार हुफ्स का हिन्दी विभाग हिन्दी, भारत विद्या और भारतीय संस्कृति के शिक्षण के माध्यम से दोनों देश के बीच सांस्कृतिक सेतु का काम कर रहा है।

बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज में हिन्दी

बुसान दक्षिण कोरिया का दूसरा बड़ा शहर है। हिन्दी और भारतीय संस्कृति के अध्ययन की बढ़ती माँग को देखते हुए 1983 में बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज में हिन्दी और भारतीय अध्ययन विभाग खुला। इस विभाग में हर साल 55 विद्यार्थी दाखिला लेते हैं जिनमें से 30 हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति का अध्ययन करते हैं जबकि 25 विद्यार्थी भारतीय व्यवसाय की शिक्षा लेते हैं।

यहाँ भी हिन्दी-शिक्षण कोरियाई और भारतीय शिक्षकों के सम्मिलित प्रयास से संपन्न होता है। विभाग का प्रयास है कि विद्यार्थियों को किताबी हिन्दी के साथ-साथ बोलचाल की हिन्दी में भी प्रशिक्षित किया जाए। हिन्दी के व्यावहारिक

स्वरूप से परिचित कराने के उद्देश्य से विद्यार्थियों को एक सत्र में पढ़ाई के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों/संस्थानों में भेजा जाता है।

सउल नेशनल यूनिवर्सिटी

पाँच वर्ष पहले ही हिन्दी ने सउल यूनिवर्सिटी में भी दस्तक दिया है। सउल नेशनल यूनिवर्सिटी के एशियाई भाषा एवं अध्ययन विभाग के पाठयक्रम में हिन्दी मुख्य विषय तो नहीं है, हाँ भारतीय अध्ययन नामक मेजर का एक भाग जरूर है। वस्तुत: एशियाई भाषा एवं अध्ययन विभाग को फोकस भाषा और साहित्य के स्वतंत्र अध्ययन पर न होकर मानविकी अध्ययन पर है। फिर भी, अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थी भारतीय अध्ययन (मेजर) के अंतर्गत निर्धारित हिन्दी-1 एवं 2, प्रश्नपत्रों के माध्यम से हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लें। यह भी बताना प्रासंगिक होगा कि हिन्दी की तरह संस्कृत भी भारतीय अध्ययन (मेजर) के अंतर्गत शामिल है।

विश्वविद्यालयों से बाहर की हिन्दी

भारत-कोरिया के बीच कारोबार का अवसर बढ़ा तो व्यापारी-व्यवसायी और कंपनियों के कर्मचारी हिन्दी सीखने को उत्सुक हुए। इस माँग को पूरा करने के लिए कुछ संस्थाएँ हिन्दी सिखाने लगीं और कुछ वेबसाइट भी ऑनलाइन वार्त्तालाप का अभ्यास कराने लगे। क्षेत्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कुछ चर्च भी हिन्दी सिखाते हैं। लेकिन इनका स्वरूप कामचलाऊ ही है, इन्हें हिन्दी के अकादमिक अध्ययन में शामिल नहीं किया जा सकता।

कोरियाई-हिन्दी लेखन

कोरिया के शिक्षकों में अध्ययन और लेखन के प्रति लगन है। विश्वविद्यालय शिक्षकों के लिए शोध-प्रकाशन की अनिवार्यता के नियम से भी लेखन में गति आई है। कोरियाई शिक्षकों ने अपने अर्जित ज्ञान और संचित अनुभव से लेखन को नया आयाम दिया है। कोरिया में हिन्दी-व्याकरण और हिन्दी-कोरियाई शब्दकोश पर काफी काम हुआ। हिन्दी भाषा और व्याकरण पर लिखने वालों में प्रो. स. हैंग जंग (से.नि.), प्रो. ई जंग हो (से.नि.), प्रो. किम ऊ जो एवं प्रो. छोई जोंग छन आदि प्रमुख हैं। ई जंग ने आधुनिक हिन्दी, रवीन्द्र-साहित्य और गाँधी-वाङ्मय आदि पर लिखा है। प्रो, किम ऊ जो के लेखन का क्षेत्र विस्तृत है। आपने भाषा और व्याकरण के अतिरिक्त मध्यकालीन एवं आधुनिक हिन्दी साहित्य, रामकथा, भारतीय नारी आदि विषयों पर प्रामाणिक शोध-लेखन किया है। प्रो. छोई जोंग छन भाषा विज्ञान के विशेषज्ञ हैं। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त पाणिनी और भर्तृहरि पर भी उनका गहरा अध्ययन है। इसके अतिरिक्त आपने भारत में साम्प्रदायिकता, भारतीय मुसलमान, पंचायती राज आदि समकालीन विषयों पर भी शोध कार्य किया है। प्रो. लिम गन दौंग संस्कृत और हिन्दी दोनों के विद्वान हैं। भारतीय दर्शन, कालिदास, कबीर आदि अनेक शोध एवं लेखन के विषय हैं। प्रो. ई गू ली ने हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, प्रेमचंद, दलित साहित्य, भारतीय सिनेमा आदि विषयों पर स्तरीय लेखन किया है।

हुफ्स के शिक्षकों के अतिरिक्त बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज के शिक्षकों, प्रो. हौंग गन खो, प्रो. आलोक राय एवं डॉ. थे जिन खो ने भी हिन्दी भाषा और व्याकरण पर किताबें लिखी हैं।

हिन्दी-कोरियाई अनुवाद कार्य

कोरियाई हिन्दी शिक्षक, शिक्षण के साथ-साथ हिन्दी-कोरियाई अनुवाद भी करते हैं जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—तमस, भारतीय लोकथाएँ (ई. जंग हो), भारतीय छोटी कहानियाँ और अपना मोरचा (किम ऊ जो), निर्मला, प्रेमचंद की कहानियाँ (ई गू ली)। नो यंग जा, हिन्दी आलोचना-साहित्य के अनुवाद में अग्रणी रहे हैं। उनकी कृतियों में हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य की रूपरेखा का अनुवाद उल्लेखनीय है।

कोरियाई और भारतीय शिक्षकों के संयुक्त उपक्रम के परिणामस्वरूप हिन्दी समाज कोरियाई कृतियों से परिचित हो पाया है। इन अनूदित कृतियों में कोरियाई प्राचीन कथाएँ (सं जंग सुन एवं डॉ. ज्ञानम) कोरियाई आधुनिक प्रतिनिधि कविताएँ (किम ऊ जो एवं कर्ण सिंह चौहान), ग्वांग्जांग (नो यंग जा एवं आलोक राय) आदि प्रमुख हैं।

इन समर्पित विद्वानों के प्रयास से कोरियाई हिन्दी का अपना एक संसार बन चुका है लेकिन, कोरियाई भाषा में लिखे जाने के कारण कोरियाई हिन्दी-लेखन हिन्दी भाषी पाठकों से संबंध न बना सका।

❍❍❍

हिंदी ग़ज़ल : उच्चारण के आधार पर मान्य शब्द-प्रयोग

ज़हीर कुरेशी

कुल मिलाकर, हिंदी एक समर्थ और सुलझी हुई भाषा है- जैसी बोली जाती है, वैसी लिखी जाती है। दुनिया की हर भाषा दूसरी भाषा के शब्दों को आत्मसात करती है। एक ही देश की मिट्टी में पली-बढ़ी दो भाषाओं के शब्द निश्चित रूप से एक-दूसरे के घर आयेंगे-जायेंगे। लेकिन, आत्मसात होने के बाद, कोई भाषा अपनी शर्तों को थोप नहीं सकती। जिस भाषा ने उन शब्दों को गोद लिया है, वह अपनी संस्कृति और सुविधा के साथ उनकी परवरिश करेगी।

सम्पर्क: 108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ, भोपाल-462001 (म.प्र.) मो: 9425790565, ई-मेल: poetzaheerqureshi@gmail.com

हाल ही में, युवा अरूज़ी डॉ. आज़म की एक त्रिभाषी (हिंदी, उर्दू और इंग्लिश) पुस्तक आई है-'शब्द, शुद्ध उच्चारण और पदभार'। 'अपनी बात' यानी पुस्तक की भूमिका में डॉ. आज़म ने इस श्रम-साध्य शोध-कार्य के प्रयोजन पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है-'अरूज़ तो आवाज पर ही निर्भर करता है। अगर शब्द ही अशुद्ध उच्चारित करेंगे तो उसके वज़्न यानी पद्भार को अशुद्ध ठहरा ही लेंगे। उदाहरण के तौर पर शब्द ही तजरिबा (पदभार 2+1+2), मगर हर कोई इसे तजुर्बा (पदभार 1+2+2) बोलता है। शेर में 'तजुर्बा' यानी अशुद्ध उच्चारण वाले पदभार का उपयोग करने पर शेर वज़्न से गिर जाएगा।'

इसी सिद्धांत पर काम करते हुए डॉ. आज़म ने मुख्य रूप से उर्दू शायरी में प्रयुक्त किए जाने वाले लगभग 1700 शब्दों की डिक्शनरी प्रस्तुत की है जिसमें उर्दू का सही शब्द, शब्द पुल्लिंग है या स्त्रीलिंग, उसका वज़्न यानी पदभार, अशुद्ध उच्चारण और अंत में हिंदी, उर्दू, इंग्लिश तीन भाषाओं में उसका अर्थ दिया गया है। डॉ. आज़म द्वारा दी गई इस तरकीब में हर शब्द का वज़्न और शुद्ध उच्चारण के साथ अशुद्ध उच्चारण दिया जाना ही उसे आम शब्दकोष से अलग करता है।

'अपनी बात' में हिंदी ग़ज़लगोई पर बात करते हुए डॉ. आज़म ने आगे लिखा है-'आज ग़ज़लगोई का आंदोलन-सा चल रहा है। हर कोई प्रयासरत है, विशेष रूप से हिंदी भाषी ग़ज़लकार। मगर, उनमें अधिकतर को इल्मे-अरूज़ की मामूली-सी जानकारी भी नहीं होने के कारण, वे शेर 'लिख' तो लेते थे, मगर 'कह' नहीं पाते थे क्योंकि उन्हें शायरी की बेसिक टेक्निक की जानकारी नहीं थी। इस प्रकार, उनके शेर ढेर हो जाते थे।' यह धारणा डॉ. आज़म की ही नहीं, उर्दू शायरी के अधिकाँश अरूज़ियों एवं वरिष्ठ ग़ज़लगो शायरों की है।

यहाँ मैं डॉ. आज़म और उनके समान-धर्मा विचार-वेत्ताओं से एक ही बात कहना चाहता हूँ कि हिंदी एक अलग भाषा है। उसके पास अपना एक विशाल शब्द-कोश है। रदीफ़, काफ़िया,

और अरूज़ का पालन करते हुए भी हिंदी ग़ज़ल का सुभाव (मिज़ाज), भाव-भंगिमा, शब्द-सौष्ठव उर्दू ग़ज़ल से बहुत अलग दिखाई देता है। हिंदी ग़ज़लगो शब्दकोष में दर्शाए 1700 उर्दू शब्दों का उपयोग नहीं करते। उर्दू से अधिक से अधिक 50-60 शब्द ही ऐसे हैं जो आज के दैनिक जीवन में घुले मिले हैं... आम जन द्वारा उपयोग किए जाते हैं। हिंदी शब्द के साथ-साथ, हिंदी ग़ज़लगो यदा-कदा अपने शेरों में उन्हीं 50-60 शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं।

हिंदी ग़ज़लकारों को अच्छी तरह पता है-किस शब्द का पदभार (वज़्न) क्या होता है। अपने द्वारा प्रयुक्त बहरों के अर्कान उन्हें मालूम हैं और शेरों की परख के लिए छन्दानुशासी 'तक्तीअ' करना भी वे जानते हैं।

हिंदी ग़ज़लकारों को उर्दू शायरी में शब्दों की नम्यता का भी आभास है। वे जानते हैं कि शेर में 'अल्लाह' शब्द को 'अल्ला' के वज़्न में भी प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे लचीले शब्दों की सूची उनके ज़ोहन में है। जैसे-

क्र.	शब्द	पदभार	नम्यता के बाद शब्द-स्वरूप	पदभार
1	उम्मीद	2+2+1	उमीद	1+2+1
2	चट्टान	2+2+1	चटान	1+2+1
3	ख़ामोशी	2+2+2	ख़मोशी/ ख़ामशी	1+2+2/ 2+1+2
4	राहबर	2+1+2	रहबर	2+2
5	राहगुज़र	2+1+2	रहगुज़र	2+1+2
6	आईना	2+2+2	आइना	2+1+2
7	गुलसिताँ	2+1+2	गुलिस्ताँ	1+2+2
8	नज़ारा	1+2+2	नज़्ज़ारा	2+2+2
9	निगाह	1+2+1	निगह	1+2
10	नशा	1+2	नश्शा	2+2

उसी नम्यता को आधार मान कर, हिंदी ग़ज़लकारों ने आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले निम्नाँकित शब्दों को (1+2) के वज़्न में शायरी में स्वीकार कर लिया है:-

क्र.	उर्दू शायरी में मान्य शब्द	पदभार	हिंदी शायरी में मान्य शब्द	पदभार
1	शह्‌र	2+1	शहर	1+2
2	ज़ह्‌र	2+1	ज़हर	1+2
3	लह्‌र	2+1	लहर	1+2
4	क़ह्‌र	2+1	क़हर	1+2
5	नह्‌र	2+1	नहर	1+2
6	जम्‌अ	2+1	जमा	1+2
7	दख़्ल	2+1	दख़ल	1+2
8	रह्‌म	2+1	रहम	1+2
9	सह्‌ल	2+1	सहल	1+2
10	सुब्ह	2+1	सुबह	1+2
11	सुल्ह	2+1	सुलह	1+2
12	शम्‌अ	2+1	शमा	1+2
13	फ़स्ल	2+1	फ़सल	1+2
14	नक़्द	2+1	नक़द	1+2
15	वह्‌म	2+1	वहम	1+2
16	वज़्न	2+1	वज़न	1+2
17	वज्ह	2+1	वजह	1+2

उपरोक्त शब्दों को हिंदी ग़ज़लकारों ने किसी हठ के अंतर्गत नहीं, बल्कि सुविचारित तरीक़े से स्वीकार किया है। आम-जन की भाषा में ये शब्द (1+2) के पदभार में ही बोले जाते हैं और हिंदी गद्य (कहानी, उपन्यास, निबंध) में भी इन्हें (1+2) के पदभार में ही लिखा जाता है।

उदाहरण के लिए, हिंदी ग़ज़लगो कमलेश भट्ट कमल अपने निम्नाँकित मतले में 'शहर' शब्द को (1+2) के वज़्न में ही प्रयोग करते हैं:-

सोचता हूँ- इस शहर में भी कहीं पर मन लगे,
भीड़ है चारों तरफ़, फिर भी, अकेलापन लगे।

• • • •

इसी प्रकार, ग़ज़लकार भवानी शंकर अपने शेर में 'सुबह' (1+2) को 'सुब्ह' के पदभार में नहीं स्वीकारते:-

फिर वही ज़ंजीर में जकड़ी सुबह,
फिर वही अख़बार दरवाज़े पे है।

• • • •

इसके विपरीत आम जन-जीवन में प्रयुक्त होने वाले निम्नांकित शब्दों (2+1) को हिंदी ग़ज़लकारों ने उर्दू के वज़्न में यथावत् स्वीकार कर लिया है:-

जैसे:- ज़िक्र, रस्म, सब्र, शुक्र, शक्ल, उम्र, अक़्ल, फिक्र, कत्ल, गर्म, नज्र आदि। उदाहरण के लिए, अगर शायरी में कोई ग़ज़लगो 'गर्म' (2+1) शब्द को 'गरम' (1+2) के पदभार में प्रयोग करता है तो शेर ख़ारिज माना जाता है।

शेरी उदाहरण के लिए ग़ज़लकार सूर्यभानु गुप्त और ज़हीर कुरेशी के निम्नांकित शेर क्रमशः 'उम्र' और 'शक्ल' को लोक-प्रचलित रूप में ही उपयोग करते हैं। जैसे:-

उम्र भर, झोंपड़ी को दिखाती रही,
रोज़ कश्मीर के पोस्टर ज़िन्दगी।

– सूर्यभानु गुप्त

• • • •

'समुद्र' शक्ल से कितना शरीफ़ लगता है,
ये तस्करों से मिला है, पता नहीं लगता!

– ज़हीर कुरेशी

• • • •

विषयांतर न करते हुए, यहाँ मैं उर्दू के कुछेक शब्दों का और ज़िक्र करना चाहूँगा, जो जन-जीवन में आत्मसात होने के बाद उच्चारण में बदल गए हैं। हिंदी की ग़ज़ल, कविता, कहानी, उपन्यास के रचनाकार अब उन्हें जन-जीवन में प्रचलन के आधार पर ही प्रयोग करते हैं। उन शब्दों के लिए हिंदी साहित्य में अब कोई द्वैत नहीं है:-

क्र.	उर्दू शायरी में मान्य शब्द	पदभार	हिंदी शायरी में मान्य शब्द	पदभार
1	पियाला	1+2+2	प्याला	2+2
2	परवा	2+2	परवाह	2+2+1
3	ज़ियादा	1+2+2	ज़्यादा	1+2
4	खँडर	1+2	खंडहर	2+2+2
5	मुआमला	1+2+1+2	मामला	2+1+2
6	मुआफ़	1+2+2	माफ़	2+1
7	मसअला	2+1+2	मसला	2+2
8	मशअल	2+2	मशाल	1+2+1
9	तजरुबा	2+1+2	तजुर्बा	1+2+2
10	क़िलआ	2+2	क़िला	1+2

उदाहरण के लिए, हिंदी ग़ज़लकार माधव कौशिक अपने निम्नांकित शेर में 'ज़्यादा' शब्द को (2+2) के पदभार में ही प्रयुक्त करते हैं:-

इससे ज़्यादा तन्हाई की तन्हाई क्या होती है,
भीड़ भरे बाज़ारों में भी खुद को तन्हा देखा है।

• • • •

ग़ज़लकार महेश अग्रवाल भी अपने शेर में 'मसला' (समस्या) शब्द को 'मसअला' (1+2+2) के वज़्न में प्रयोग नहीं करते। शेर-

हमें इन्सानियत की मौत का ही ख़ौफ है केवल,
न मसला आरती का है, न मसला है अज़ानों का।

• • • •

कुल मिलाकर, हिंदी एक समर्थ और सुलझी हुई भाषा है- जैसी बोली जाती है, वैसी लिखी जाती है। दुनिया की हर भाषा दूसरी भाषा के शब्दों को आत्मसात करती है। एक ही देश की मिट्टी में पली-बढ़ी दो भाषाओं के शब्द निश्चित रूप से एक-दूसरे के घर आयेंगे-जायेंगे। लेकिन, आत्मसात होने के बाद, कोई भाषा अपनी शर्तों को थोप नहीं सकती। जिस भाषा ने उन शब्दों को गोद लिया है, वह अपनी संस्कृति और सुविधा के साथ उनकी परवरिश करेगी। मैं समझता हूँ- उर्दू के अरूज़ियों और वरिष्ठ ग़ज़लगो शायरों को हिंदी ग़ज़लकारों के साथ इसी नज़रिए से पेश आना चाहिए। ❍❍❍

मेरी हिन्दी यात्रा

सुधीश पचौरी

"हमारा स्कूल यों तो एक खंडहर था जिसमें बच्चों के मुकाबले बंदर अधिक हुआ करते थे। बच्चे नीचे पढ़ते बंदर ऊपर उधम मचाते रहते। छतें टूटी हुईं होतीं, उनमें से उनके बच्चे ऊपर से लटका कर मुँह दिखाया करते। टीचर इधर पढ़ाते, उधर बंदर मुँह चमकाते और हम बहुत से बच्चे पढ़ा करते। टीचर जी को मंगल और शनि के दिन हनुमान जी आया करते। वे हनुमान चालीसा का जोर-जोर से पाठ किया करते और हम सब उसमें शामिल हो जाते। कोरस को सुनकर बंदर लोग सन्नाटे में आ जाते। उनकी उछल-कूद थम जाती। बूँदी का प्रसाद बँटता, हम लोग उसे घर ले जाते।"

जिला अलीगढ़ का बीरपुरा गाँव। गाँव में एक प्राइमरी पाठशाला जो गभाने वाले कुँवर साहब की छतरी के पास तीन कमरों वाली एक पक्की इमारत में थी। मुझे गाँव के इसी स्कूल में पढ़ना था। वह पहली कक्षा थी कि दूसरी कक्षा थी यह तो याद नहीं लेकिन इतना याद है कि हमारे मास्टर जी हिन्दी में 'इमला' लिखाने के लिए प्रसिद्ध थे। लोग कहते थे कि उनका पढ़ाया बच्चा हिन्दी में ऐसा पक्का हो जाता है कि कभी गलत इमला नहीं लिखता।

ऐसे ही एक दिन सबको खबर हुई कि स्कूल में इंस्पेक्टर आने वाले हैं और उनके आने से पहले मास्टर जी हिन्दी मात्राओं की इमला बोलकर हमारी परीक्षा लेने वाले हैं जिसे इंस्पेक्टर साहब देखेंगे।

कक्षा लगी और मास्टर जी इमला बोलने लगे। हम सब अपनी स्लेट पर खड़िया की बत्ती से लिखने लगे। उन्होंने कई शब्दों के बाद एक शब्द बोला, 'गुड़'।

जब परीक्षा हो गई तो मास्टर जी ने सबको बारी-बारी से बुलाया और देखने लगे। सब अपनी स्लेट लेकर डरते-काँपते पहुँचते और कुछ देर में मुस्कुराते हुए अपने टाट पर आकर बैठ जाते।

मैं भी इसी भाव से लौटने की उम्मीद लेकर पहुँचा। मास्टर जी ने मेरी स्लेट देखी और अपनी गोद में रख ली। वे मुस्कुराये। मुझे पास बुलाया और सटाक एक तमाचा मेरे बाएँ गाल पर रसीद किया। एक आवाज-सी हुई और फिर सब-कुछ खामोश हो गया। गाल कुछ देर के लिये संज्ञाशून्य रहा। उसके बाद उसमें मिरचें-सी महसूस हुईं और मुझे लगा कि आँखों से दो मोटे आँसू टपकने वाले हैं। फिर मास्टर जी की आवाज सुनाई पड़ी, "पचौरी के बच्चे, आज तेरा ही बाप निरीक्षण करने आ रहा है और तू उसका बेटा होकर 'गुण' को 'गुड़' लिख रहा है। आने दे उसे दिखाऊँगा कि उसका बेटा कितना हुशियार है कि 'गुण' लिखना नहीं जानता। तेरा बाप खुद हिन्दी का विद्वान है और तू ऐसी गलती करता है?"

क्षणमात्र में मुझे अपना भविष्य प्रकट हो गया। कुछ देर वहीं

सम्पर्क: 17, 1 हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंटस, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091, मोबाइल: 9811713296

खड़ा रहा फिर गुरु जी की क्रोध भरी नजरें देखकर वापस अपने टाट पर आकर बैठ गया।

पिताजी इंस्पेक्टर के रूप में आए। मास्टर ने रिपोर्ट दी। यह भी कहा कि चाहें तो इमला की क्लास ले लें। उन्होंने परीक्षा नहीं ली और चले गए। जब इंस्पेक्शन हो गया, तब मास्टर जी मेरे पास आए। बोले, ''बेटे देखा, तेरे बाप को मैंने नहीं बताया, दिखाता तो और पिटता अब कान पकड़। इमला में कभी गलती न करना वरना रोटी तक नहीं मिलेगी।''

मुझे मास्टर जी ने बचा लिया। इस अहसास से मेरे कान की सनसनी जाती रही। तमाचा मुझे वरदान लगा।

और शायद वह वरदान ही था कि उसके बाद मैंने कभी हिन्दी की वर्तनी की गलती नहीं की। जब भी लिखता सही लिखता। एक बार फिर पढ़ता और जहाँ कहीं मात्रा आदि में गलती हो जाती, सही करता चलता।

तब हिन्दी के मास्टर हिन्दी के लिए दो ही बातें जरूरी समझते थे। एक, कि वर्तनी सही हो दूसरे, कि हस्तलेख सुंदर हो। उसे 'खुशखत' कहा करते। बाद में मालूम पड़ा कि वह हिन्दी का नहीं उर्दू का शब्द है और इमला भी उर्दू का ही शब्द है।

यह मेरी हिन्दी की शुरुआत थी जो इसके बाद मुझे हिन्दी अपने शहर हाथरस में मिली।

गरीब बुआओं के पास गरीबी के अलावा कुछ न था। बदहाली का हाल यह था कि उनके पास स्कूल के मास्टर को अलग से देने के लिए इकन्नी तक नहीं होती थी। मुहल्ले के पास एक चटसार थी जो एक मंदिर से जुड़ी थी जिसके पुजारी जी बच्चों को गणित और हिन्दी मुफ्त में पढ़ाया करते थे। मुझे वहाँ भर्ती करया गया। यहाँ का पढ़ाने का तरीका मजेदार था। गुरु जी पहले मंदिर की आरती करते। घंटी बजाते कुछ भक्तजन आते। प्रसाद चढ़ाते। आरती होती। हम सब उसमें शामिल होते। भक्तजन हम लोगों को भी प्रसाद बाँटते। हम लोग अपने बस्ते में उसे रख लेते और तब कक्षा शुरू होती।

हमारे मास्टर जी का नाम शायद अमरनाथ था। उनके माथे पर चंदन का तिलक लगा रहता। वे जोर से बोल-बोलकर पढ़ाते। पहले वे बोलते फिर हम सबको उसी तर्ज में जोर-जोर से दोहराना होता। जब हम लोग धीमे पड़ जाते तो गुरु जी की कड़क आवाज कोड़ा मारती, ''मर गए क्या? अब जोर से बोलो'' दो दूनी चार, दो तीया छै... अठ पंजे चालीस, चौदह पंजे सत्तर।'' पहले गिनती फिर पहाड़े और फिर उनकी पहेलियाँ कि, ''कै निम्मा चूल्हे में लक्कड़?''

एक ओर ककहरा और बारहखड़ी चलती 'क'–'का'–'कि'–'की' तरह बोलते लेकिन लय के साथ बोलते तो सुनाई पड़ता, ''कक्का किक्की कुक्कू के कैई को कौ कं क:'' इसी धुन में क्षत्राज्ञ तक चलता महीने भर की इस रटंत का जादू ऐसा होता कि ककहरा गाने की तरह जुबान पर बैठ जाता और पहाड़े भी एक धुन में कंठस्थ हो जाते।

वे कवि भी थे, ब्रजभाषा में कविता किया करते थे। उन्हीं दिनों हमने 'समस्यापूर्ति' शब्द सुना। वे समस्यापूर्ति किया करते थे। यह बाद की बात है कि सन् सत्तावन के आस-पास उनकी प्रेरणा से हमने भी एक समस्यापूर्ति कंपटीशन में हिस्सा लिया। लेकिन इस अवांतर प्रसंग को यहीं छोड़ा जाय।

उस चटसार की पढ़ाई मैं कभी न भूला। बीस तक का पहाड़ा अब तक याद चला आता है और ककहरे को कैसे भूल सकता हूँ जिसने मुझे न कभी गलत उच्चारित करने दिया न लिखने दिया। हिन्दी फोनेटिक भाषा कहलाती है तो शायद इसीलिए कि वह 'ककहरे' के जरिए 'बारहखड़ी' के जरिए बोल-बोलकर सिखाई जाती थी, यानी रटाई जाती थी।

इन दिनों जब बड़े-बड़े शिक्षाविद् रटने का उपहास उड़ाते हुए कहते हैं कि रटना बच्चे की कल्पना को किल कर देता है तो हँसी आती है। अरे आजादी के बाद के दिनों तक हिन्दी और गणित को मौखिक परम्परा में ही सीखा सिखाया जाता था। साथ-साथ लिखना भी चला करता था और उसकी रटंत से जो शब्दक्रीड़ा का मजा मिलता था, तुकबंदी का जो आनंद मिलता था, वह बिना रटे मिल ही नहीं सकता।

उसके बाद जब लोहट बाजार की प्राथमिक पाठशाला में आए तब जाकर हमारा अंग्रेजी से प्रथम परिचय हुआ।

हमारा स्कूल यों तो एक खंडहर था जिसमें बच्चों के मुकाबले बंदर अधिक हुआ करते थे। बच्चे नीचे पढ़ते बंदर ऊपर उधम मचाते रहते। छतें टूटी हुई होतीं, उनमें से उनके बच्चे ऊपर से लटका कर मुँह दिखाया करते। टीचर इधर पढ़ाते, उधर बंदर मुँह चमकाते और हम बहुत से बच्चे पढ़ा करते। टीचर जी को मंगल और शनि के दिन हनुमान जी आया करते। वे हनुमान

चालीसा का जोर-जोर से पाठ किया करते और हम सब उसमें शामिल हो जाते। कोरस को सुनकर बंदर लोग सन्नाटे में आ जाते। उनकी उछल-कूद थम जाती। बूँदी का प्रसाद बँटता, हम लोग उसे घर ले जाते।

हमारे इसी स्कूल के ऐन सामने एक घर में निर्भय प्रेस का बोर्ड लगा था। हमारी बुआ ने बताया कि वो निर्भय का प्रेस है किताब छापता है। हमारे पिताश्री के साथ वो निर्भय पढ़ा है, इसलिए रिश्ते में हमारा चाचा लगता है। हम वहाँ जाकर मिल सकते हैं।

हम एक दिन वहाँ गए और पाया कि वो एक मजेदार जगह है। हम गए तो निर्भय चाचा ने दो किताबें हमें दीं। एक थी जो हिन्दी में अंग्रेजी के सौ शब्दों को हिन्दी अर्थ के साथ दोहों में सिखाने वाली और दूसरी थी 'दिल्लगी' जिसके मुखपृष्ठ पर वह तस्वीर थी जो उल्टी-सीधी एक समान दिखती थी जिसे बाद में अकबर-बीरबल विनोद की किताबों में छपा देखा। उस दिल्लगी के मुखपृष्ठ पर दो लाइनें छपी थीं—

''दिल्लगी से दिल लगाकर देखिए
चार पैसे में मँगाकर देखिए!!''

तो हमें अंग्रेजी मिली तो हिन्दी के जरिए मिली। हमारे हाथरस में तब तक अंग्रेजी कोई रौब-रुतबे की भाषा नहीं थी न उसका आतंक था। हाथरस की धुर्राशाही में अंग्रेजी कहाँ समाती? यह हिन्दी की ठसक थी ब्रज की ठसक थी। घर में ब्रज रहती, सड़क पर हिन्दी हो जाती। स्कूल-कॉलेज में हिन्दी होती और वही परिनिष्ठित यानी स्टेंडर्ड भाषा मानी जाती। आदमी को घर में जब गुस्सा आता तो वह ब्रजी छोड़ हिन्दी में बोला करता।

तीसरी हिन्दी हमें नॉर्मल मिडिल स्कूल हाथरस में मिली। यह छठी से आठवीं तक का स्कूल था। यह टीचर प्युपिल वाला स्कूल था। टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल था। यही शहर का सबसे अच्छा स्कूल कहलाता था। सुबह-सुबह पीटी होती। बच्चे लाइन लगाकर प्रार्थना करते—

''वह शक्ति हमें दो दयानिधे,
कर्तव्य मार्ग पर डँट जावें।
पर सेवा पर उपकार में हम,
निज जीवन सफल बना जावें।
निज आन-मान मर्यादा का,
प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जो हैं अटके भूले-भटके,
उनके तारें खुद तर जावें।''

यहीं हमने 'रामचरितमानस' केंद्रित कविता की एक अंत्याक्षरी में सेकिंड इनाम पाया। हमें मानस का एक गुटका और एक बड़े आदमी साइज की सेंडो बनियान इनाम में मिली। यह सब हिन्दी का प्रताप था।

इसी प्रार्थना में एक स्तरीय हिन्दी भी हमने जानी। एक ट्रेनिंग करने वाले दिव्यांग अध्यापक थे, उनके पंजे शायद जन्मना मुड़े हुए थे। उनके जूते गोल थे, वे सहारे से चलते थे लेकिन क्या उनकी आवाज और क्या उनके पढ़ने का अंदाज कि लगता बिना माइक के भी आप आकाशवाणी की खबरें सुन रहे हैं।

वे हर सुबह पाँच मिनट दैनिक अखबार लेकर उसकी कुछ खास खबरों को मंच से पढ़कर सब बच्चों को सुनाया करते। सभी बालक खबरों को ध्यान लगाकर सुना करते। इन्हीं दिनों उन्होंने अंतरिक्ष में रूस के स्पुतनिक के जाने की खबर दी। यह एक मजेदार खबर थी और देर तक हम बालक लोग उसके बारे में चर्चा करते रहे।

हमारे एक अंग्रेजी टीचर भी थे जो हमें अंग्रेजी पढ़ाया करते। वे हिन्दी माध्यम से अंग्रेजी पढ़ाते। वे भी डिक्टेशन देते। इसके लिए वे पहले शब्द देते फिर कहते रटकर आना, नहीं तो सजा मिलेगी। हैंडराइटिंग बढ़िया होनी चाहिए। हैंडराइटिंग सुधारने का उनका अपना तरीका था। उन्होंने डिक्टेशन दिया और मुझसे स्पेलिंग की एक जगह मिस्टेक हो गई। उसके बाद मुझे जो ज्ञान मिला वो इस तरह था—गुरु जी सामने आकर खड़े हो गए। उनको आते देख हम भी खड़े हो गए। हम डरे कि बेटा आज खैर नहीं और यही हुआ। वे आए, उन्होंने कान से पेंसिल उतारी और हमारे दाएँ हाथ की उँगलियों के बीच फँसाकर दबानी शुरू की। ओह वो दर्द... हमारी चीख निकल गई। क्लास हँस पड़ी। कुछ देर वही स्थिति रही। फिर गुरु जी को तरस आया और पेंसिल ढीली की गई। सच कहूँ उस दिन के बाद से आज तक हमारा हस्तलेख एकदम टनाटन हो गया। 'खुशखत' का मतलब तब समझ में आया और यह आया कि जिनके हस्तलेख सुंदर होते हैं उनके हस्तलेख के पीछे किसी-न-किसी गुरु देवीलाल की एक पेंसिल होती है।

जब तक सन सड़सठ के वर्ष नहीं आए थे तब तक हम अपनी हिन्दी को लेकर संतुष्ट ही थे।

ये 'अंग्रेजी हटाओ' वाले वर्ष थे और हम शहर के बागला कॉलेज में बी.ए. में अंग्रेजी, हिन्दी, इतिहास, राजनीति शास्त्र पढ़ा करते थे। हमारे अंग्रेजी टीचर श्री आर.एल. वार्ष्णेय जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी पढ़कर पढ़ाने आए थे। वे फर्राटे में अंग्रेजी बोला करते फिर विद्यार्थियों को समझाने के लिए हिन्दी में भी बताया करते। उन्हीं ने 'ओथेलो' पढ़ाया और 'टेस' उपन्यास पढ़ाया।

हिन्दी के बीच में अंग्रेजी इसी तरह आई। बहुत कुछ हिन्दी होती और थोड़ी-थोड़ी अंग्रेजी होती। लेकिन पूरी तरह अंग्रेजी न होती।

हिन्दी श्री कृष्णचंद्र खेमका जी पढ़ाते और वे इतना अच्छा पढ़ाते थे कि हिन्दी में रस आने लगा और हम हिन्दी के ही हो गए। कॉलेज में एम.ए. हिन्दी का पाठ्यक्रम ही खुला था। शहर में रहकर कम खर्च में उसमें एम.ए. किया जा सकता था, वही किया।

बहरहाल बी.ए. के इम्तहान हुए। इंगलिश लेंग्वेज का परचा था जिसमें अंग्रेजी के शब्दों के मुहावरों को अंग्रेजी के वाक्यों में सही तरह से प्रयोग करना था। हर शब्द के दो नम्बर होते।

परचे में कई शब्द थे जो हमारे लिए एकदम नए थे। कुछ सरल थे लेकिन कुछ कठिन। एक शब्द था 'सेंडविच'! कई कठिन शब्दों के बीच सेंडविच ही ऐसा शब्द लगा जिसका हम वाक्य में प्रयोग कर सकते थे। हमारे 'सेंड' का मतलब बालू था 'विच' का जो होगा सो होगा। लेकिन 'सेंड' यानी बालू एक नम्बर तो दिला ही देगा। सो हमने प्रयोग कर दिया। हमारे दो नम्बर निकल गए।

बहुत बाद में हमने 'सेंडविच' का अर्थ तब समझा जब हमने दिल्ली के एक रेस्त्रां में सेंडविच खाई। तब हमें अपने-अपने अंग्रेजी ज्ञान की हानि के उस दंड का अहसास हुआ जो हमें बी.ए. में मिला था।

इन बेकार के निजी प्रसंगों को यहीं विश्राम दें और समझने की कोशिश करें कि हिन्दी की कक्षा में कोई क्यों आता है और क्यों उसे पढ़ता है? क्योंकि उसके पास कोई और विकल्प नहीं होता है। हिन्दी कम खर्च में पढ़ी जा सकती है।

अंग्रेजी मात्र भाषा नहीं है एक पूरी जीवन शैली है। अगर हमारी जीवन शैली में बचपन से सेंडविच होती तो हमारे नम्बर नहीं कटते। अंग्रेजी का डर न बैठता। घर में हाथ की रोटियाँ थीं, सेंडविच दूर-दूर तक नहीं थी तो सेंडविच का अर्थ हम कैसे जान पाते? माना कि अंग्रेजी डिक्शनरी से समझ लेते लेकिन जब तक कोई शब्द ज़िंदगी में नहीं होता, तब तक कहाँ टिकता है?

हाँ, आज मालूम पड़ता है कि अंग्रेजी को भी हिन्दी से लेना-देना पड़ रहा है। ऑक्सफोर्ड वालों ने हिन्दी के 'चटनी' और 'रायता' आदि कई हिन्दी शब्द अपने शब्दकोश में शामिल किए हैं। इससे सिद्ध होता है कि हिन्दी की भी अपनी जीवन शैली है जिसकी ठसक का अब जाकर कुछ-कुछ अहसास होता है? ये सवाल हिन्दी से जुड़े हुए कुछ बुनियादी सवाल हैं।

ये सवाल न मैंने अपने आपसे कभी पूछे हैं न कोई और पूछता है लेकिन ये सवाल बिना कहे-सुने भी कहे-सुने जाते हैं। ये हवा में बिना बोले तैयार रहते हैं और जब कभी कहीं-कहीं हिन्दी पिटती है वहीं ये सवाल गूँजने लगते हैं, लेकिन वे भी इस कदर खामोशी से गूँजते हैं कि न किसी हिन्दी वाले को देर तक सुनाई पड़ते हैं न देर तक तंग करते हैं।

मैं इस तरह के सवालों को सुनता रहता हूँ और इनके जवाब ढूँढता रहता हूँ क्योंकि इन सवालों के जवाबों से ही हिन्दी, हिन्दी समाज के 'गर्व' की भाषा बनेगी।

मेरे लिए मेरी हिन्दी मेरा गर्व है। वह किसी को दबाती नहीं है और किसी से दबती भी नहीं। अंग्रेजी से भी नहीं। बशर्ते कि आप उसे पूरे आत्मविश्वास से जम के बोलें, उसमें नए-से-नए ज्ञान को लाएँ। संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी के ज्ञान को भी लाएँ और हिन्दी में कायदे से चलाएँ। अंग्रेजी वाला सामने होता है तो मैं उसकी सुविधा के लिए अंग्रेजी में नहीं बोलता, हिन्दी में ही बोलता हूँ और इस तरह उसे बताता हूँ कि जिस तरह वह अंग्रेजी को मेरी मजबूरी बना रहा है, हिन्दी को मैं उसके लिए उसकी मजबूरी बना रहा हूँ और इस तरह 'खेल के बराबर में' मैदान में खेल रहा हूँ। इसलिए जिस तरह मुझे कुछ अंग्रेजी आनी चाहिए उस तरह उसे भी हिन्दी आनी चाहिए।

OOO

हिंदी जगत के दिव्यमान नक्षत्र डॉ. प्रभाकर माचवे

सुरेंद्र अग्निहोत्री

> *आज के युग में किसी भी कवि को युग-प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। इसका कारण स्पष्ट है। आज का कवि हर छोटे से छोटे व्यक्ति को महत्व देता है। उसकी जीवन-गति को परखता है। उसकी मानसिक संवेदनाओं से जुड़कर कुछ लिखता है। इस तरह से हर कवि समाज के एक छोटे-से अंश का ही बिम्ब खींचता है। ऐसे में विभिन्न कवियों के बिम्बों को जोड़ने से ही समूचे समाज का बिम्ब बनता है। आज का कोई एक कवि युग का प्रतिनिधित्व करता है।*

सम्पर्क: ए-305, ओ.सी.आर. बिल्डिंग, विधानसभा मार्ग, लखनऊ,
मो. 9415508695

भारतीय भाषाओं में एकात्मकता के पोषक बहुभाषी साहित्यकार, कवि, पत्रकार डॉ. प्रभाकर माचवे ज्ञान चेतना के धरातल पर अनूठे हरकारे के रूप में प्रसिद्ध है, सदैव प्रतिबद्धता के साथ साहित्य रचते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कभी भी अँधेरा सुबह होने को रोक नहीं पायेगा। वैचारिक दरिद्रता ही देश के दु:ख, अभाव, पीड़ा, अवनति का कारण है। डॉ. प्रभाकर माचवे ने अपनी प्रथम रचना 15 वर्ष की उम्र लिखी ही नहीं अपितु रचना को आदर के साथ छपने का अवसर सुलभ हुआ रचना सृजन महत्वपूर्ण होने के कारण। महेंद्र भटनागर के शब्दों में माचवे जी सही अर्थों में कलम के धनी हैं। वे जब लिखने बैठते हैं तब उनकी लेखनी की त्वरा देखने योग्य होती है। जलधारा का-सा सहज प्रवाह! कोई कृत्रिमता नहीं। कोई माथापच्ची नहीं। जैसे लेखनी में सब-कुछ भरा हुआ है और यह अद्‌भुत सर्जक—शिल्पी उसे कागज पर उतारता चला जा रहा है। कहने का आशय—प्रभाकर माचवे में जो लेखन-सामर्थ्य है वह विरल है। यह गुण न अभ्यास से हासिल किया जा सकता है न अनुकरण से। माचवे जी के व्यक्तित्व में यह घुला-मिला एक प्राकृतिक तत्व है। सादगी की प्रतिमूर्ति डॉ. प्रभाकर माचवे का जन्म 26 दिसंबर, 1917 ग्वालियर, मध्य प्रदेश में हुआ था। शिक्षा इंदौर और आगरा में हुई। एम.ए., पी-एच.डी. एवं साहित्य वाचस्पति की उपाधियाँ प्राप्त कर मजदूर संघ, आकाशवाणी, साहित्य अकादमी, भारतीय भाषा परिषद् आदि से संबंद्ध रहे। राष्ट्रपति महात्मा गाँधी ने हिंदी एवं मराठी के प्रख्यात लेखक एवं तारसप्तक के यशस्वी कवि प्रभाकर माचवे की शादी अपने आश्रम सेवाग्राम में 8 नवंबर, 1940 को आश्रम की एक अनाथ लड़की से कराई थी। श्री माचवे की शादी में गाँधी जी ने खुद अपने हाथ से सूत कातकर माला पहनाई थी और कस्तूरबा गाँधी ने अपने हाथ से सूत कातकर एक साड़ी उनकी पत्नी को उपहार में दी थी। इस शादी में कुल 54 पैसे खर्च हुए थे और इसमें खान अब्दुल गफ्फार खान, सरोजिनी नायडू, मौलाना आजाद, राजकुमारी अमृत कौर, महादेव देसाई और डॉ. कृपलानी जैसे लोग मौजूद थे। श्री माचवे ने गाँधी जी के कहने पर आजीवन खादी पहनने का संकल्प व्यक्त किया था। जिसे उन्होंने मृत्युपर्यंत निभाया था। डॉ. प्रभाकर माचवे

का निबंध और एकांकी साहित्य, निबंधों के अंतर्गत हास्य की अभियोजना करने में हिंदी साहित्यकार, अपने ढंग से सक्षम रहे हैं। इनमें माचवे का नाम भी आदर के साथ लिखा जाता है। माचवे जिस समय निबंध लिखते थे, उस समय गंभीर तथा विचारात्मक निबंध अधिक लिखे जा रहे थे। लेकिन माचवे ने अपने निबंधों के लिए ललित निबंधों का क्षेत्र चुना। हास्य और व्यंग्य प्रधान तथा ललित निबंध उन्होंने अधिक लिखे। तार सप्तक में कविता के माध्यम से नये प्रतिमान गढ़ते हुए प्रतिरोध करती पहली रचना यहाँ मुक्ति की प्रबल चाह अपने अनूठे वाक्य सामर्थ के कारण अलग ही ध्वनि उत्पन्न करती दिखती हैं-

यहाँ मुक्ति की प्रबल चाह है उसी एक दुर्दान्त शक्ति की-
हमें न कोई पनाह अथवा शरण चाहिए, अंध-भक्ति की!
यहाँ सरल अंतर दो परस्परातुर, और चाहिए भी क्या?
हमें न किंचितमात्र जरूरत किसी तर्क की, किसी युक्ति की!

माचवे कहते थे कि आज के युग में किसी भी कवि को युग-प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। इसका कारण स्पष्ट है। आज का कवि हर छोटे से छोटे व्यक्ति को महत्व देता है। उसकी जीवन-गति को परखता है। उसकी मानसिक संवदेनाओं से जुड़कर कुछ लिखता है। इस तरह से हर कवि समाज के एक छोटे-से अंश का ही बिम्ब खींचता है। ऐसे में विभिन्न कवियों के बिम्बों को जोड़ने से ही समूचे समाज का बिम्ब बनता है। आज का कोई एक कवि युग का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ. प्रभाकर माचवे कहते थे आज का युग असाधारणीकरण का है। इसका प्रभाव कविता के कथ्य व रूप दोनों पर पड़ा है। कथ्य व रूप का यह असाधारणीकरण ही आज की कविता की सुग्राह्यता में कमी लाता है और उसे दुरूह बनाता है। अखबारी प्रेस का बढ़ता प्रभाव भी कविता को प्रदूषित कर रहा है। एक और प्रमुख बात यह है कि अब कविता जीविका का साधन नहीं रही है। कविता को कोई छापना नहीं चाहता है। व्यावसायिकता के इस अभाव में कविता या तो अंशकालिक (पार्ट-टाइम) हॉबी मात्र बनकर रह गई है या फिर धनोन्मुख हो गई है। धन की आवश्यकता ने कवियों की खेमेबाजी को बढ़ावा दिया है। आज कवियों के तमाम ग्रुप हैं-जैसे कम्युनिस्ट ग्रुप व मंचीय ग्रुप। नौकरशाही के निरंतर बढ़ते प्रभाव ने भी कविता की स्वतंत्रता को तरह-तरह से कुचला है। वर्तमान कविता के प्रसार में यह भी एक बड़ा संकट है। सच्ची कविता कालजयी होती है। वह सदैव जीवित रहती है। साधारण जनता को हो सकता है नई कविता अच्छी न लगे क्योंकि वह मनोरंजन नहीं करती। मंचीय कविता मात्र मनोरंजन का साधन भर है, अतः वह दीर्घजीवी नहीं हो सकती। नई कविता मानव के अस्तित्व एवं चिंतन की पहचान है, और यदि वह इंगित की गई विसंगतियों से उबर सकी तो निश्चित रूप से शाश्वतजीवी सिद्ध होगी।

कविता क्या है? कहते हैं जीवन का दर्शन है — आलोचन,
(वह कूड़ा जो ढँक देता है बचे-खुचे पत्रों के स्थल)।
कविता क्या है? स्वप्न श्वास है उन्नन कोमल,
(जो न समझ में आता कवि के भी ऐसा है वह मूरखपन)
कविता क्या है? आदिम-कवि की दृग-झारी से बरसा वारी-
(वे पंक्तियाँ जो कि गद्य हैं कहला सकती नहीं बिचारी)!

संवदेना के बदलते परिवेश पर कवि व्यंग्यात्मक शैली में अपनी अभिव्यक्ति कुछ इस तरह से व्यक्त करते हैं-

पहले उस ने पाले कुछ पिल्ले
बड़े हुए, भाग गये;
पाली कुछ बिल्लियाँ, वे
दोस्तों को दे दीं।
फिर पाली कुछ लाल मछलियाँ,
वे मर गयीं;
पाला एक तोता, जो उड़ गया।
जोड़े का एक बचा
उठा गयी मित्र की बिडाली उसे
पालने की यह आदत
कम न हुई।
सुना है कि आजकल, रखें हैं कुछ आदमी
पालतू,
फालतू!

काशी के घाट पर कविता में कवि मेघों के माध्यम से बड़े ही मोहक अंदाज में जीवन-मृत्यु के गान के बीच प्रेमराग को जीवनराग बना कर पल-प्रतिपल को कूलों की परवाह किए बिना मानाकूल को स्वर देते हैं।

क्या पता कहाँ आना-जाना क्या कूलों की परवाह, पिया!
इस क्षण दो ओठों में गाना दो ओठों में हो चाह, पिया!
वह हिलराता, मदमाता हो, मौजें लेता दरियाव, पिया!
मेघों में मुँह ढाँके मयंक, सुधि मन में गिनती घाव, पिया!

डॉ. प्रभाकर माचवे के रचना संसार में कविता संग्रह 'स्वप्न

भंग', 'अनुक्षण', 'विश्वकर्मा', व्यंग्यसंग्रह, 'तेल की पकौड़ियाँ', 'खरगोश के सींग' इनके अतिरिक्त उपन्यास, निबंध, समालोचना, अनुवाद आदि मराठी, हिंदी, अंग्रेजी में 130 से अधिक पुस्तकें हैं। साहित्य वाचस्पति, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, सुब्रह्मण्यम भारती पुरस्कार सहित अनेक सम्मानों से नवाजे गये डॉ. प्रभाकर माचवे कभी रुकने और झुकने वाले नहीं अपितु चरैवेति-चरैवेति के सिद्धांत के प्रतिपालक पैरोकार थे, हमेशा अपने लिए एक नई भूमिका चुन लेते थे। पत्रकार के रूप में अपनी नई भूमिका 'चौथा संसार' के संपादक के रूप में चुनी और जीवन के संध्याकल में योद्धा पत्रकार के रूप में पूरी ऊर्जा के साथ डटे रहे। लेखक को उनके सान्निधय का अवसर मिला, 'चौथा संसार' का प्रकाशन इंदौर से भले ही हुआ पर और सामग्री के साथ देश के मुख्य समाचार पत्रों के कमतर नहीं था, मातृभाषा मराठी के शिखर पुरुष राहुल बारपुते की पत्रकारिता रूपी धरोहर की तरह चौथा संसार के कई संपादकीय आज भी पत्रकारिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मनचाहे राग गाने वाले चंबल के जल को पीकर हिंदी रचना संसार में बगावत के तेवर अपना कर अद्‌भुत शब्द सर्जक-शिल्पी 17 जून 1991 को हमेशा के लिए हम सब से विदा हो गए। हर घट में आहट मान कर पनघट से लेकर मरघट तक विचरण करता कवि माचवे का मन आकुल-व्याकुल अपनी कविता 'कापालिक हँसता' है में देख सकते हैं-

मरघट
औघड़ का मठ
चट-चट-खट-खट जलती हड्डी-मज्जा, झटपट
कुत्ते भौंक रहे हैं, हो-हो-
स्यारों की यकसाँ चिल्लाहट, छीन और झपट
नदी किनारा
डूब रहा सांय-तारा
चीख किसी पंछी की चीं-चीं
जिसके अंडों और घोंसले पर भूखे-से
किसी बाज ने छापा मारा।
क्या यों इकटक देख रहे हो
सुंदर सत्य तुम्हारा, वैसा
यही असुंदर सत्य हमारा।
परवशदाता है।
और नदी की धारा में भी, लो कृशता है,
मोह-छोह हमको ग्रसता है
कापालिक हँसता है।

❍❍❍

पेकिंग विश्वविद्यालय में अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

27-28 अक्टूबर, 2017 को चीन के पेकिंग विश्वविद्यालय में दक्षिणी एशिया अध्ययन विभाग द्वारा '**एशिया में हिंदी: पूर्वी एशियाई देशों में परिप्रेक्ष्य में भारत का अध्ययन**' विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें चीन, जापान और कोरिया के विभिन्न विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा व साहित्य पढ़ाने वाल प्राध्यापकों और शोधार्थियों के अतिरिक्त 'भारत अध्ययन संस्थान' के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

बॉलीवुड के गीत-संगीत और संवादों के माध्यम से बोलचाल की हिंदी का प्रशिक्षण

विजय कुमार मल्होत्रा

वैसे तो विश्व के अनेक देशों में हिंदी फिल्में लोकप्रिय हैं और कई देशों में फिल्मी गीतों के आधार पर हिंदी सिखाने का प्रयास भी किया जाता है। इन देशों में प्रमुख हैं, रूस, जापान और अमरीका। अमरीका की श्रीमती अंजना संधीर ने तो Learn Hindi & Hindi Film Songs नाम से हिंदी के फिल्मी गीतों का एक संकलन भी प्रकाशित किया है, जिसमें हिंदी गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया गया है, लेकिन आमतौर पर विदेशों में हिंदी फिल्में मनोरंजन के साधन के रूप में ही प्रचलित हैं। हाँ, कुछ हद तक इससे हिंदी समझने (Comprehension) में मदद अवश्य मिलती है, लेकिन बोलने का अभ्यास तो बोलने से ही होगा।

श्रीलंका एक ऐसा देश है, जहाँ विदेशी भाषा के रूप में हिंदी की पढ़ाई विभिन्न स्तरों पर होती है, स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों में। इसके अलावा अनेक ऐसी स्वयंसेवी संस्थाएँ भी हैं, जहाँ विद्यार्थी दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई और केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा की परीक्षाओं के लिए प्रवेश लेते हैं। श्रीलंका के ये विद्यार्थी अधिकांशतः सिंहलीभाषी हैं, लेकिन कुछ तमिलभाषी भी हिंदी सीखने में रुचि रखते हैं। वैसे तो प्राचीन कथाओं के अनुसार, रामायण काल से ही भारत और श्रीलंका के सांस्कृतिक संबंध रहे हैं, लेकिन लिखित इतिहास की दृष्टि से तीसरी सदी ईसा पूर्व मौर्य सम्राट अशोक के पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा के श्रीलंका में आगमन के साथ ही यहाँ बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ। वे बोधिवृक्ष का एक पौधा लेकर यहाँ आए थे। आज यह पौधा पुष्पित और पल्लवित होकर विशाल वृक्ष बन गया है। हालाँकि इसकी शाखाएँ जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं, लेकिन श्रीलंकावासियों ने इसे अपनी श्रद्धा से सींचकर आज भी जीवित रखा है और अपने गुरूदेश भारत की संस्कृति और भारत की प्रमुख भाषा हिंदी के प्रति श्रीलंकावासियों का आकर्षण आज भी कायम है। श्रीलंका के अधिकांश निवासी बौद्ध धर्मावलंबी हैं, लेकिन हिंदी के प्रति नई पीढ़ी के रुझान का मुख्य कारण है, बॉलीवुड की हिंदी फिल्मों का मधुर गीत-संगीत। भले ही वे इसका अर्थ न समझें, लेकिन इसके बोल गुनगुनाते रहते हैं, कई बार बसों में मुझे हिंदी फिल्मों की लोकप्रिय धुनों के आधार पर सिंहली बोल भी सुनाई दिए। भारत के शास्त्रीय नृत्य के साथ-साथ फिल्मी गीतों के आधार पर नाचने-गाने का भी यहाँ लोगों को काफी शौक है।

विडंबना यही है कि श्रीलंका में हिंदी के इतने व्यापक शिक्षण-प्रशिक्षण के बावजूद ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है जो हिंदी में बोलने में सक्षम हों। पिछले दो वर्षों में मैं तीन बार श्रीलंका के अनेक कस्बों और शहरों में गया हूँ और श्रीलंका प्रवास के दौरान हिंदी शिक्षण की व्यवस्था को देखने-परखने का मौका भी मुझे मिला है। वस्तुतः भाषा के चार प्रकार के कौशल होते हैं : 1. श्रवण कौशल (सुनकर अर्थ ग्रहण करने का कौशल), 2. पठन/वाचन कौशल (पढ़कर अर्थ ग्रहण करने का कौशल), 3. मौखिक अभिव्यक्ति (विचारों को लिखकर

सम्पर्क: WW-67SF, मालिबु टाऊन, सोहना रोड, गुरूग्राम (हरियाणा) - 122018 ई-मेल: malhotravk@gmail.com

व्यक्त करने का कौशल)। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा शिक्षण में बोलचाल की भाषा सबसे पहले सिखाई जाती है। मुझे वर्ष 1984 के दौरान यू.के. स्थित यॉर्क विवि में हिंदी सिखाने का अवसर मिला था और हमने आदरणीय महेंद्र वर्मा जी के मार्गदर्शन में एक ऐसा पाठ्यक्रम बनाया था, जिसमें रोमन लिपि के माध्यम से बोलचाल की हिंदी सिखाई जाती थी। इसका एक लाभ यह भी हुआ कि हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के विद्यार्थी हमारी कक्षा में आने लगे, क्योंकि दोनों ही भाषाओं की लिपि भिन्न होने के बावजूद दोनों भाषाओं की मूल शब्दावली और वाक्यविन्यास में काफी समानता है। अमरीका में भी जब ऑस्टिन स्थित टैक्सास विवि में हिंदी-उर्दू में फ्लैगशिप प्रोग्राम शुरू किया गया, वहाँ भी यही पद्धति अपनाई गई। इसके कारण छात्रों का सारा जोर बोलचाल की हिंदी सीखने पर ही रहता है, लेकिन श्रीलंका में इसके ठीक विपरीत नवागत विद्यार्थियों को सबसे पहले हिंदी में लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है। निश्चय ही इससे विद्यार्थियों को कुछ लाभ भी होता है। अपनी ध्वन्यात्मकता के कारण देवनागरी में लिखित हिंदी सही ढंग से पढ़ी जा सकती है और उसमें अर्थ का अनर्थ होने की आशंका नहीं रहती, क्योंकि हिंदी जैसी लिखी जाती है, वैसी ही बोली जाती है। इसके विपरीत रोमन लिपि में केवल 26 अक्षर होते हैं। उसके माध्यम से अल्पप्राण, महाप्राण और घोषत्व के आधार पर हिंदी की व्यतिरेकी ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं किया जा सकता, फिर भी कम से कम बोलचाल की हिंदी सिखाने के लिए तो रोमन लिपि एक अच्छा विकल्प हो सकता है। भारत में फौजियों को बरसों तक रोमन लिपि के माध्यम से ही हिंदी सिखाई जाती रही है। फीजी में भी वहाँ के मूल निवासियों को बोलचाल की हिंदी रोमन लिपि से ही सिखाई जाती है।

आज की नई पीढ़ी कदाचित् इस तथ्य से अवगत नहीं है कि हिंदी के फिल्मी गीतों के सार्वजनिक प्रसारण की शुरुआत सन् 1952 में सबसे पहले श्रीलंका के सीलोन रेडियो से की गई थी। इसके उद्घोषक थे अमीन सयानी। यह भी विडंबना है कि उस जमाने में ऑल इंडिया रेडियो अर्थात् आकाशवाणी से भी हिंदी के फिल्मी गीतों का प्रसारण नहीं किया जाता था। अमीन सयानी ऑल इंडिया रेडियो, मुंबई में अंग्रेजी के उद्घोषक थे और वह अपने देश की भाषा में हिंदी गीतों का कार्यक्रम शुरू करना चाहते थे, लेकिन उनकी यह इच्छा पूरी की सीलोन रेडियो ने। अमीन सयानी बताते हैं कि जब सन् 1952 में बिनाका गीतमाला का कार्यक्रम सीलोन रेडियो से प्रसारित हुआ तो इसकी लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि पहले कार्यक्रम की प्रतिक्रिया में ही 9000 से अधिक श्रोताओं के पत्र उन्हें मिले थे। सीलोन रेडियो पर हिंदी के फिल्मों गीतों की लोकप्रियता को देखकर ही सन् 1957 में भारत में विविध भारती ने भी हिंदी के फिल्मी गीतों का प्रसारण शुरू कर दिया और इन गीतों के मधुर संगीत के कारण विविध भारती भारत की सुरीली धड़कन बन गई, लेकिन सीलोन रेडियो (अब इसका नाम बदलकर श्रीलंका रेडियो हो गया) की लोकप्रियता आज भी कम नहीं हुई है। आज भी हर रोज सुबह 6.45 से 8.00 बजे तक श्रीलंका रेडियो से हिंदी की पुरानी फिल्मों का संगीत प्रसारित किया जाता है। इसी रेडियो की उद्घोषिका वारुणी के निमंत्रण पर मैं श्रीलंका रेडियो के स्टूडियो में गया। स्टूडियो में मेरा स्वागत पद्मिनी, ज्योति परमार, सुभाषिणी और वारुणी नामक हिंदी की उद्घोषिकाओं ने किया और वे यह जानकर बेहद खुश हुईं कि मैं श्रीलंका में फिल्मी गीतों के आधार पर हिंदी के प्रशिक्षण का कार्यक्रम शुरू करने जा रहा हूँ। ज्योति परमार ने मुझसे आग्रह किया कि मैं अपनी पसंद के कुछ गीत उन्हें भेजूँ और मेरे मनपसंद गीतों के आधार पर श्रीलंका रेडियो से मनोरंजन कार्यक्रम के अंतर्गत उसका प्रसारण भी किया गया।

श्रीलंका के प्रवास के दौरान मेरी मुलाकात कैंडी स्थित भारत की सहायक उच्चायुक्त सुश्री राधा वेंकटरमन से हुई। राधा जी स्वयं तमिलभाषी हैं, लेकिन श्रीलंका में हिंदी के प्रचार के लिए कटिबद्ध हैं। उन्होंने मुझे बताया कि ब्रह्मकुमारियों का एक जत्था भारत जा रहा है और वे भारत जाने से पहले बोलचाल की हिंदी सीखना चाहते हैं ताकि भारत के बाज़ारों में और तीर्थस्थलों आदि में वे आम हिंदुस्तानी से सीधे संवाद कर सकें। हालाँकि समय की कमी के कारण तत्काल कोई पाठ्यक्रम चलाना संभव नहीं था, फिर भी मैंने उन्हें सुझाया कि हम 60 घंटे का एक क्रैश कोर्स चला सकते है, जिसमें मात्र हिंदी बोलने का ही अभ्यास कराया जाएगा। मैंने तत्काल इसकी एक रूपरेखा बनाकर उन्हें भेज दी। इस पाठ्यक्रम के माध्यम से न केवल ब्रह्मकुमारी, बल्कि व्यापारी, छात्र और फौजी लोग भी 60 घंटे में बोलचाल की हिंदी सीख सकेंगे।

इस पाठ्यक्रम के मुख्य शिक्षण बिंदु इस प्रकार हैं:

- इसकी पाठ्यसामग्री मुख्यत: हिंदी के फिल्मी गीतों और संवाद पर आधारित होगी।
- इसमें मल्टीमीडिया का व्यापक उपयोग किया जाएगा।

- नवागत छात्रों के लिए लिपि मुख्यत: रोमन होगी, लेकिन साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी उपयोग किया जाएगा ताकि पहले से देवनागरी जानने वाले विद्यार्थी भी इसकी सहायता से बोलचाल की हिंदी सीख सकें।

- भारत में बोलचाल की हिंदी के रूप में हिंगलिश (अंग्रेजी और हिंदी की मिली-जुली भाषा) का व्यापक प्रयोग किया जाता है। इसलिए इस पाठ्यक्रम में हिंगलिश ही सिखाने का प्रयास किया जाएगा। श्रीलंका के स्कूलों में अंग्रेजी अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है, इसलिए यहाँ के लोग हिंदी फिल्मों में हिंगलिश के संवाद कुछ हद तक समझ लेते हैं।

- हिंदी की मूलभूत शब्दावली के रूप में मुख्य क्रियाएँ, सहायक क्रियाएँ, क्रिया विशेषण, सर्वनाम आदि के आधार पर वाक्यविन्यास सिखाने पर जोर दिया जाएगा। संज्ञाओं के रूप में अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग की छूट रहेगी। उदाहरण के लिए Fruit, Apple, Table, Chair आदि शब्दों के साथ हिंदी के वाक्य विन्यास का अभ्यास कराया जाएगा।

- Wh अर्थात् क्या, क्यों, कैसे, कब, कहाँ, आदि प्रश्नवाचक अव्ययों की मदद से संवाद शैली में बोलने का अभ्यास कराया जाएगा। उदाहरण के लिए, तुम क्या खा रहे हो? मैं Fruit/Apple खा रहा हूँ। Book कहाँ रखी हैं? Book Table पर रखी है आदि...आदि।

- वैसे तो विश्व के अनेक देशों में हिंदी फिल्में लोकप्रिय हैं और कई देशों में फिल्मी गीतों के आधार पर हिंदी सिखाने का प्रयास भी किया जाता है। इन देशों में प्रमुख हैं, रूस, जापान और अमरीका। अमेरिका की श्रीमती अंजना संधीर ने तो Learn Hindi & Hindi Film Songs नाम से हिंदी के फिल्मी गीतों का एक संकलन भी प्रकाशित किया है, जिसमें हिंदी गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया गया है, लेकिन आमतौर पर विदेशों में हिंदी फिल्में मनोरंजन के साधन के रूप में ही प्रचलित हैं। हाँ, कुछ हद तक इससे हिंदी समझने (Comprehension) में मदद अवश्य मिलती है, लेकिन बोलने का अभ्यास तो बोलने से ही होगा। जापान स्थित ओसाका विवि के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष मो. तोमिओ मिजोकामि ने अपने जापानी छात्रों को हिंदी बोलने का अभ्यास कराने के लिए हिंदी नाटकों का मंचन आरंभ किया था। रेल मंत्रालय में निदेशक (राजभाषा) के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान मैंने भी नाट्योत्सव के माध्यम से हिंदी शिक्षण के लिए हिंदी नाटकों के मंचन का व्यापक उपयोग किया था। श्रीलंका में भी राधा जी ने ज्वलंत विषयों पर हिंदी के प्रहसनों का मंचन शुरू किया था। हमारे पाठ्यक्रम में भी हिंदी प्रहसनों का मंचन करने का निश्चय किया गया, ताकि हिंदी में मौखिक अभिव्यक्ति (Expression) का कौशल भी छात्रों को सिखाते हुए उन्हें भाव-भंगिमाओं के साथ हिंदी में अधिक से अधिक बोलने के लिए प्रेरित किया जाए। यही सोचकर हमने अपने कोर्स को नाम दिया है... EDUTAINMENT अर्थात् मनोरंजन (ENTERTAINMENT) के माध्यम से हिंदी शिक्षण (EDUCATION)। इसकी शुरुआत प्रो. वशिनी शर्मा के सक्रिय सहयोग से की गई थी।

एक ज़माना था जब अंत्याक्षरी शिक्षा का अभिन्न अंग हुआ करती थी। ज़ी टीवी ने पूरे 12 साल तक हिंदी फिल्मों के गीतों का कार्यक्रम पूरे विश्व के उन तमाम देशों में चलाया था, जहाँ प्रवासी भारतीयों की बहुतायत है। हिंदी फिल्मों के महान् चरित्र अभिनेता अन्नू कपूर ने बहुत कुशलता से इसका संचालन किया था। मुझे याद है एक बार मैं क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए मास्को गया था। सभी रूसी प्रतिभागियों के साथ बस में जाते हुए तय किया गया कि हम लोग क्यों न फिल्मी गीतों के आधार पर अंत्याक्षरी खेलें। मुझे भरोसा नहीं था कि रूसी प्रतिभागी हम हिंदुस्तानियों के सामने बहुत देर तक टिक पाएँगे, लेकिन कुछ ही देर में रूसी प्रतिभागियों ने हमें पस्त कर दिया, लेकिन इस हार में भी मुझे हिंदी की जीत नज़र आई। इसलिए हमने इस कोर्स में अंत्याक्षरी को भी स्थान दिया है। पैरोडी भी एक दिलचस्प विधा है, जिसमें आप किसी फिल्मी गीत की लोकप्रिय धुन के आधार पर अपने बोल जोड़ सकते हैं। प्रसिद्ध हास्य अभिनेता महमूद ने 'मैं सुंदर हूँ' नामक अपनी फिल्म में परिवार नियोजन के संदेश को बहुत ही खूबसूरती से पैरोडी के रूप में प्रस्तुत किया था। इस विधा को भी हमने अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया है।

बोलचाल की हिंदी सिखाने के लिए हिंदी गीत का चयन शिक्षण बिंदुओं के आधार पर ही किया जाता है। उदाहरण के लिए राजकपूर की एक फिल्म है, 'मेरा नाम जोकर'। इसमें एक गाना

है, 'ए भाई ज़रा देखकर चलो'। इस गाने में हिंदी के अधिकांश क्रियाविशेषण आ जाते हैं:

''ए भाई, जरा देखके चलो, **आगे** ही नहीं **पीछे** भी
दायें ही नहीं **बायें** भी, **ऊपर** ही नहीं **नीचे** भी
तू आया है वो तेरा - घर नहीं, गाँव नहीं
गली नहीं, कूचा नहीं, रस्ता नहीं, बस्ती नहीं
दुनिया है, और प्यारे, दुनिया यह एक सरकस है
और इस सरकस में - **बड़े** को भी, **छोटे** को भी
खरे को भी, **खोटे** को भी, **मोटे** को भी, **पतले** को भी
नीचे से **ऊपर** को, **ऊपर** से **नीचे** को
बराबर आना-जाना पड़ता है''

इस एक ही गाने में **आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे, बड़े-छोटे, खरे-खोटे, मोटे-पतले, नीचे-ऊपर, ऊपर-नीचे** आदि अनेक क्रियाविशेषणों और विशेषणों का समावेश हो गया है। PPT के माध्यम से प्रस्तुत हमारे पाठ्यक्रम में इन शब्दों को लाल रंग से इंगित किया जाता है, ताकि गाना गाते समय भी विद्यार्थी इन क्रियाविशेषणों और विशेषणों की पहचान कर सकें। आमतौर पर गाना देवनागरी लिपि में स्क्रीन पर होता है, लेकिन स्क्रोल पद्धति से इसका रोमन पाठ भी घूमता रहता है। श्रीलंका में नवागत विद्यार्थियों की सुविधा के लिए सिंहली लिपि में भी इसे लिप्यंतरित कर दिया गया था। अगली स्लाइड में गाने में प्रयुक्त हिंदी शब्दों का अंग्रेजी अनुवाद होता है। विद्यार्थियों के हाथ में गाने के बोल भी रहते हैं। जैसे ही गाना बजना शुरू होता है, विद्यार्थी उसे सस्वर गाने लगते हैं। हमारी अपेक्षा रहती है कि विद्यार्थी गाने को याद कर लें ताकि तन्मयता से गाना गाएँ और धीर-धीरे उसके अर्थ को समझना शुरू करें।

हिंदी के वाक्य विन्यास का मुख्य आधार है, GNPT अर्थात् Gender (लिंग), Number (वचन) Person (पुरुष अर्थात् प्रथम पुरुष (मैं और हम), मध्यम पुरुष (तू, हम और आप) और अन्य पुरुष (वह/यह/नाम, वे/ये) और (काल अर्थात् वर्तमान, भूत और भविष्यत्)। इन सभी शिक्षण बिंदुओं को सिखाने के लिए कपूर परिवार की तीनों पीढ़ियों द्वारा अभिनीत 'कल, आज और कल' फिल्म का निम्नलिखित रोमांटिक गाना न केवल शिक्षण बिंदुओं के आधार पर, बल्कि मनोरंजन की कसौटी पर भी खरा उतरता है।

''आप यहाँ आए किसलिए?
आपने बुलाया इसलिये
आये हैं तो काम भी **बताइए**
पहले ज़रा आप **मुस्कुराइए**
मुस्कुराने की न कोई बात है
ओहो काम तो **बताइए, बताइए**
ना ना ना पहले ज़रा आप **मुस्कुराइए**''

इस गाने में हिंदी की आज्ञार्थक (Imperatives) क्रियाओं को सिखाने के लिए तू, तुम और आप तीनों का ही समावेश है।

(आप) **बताइए, मुस्कुराइए,**

(तुम) **बताओ, पूछो, बोलो, थाम लो, दिल से भी काम लो, सुनो**

(तू) **आ, जा** आदि

इसी प्रकार काल और पुरुषवाचक सर्वनामों की भी इस गाने में भरमार है।

(सामान्य वर्तमान काल) ''आती है'' ''तड़पाती है'' (तू/वह)

भविष्यत् काल और प्रथम/मध्यम पुरुष के विभिन्न क्रियारूपों का भी इसमें समावेश है।

निभाओगे (निभाऊँगा), भूल तो न **जाओगे** (न **भूलूँगा**), डोली ले के **आओगे (आऊँगा)**, शादी भी **रचाओगे (रचाऊँगा)**, सिनेमा **दिखोओगे (दिखाऊँगा)**, खाना भी **पकाओगे (पकाऊँगा)**, बच्चे भी **खिलाओगे (खिलाऊँगा)** और रोज न **सताओगे**।

इसी क्रम में **जाइएगा, खाइएगा** जैसे प्रयोग सिखाने के लिए आरजू फिल्म का गाना बहुत सटीक है: ''अजी रूठ के अब कहाँ **जाइएगा**, जहाँ **जाइएगा** हमें **पाइएगा**''। यह क्रिया (आप) जाइएगा' भविष्य कालवाचक भी है, मध्यम पुरुष आज्ञार्थक भी है। इसमें इसरार भी है, प्यार भी है और सम्मान भी है।

हिंदी शिक्षण में अर्थभेदक व्यतिरेकी युग्मों (Contrastive Pairs) का बहुत महत्व है। यदि इनका ध्यान नहीं रखा गया तो अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जैसे ह्रस्व-दीर्घ के अर्थभेदक युग्म हैं: कल-काला, मेला-मैला, शोक-शौक, पिता-पीता आदि, अल्पप्राण-महाप्राण के अर्थभेदक युग्म हैं: काना-खाना, बाग-बाघ, सात-साथ, दान-धान, चल-छल, जूठा-झूठा, टोकना-ठोकना, डाल-ढाल, पल-फल, बाई-भाई आदि अघोष-घोष के अर्थभेदक युग्म हैं: काना-गाना, चल-जल,

तान-दान, टालना-डालना, पल-बल आदि। अनुस्वार रहित और अनुस्वार सहित शब्दों के अर्थभेदक युग्म हैं: कहा-कहाँ, बास-बाँस, आधी-आँधी, निश्चित-निश्चिंत, पूछ-पूँछ, दे-दें (सम्मानवाचक), ले-लें (सम्मानवाचक), गोद-गोंद, चौका-चौंका आदि), सामान्य व्यंजन और द्वित्व व्यंजन के अर्थभेदक युग्म हैं: (पका-पक्का, पता-पत्ता, छला-छल्ला, बचा-बच्चा आदि)।

इनके अलावा, सामान्य क्रियाओं और प्रेरणार्थक क्रियाओं के युग्म भी हैं, जैसे करना-कराना, लड़ना-लड़ाना, कटना-काटना, पढ़ना-पढ़ाना, लिखना-लिखाना, हँसना-हँसाना, टलना-टालना, चरना-चराना, बैठना-बैठाना, दौड़ना-दौड़ाना, चढ़ना-चढ़ाना, बहना-बहाना, गिरना-गिराना, थमना-थामना, जगना-जगाना, बनना-बनाना, टँगना-टाँगना, लगना-लगाना, धुलना-धुलाना, उठना-उठाना, चलना-चलाना, सुनना-सुनाना, भागना-भगाना, खाना-खिलाना आदि।

'कल आज और कल' फिल्म के उपर्युक्त गाने में रचाना, पकाना, खिलाना आदि अनेक प्रेरणार्थक क्रियाओं का प्रयोग किया गया है। मेरी स्पष्ट धारणा है कि शिक्षा के साहचर्य के सिद्धांत (Law of association) के अनुसार अर्थभेदक व्यतिरेकी युग्मों के आधार पर हिंदी जैसी ध्वन्यात्मक भाषा को सिखाना बहुत आसान रहता है। विद्यार्थी अनायास ही मिलते-जुलते शब्दों को न केवल आत्मसात् कर लेते हैं, बल्कि उनकी अर्थभेदक भिन्नता को भी समझ लेते हैं। जैसे पढ़ना-पढ़ाना, सोना-सुलाना, खाना-खिलाना, पीना-पिलाना आदि। दिलचस्प बात तो यह है कि अर्थगत भिन्नता के बावजूद इनके व्याकरणिक रूपों में काफी समानता होती है और रूपावली (paradigm) के आधार पर इनका अभ्यास कराया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, सामान्य वर्तमान काल में 'राम हिंदी **पढ़ता** है, 'राम हिंदी **पढ़ाता** है', 'सीता हिंदी **पढ़ती** है', 'सीता हिंदी **पढ़ाती** है', 'बच्चा दूध **पीता** है', 'माँ बच्चे को दूध **पिलाती** है', 'बच्चा **सोता** है', 'माँ बच्चे को **सुलाती** है' आदि वाक्य-रचनाओं का अभ्यास एक साथ कराया जा सकता है।

बॉर्डर फिल्म का एक गाना है:

''संदेसे आते हैं हमें तड़पाते हैं
(Messages arrive. They torment us)

तो चिट्ठी आती है तो पूछे जाती है
(Letters arrive, They keep on asking us)

कि घर कब आओगे कि घर कब आओगे
(When will you come home, When will you come home)

लिखो कब आओगे कि तुम बिन ये घर सूना सूना है
(Write, when will you come, This house is lonely without you)

इस गाने की मधुरता और हिंदी के शब्दों की सरलता के कारण यह भी बहुत लोकप्रिय हो गया है और इसके माध्यम से विद्यार्थी सामान्य वर्तमान और भविष्यत् काल के रूपों को अनायास ही आत्मसात् कर लेते हैं। अंग्रेजी में अनुवाद होने से इसका अर्थ समझने में भी आसानी होती है। रोमन लिपि में स्क्रोलिंग के कारण देवनागरी लिपि से अपरिचित विद्यार्थी भी इसे पढ़ लेते हैं। सिंहलीभाषा विद्यार्थियों की सरलता के लिए इसका सिंहली लिप्यंतरण विद्यार्थियों में पहले ही बाँट दिया जाता है।

मधुर संगीत के बाद शिक्षा के गंभीर वातावरण में प्रवेश करने के लिए GNPT आधार पर रूपावली का अभ्यास कराया जाता है और इस अभ्यास से पहले हिंदी की मूल क्रियाओं को उनके अंग्रेजी अनुवाद और रोमन लिप्यंतरण के साथ विद्यार्थियों में वितरित कर दिया जाता है।

''खाना/khaanaa (to eat), पीना/peena (do drink), जाना/jaanaa (to go), आना/aanaa (to come), लेना/lenaa (to take), देना/denaa (to give), पढ़ना/padhanaa (to read, to study), पढ़ाना/padhaanaa (to teach), हँसना/hansanaa (to laugh), रोना/ronaa (to cry), लड़ना/ladanaa (to fight), चलना/chalanaa (to move), नहाना/nahaanaa (to take bath), सोना/sonaa (to sleep), लाना/laanaa (to bring), लौटना/lautnaa (to return), भागना/bhaaganaa (to run), घूमना/ghoomanaa (to walk, to take round), देखना/dekhanaa (to see, to watch, to look), दिखाना/dikhaanaa (to show), खेलना/khelanaa (to play), खरीदना/khareedanaa (to buy, to purchase), बेचना/bhechanaa (to sell), बोलना/bolanaa (to speak), सोचना/sochanaa (to think) etc.

इसके बाद शुरू होता है GNPT के आधार पर रूपावली का अभ्यास और यह अभ्यास भी संवाद शैली में Wh प्रश्नों के आधार पर कराया जाता है... सारा ज़ोर वाक्य विन्यास पर रहता है, शब्दों पर नहीं।

Who कौन (kaun)/
Who is coming/ going?

कौन आ/जा रहा/रही है?
Kaun aa/jaa rahaa/rahee hai?

कौन आ/जा रहे/रही हैं
Kaun aa/jaa rahe/rahee hain?
My brother/sister is coming/ going?

मेरी Brother आ/जा रहा है
Meraa bhaaii aa/jaa rahaa hai

मेरी sister आ/जा रही है
Meree bahan aa/jaa rahee hai
My Friends are coming/ going?

मेरे/मेरी friends आ/जा रहे/रही हैं
Mere/meree friends aa rahe/rahee hain

When कब (kab)?

When are you coming/ going home?

तुम घर कब आ/जा रहे/रही हो?
tum ghar kab aa/jaa rahe/rahee ho?

I am coming/ going home today? We are coming/ going home today?

मैं आज घर आ/जा रहा/रही हूँ?
main aaj ghar aa rahaa/rahee huun?

हम आज घर आ/जा रहे/रही हूँ?
ham aaj ghar aa rahe/rahee hain?

He/She is coming/ going home today? They are coming/ going home today?

वह आज घर आ/जा रहा/रही है?
vah aaj ghar aa/jaa rahaa/rahee hai?

वे आज घर आ/जा रहे/रही हैं?
ve aaj ghar aa/jaa rahe/rahee hain?

How कैसे (kaise)?

How are you going home?

तुम घर कैसे जा रहे/रही हो? tum kaise jaa rahe/rahee ho?

मैं car/train/bus/bike से घर जा रहा/रही हूँ

Main car/train/bus/bike se ghar jaa rahe/rahee hain

हम car/train/bus/bike से घर जा रहे/रही हूँ

ham car/train/bus/bike se ghar jaa rahe/rahee hain

वह car/train/bus/bike से घर जा रहा/रही है

vah car/train/bus/bike se ghar jaa rahaa/rahee hai

वह car/train/bus/bike से घर जा रहा/रही है

vah car/train/bus/bike se ghar jaa rahaa/rahee hai

वे car/train/bus/bike से घर जा रहे/रही हैं

ve car/train/bus/bike se ghar jaa rahe/rahee hain

Why क्यों (kyon)?

Which कौन-सा (kaun-saa)?

Why have you come here?
तुम यहाँ क्यों आए हो? tum yahaan kyon aaye ho?

I've come here to play
मैं यहाँ खेलने आया/आई हूँ Main yahaan khelane aayaa/aayee huun

Which house is yours?
आपका घर कौन-सा है? aapakaa ghar kaun-saa hai?

Which station is this?
यह कौन-सा स्टेशन है? yah station kaun-saa hai?

हिंदी में वृत्तिक क्रियाएँ (Modal Verbs)

Lets go/ lets move
आओ, चलें aao chalen

Lets drink
आओ, पिएँ aao pien

Lets take dinner
आओ, dinner करें

Lets study
आओ, पढ़ें aao padhen

Lets play
आओ, खेलें aao khelen

सामाजिक संदर्भ (Social context) स्टेशन (station)

What's the meter reading?
मीटर में कितने पैसे हुए?
Meter men kitane paise hue?

Do you want any coolie?
क्या आपको कुली चाहिए?
Kyaa aapako coolie chaahie?

No, we don't require any coolie?
नहीं, कुली नहीं चाहिए
Nahee, coolie naheen chaahie

Coolie, please pick up the baggage.
कुली, सामान ले चलो
Coolie, saamaan le chalo

How much?
कितना हुआ?
Kitanaa huaa?

सामाजिक संदर्भ (Social context) स्टेशन (station)

That's too much
यह तो बहुत ज्यादा है? Yah to bahut zyaadaa hai?

Has the train for Bombay arrived?
क्या बंबई की गाड़ी आ गई है?
Kyaa Bombay kee gaadee aa gai hai?

Which platform the Rajdhani Express leaves from?
Rajdhani Express किस platform से छूटती है?
Rajdhani Express kis platform se chhottee hai?

Does the Frontier mail stop at Mathura?
क्या Frontier mail Mathura में रुकती है?
Kyaa Frontier mail Mathura men rukatee hai?

सामाजिक संदर्भ (Social context) होटल (Hotel)

Is there a room available here?
क्या कोई कमरा खाली है?
Kyaa koi kamaraa khaalee hai?

What are the charges for a double room?
डबल रूम का कितना लगेगा double room kaa kitanee lagegaa?

Please take my bag to my room.
मेरा bag मेरे room में ले जाओ।
Meera bag mere room men le jaao

Can I get some tea/coffee here?
क्या यहाँ tea/coffee मिलेगी?
Kyaa yahaan tea/coffee milegee?

I would like some hot water, please?
मुझे गरम पानी चाहिए
Mujhe garam paanee chaahie

I am going out for an hour.
मैं एक घंटे के लिए बाहर जा रहा/रही हूँ।
Main ek ghante ke lie baahar jaa rahaa huun

Please send my breakfast up to my room.
मेरा breakfast मेरे room में भेज दीजिए।
Mera breakfast mere room men bhej deejie

I would like my morning tea at 6 o'clock
मुझे morning tea 6 बजे चाहिए

I am checking out at tomorrow morning.
मैं कल सुबह check out कर रहा हूँ।
Main kal subah check out kar rahaa huun

सामाजिक संदर्भ (Social context) रेस्तराँ (Restaurant)

Get me the Menu.
Menu ले आओ।
Menu le aao

Please bring the sugar separately.
Sugar अलग-से लाना।
Sugar alag se laanaa.

What do you have in breakfast?
Breakfast में क्या-क्या है?
Breakfast men kyaa-kyaa hai?

Is this dish vegetarian?
क्या यह Vegetarian है? kyaa yah vegetarian hai?

सामाजिक संदर्भ (Social context) बाज़ार (Market)

How much does this cost?
यह कितने का है?
Yah kitane kaa hai?

Its too expensive. Make it less
यह बहुत महँगा है। कुछ कम करो।
Yah bahut mahangaa hai. Kuchh kam karo.

Do you have a change for a 500 rupee note?
क्या आपके पास 500 रुपये के नोट का change है?
Kyaa aapake pass 500 rupaye ke note kaa change hai?

Please get these things packed?
इन चीजों को pack कर दो
In cheezon ko pack kar do.

इसके अलावा, हिंदी में 'करना' और 'होना' जैसी सहायक क्रियाओं के साथ अंग्रेजी क्रियाओं का भी व्यापक उपयोग किया जा सकता है। इन्हें भाषा विज्ञान में क्रियाकर कहा (Verbalizers) जाता है।

Discuss करना/karnaa...

इस matter को meeting में भी discuss कर सकते हैं (Is matter ko meeting men bhee discuss kar sakate hain)

Use करना/karnaa

Use करने से ही practice होती है
(Use karne se hee practice hotee hai)

Repair करना/karnaa
अपनी कार repair करा लेना
Apanee car repair karaa lenaa

Wait करना/karnaa
तुम बाहर wait करो।
Tum baahar wait karo

बोलचाल की हिंदी के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के बुनियादी मूल्यों को भी फिल्मी गीतों के जरिये सिखाया जा सकता है। 'विविधता में एकता' भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है और इस भावना को राजकपूर द्वारा निर्देशित और अभिनीत फिल्म श्री 420 के निम्नलिखित गीत के माध्यम से बहुत ही मनोरंजक रूप में और मधुरता के साथ सिखाया जा सकता है।

''मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी
My shoes are Japanese, these pants are British.

सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी
On my head is a red Russian hat, nonetheless my heart is Indian.

निकल पड़े हैं खुली सड़क पर अपना सीना ताने
I set out upon the wide open road confidently.

मंजिल कहाँ, कहाँ रुकना है, ऊपरवाला जाने
Where is my destination, where must I stop, only God knows.

बढ़ते जाएँ हम सैलानी, जैसे एक दरिया तूफानी
We advance forward relentlessly, as if a hurricane in a river.

ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर लहर चले जीवन की
High to low, low to high, the waves of life flow.

नादाँ है जो बैठ किनारे, पूछे राह वतन की
Those who wait by the shore are naive, ask for the path toward the motherland.

चलना जीवन की कहानी, रुकना मौत की निशानी
Moving is the story of life while stopping is a sign of death.

होंगे राजे राजकुँवर, हम बिगड़े दिल शहजादे
I will become the prince of fallen hearts.

हम सिंहासन पर जा बैठें जब-जब करें इरादे
I will sit upon a throne whenever I desire.

सूरत है जानी पहचानी दुनियावालों को हैरानी
My face is familiar, it will be a surprise to the world.

मेरा जूता है जापानी
My shoes are Japanese.

इस तकनीक के माध्यम से पहला प्रयोग श्रीलंका के कैंडी शहर में स्थित भारत के सहायक उच्चायुक्त कार्यालय में तीन दिवसीय कार्यशाला के माध्यम से किया गया। इसमें नवागत छात्रों के साथ-साथ हिंदी शिक्षक भी उपस्थित रहे। दूसरा प्रयोग कुरुनेगला स्थित हिंदी संस्थान में श्रीमती अतिला कोतलावतल के सहयोग से किया गया। कोलंबो के उपनगर कोट्टाव में स्थित श्रीलंका हिंदी निकेतन में तो श्री शरणगुप्त वीरसिंह और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती पद्मा वीरसिंह की भूमि का अभूतपूर्व थी। यह दंपति पिछले कई दशकों से EDUTAIMENT के माध्यम से न केवल अपने छात्रों को हिंदी सिखा रहे हैं, बल्कि उनके अधिकांश विद्यार्थी हिंदी बोलने में भी दक्ष होते हैं। मेरे लिए यह मानना आसान नहीं था कि यह दंपति कभी भारत नहीं गया और मात्र हिंदी फिल्मों के गीतों के माध्यम से उन्होंने न केवल हिंदी बोलने में दक्षता हासिल की, बल्कि हिंदी में दस से अधिक साहित्यिक पुस्तकों की रचना भी की। कोलंबो स्थित केलनिय विवि में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन प्रमुख विषय के रूप में होता है। हिंदी विभाग के अध्यक्ष प्रो. उपुल जी की अध्यक्षता में हिंदी विभाग के प्राध्यापकों और छात्रों के साथ विचार-विमर्श किया गया, जिसमें विवि के उपकुलपति प्रो. लक्ष्मण जी भी उपस्थित रहे, लक्ष्मण जी न केवल हिंदी में दक्ष हैं, बल्कि उन्होंने सिंहली विद्यार्थियों को हिंदी सिखाने के लिए अनेक पुस्तकों की रचना भी की है। कोलंबो प्रवास के दौरान डॉ. शीरीन कुरेशी के सहयोग से भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में भी छात्रों और अध्यापकों से गहन विचार-विमर्श का अवसर मिला और सभी ने इस तकनीक के माध्यम से बोलचाल की हिंदी सिखाने के प्रयासों की सराहना की। कोलंबो में हिंदी सिखाने के लिए एक गुरुकुल नाम की संस्था भी है। इस संस्था की संचालिका है वारुणि। वही वारुणि जो श्रीलंका रेडियो में हिंदी की उद्घोषिका भी है। उनका विवाह एक भारतीय से हुआ। इसलिए उनके घर पर हिंदी और सिंहली दोनों भाषाएँ सहजता से बोली जाती हैं। उनका बेटा भी दोनों भाषाओं में दक्ष है। इस गुरुकुल में वारुणि और अमानी मिलकर हिंदी पढ़ाती हैं। इसके अलावा वे दोनों समय-समय पर श्रीलंका के फौजियों को भी हिंदी सिखाने के लिए अल्पकालीन कोर्स चलाती हैं। इस गुरुकुल का वातावरण बहुत पारिवारिक है। दोनों सहेलियाँ मिलकर भारतीय भोजन भी बनाती हैं। यहाँ भी मैंने इन दोनों हिंदी शिक्षिकाओं की उपस्थिति में EDUTAIMENT के आधार पर मल्टीमीडिया कक्षाएँ चलाईं। छात्रों में कुछ छात्र नवागत थे और कुछ वरिष्ठ थे। मेरा यह प्रयास था कि कतई हिंदी न जानने वाले छात्र भी संवाद शैली में हिंदी में बोलने का अभ्यास करें। सभी शिक्षकों और छात्रों ने इसे बहुत पसंद किया और भविष्य में मल्टीमीडिया के आधार पर अध्यापन करने का संकल्प किया।

कोलंबो के बाद हमारा अंतिम पड़ाव गॉल के उपनगर बटपोल में स्थित शिल्प कलाश्रम था। इसकी अध्यक्ष हैं, श्रीमती वसंता पद्मिणी। वसंता श्री प्रज्ञाचक्षु हैं। स्वयं बहुत अच्छी संगीतकार हैं और संगीत के माध्यम से ही हिंदी भी सिखाती है। एक छोटे-से गाँव में जिस लगन के साथ वह गरीब विद्यार्थियों को हिंदी सिखाने का प्रयास करती हैं, वह मेरे लिए बहुत ही प्रेरणादायक था। उनके पति सिंहली के प्रसिद्ध लेखक हैं। वह स्वयं तो हिंदी नहीं जानते, लेकिन इस अनुष्ठान में अपनी पत्नी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े रहते हैं। उनका एक बेटा और दो बेटियाँ है और ये सब हिंदी में निष्णात हैं। बेटी जननी तो केलनिय विवि में हिंदी पढ़ती और पढ़ाती है। सारा परिवार ही हिंदी के प्रति समर्पित है। जिस श्रद्धा और प्रेम से संगीत की धुनों के साथ यहाँ हिंदी सिखाई जाती है, उससे मैं अभिभूत हो गया। ऐसी वनस्थली में जब मैंने अपना कंम्प्यूटर खोला तो मुझे लगा कि इसका कुछ लाभ होगा या नहीं, लेकिन थोड़ी देर में ही मुझे एहसास हुआ कि ये बच्चे मुझसे अधिक टैक्नोलॉजी में प्रवीण हैं। हिंदी कंप्यूटिंग के जिस कुंजीपटल को भारत के विद्यार्थी कठिनाई से स्वीकार करते हैं, उसे श्रीलंका के इन ग्रामीण बच्चों ने बड़ी सहजता से न केवल स्वीकार किया, बल्कि उसमें काम भी करने लगे। इससे मेरे इस विश्वास को और भी बल मिला कि मल्टीमीडिया की आवश्यकता उन ग्रामीण अंचलों में कहीं अधिक है जहाँ हिंदी के अच्छे शिक्षकों का अभाव है।

श्रीलंका प्रवास के दौरान EDUTAIMENT के आधार पर विभिन्न स्तरों पर मल्टीमीडिया कक्षाएँ सफलतापूर्वक चलाने के बाद अब मैं आश्वस्त हो गया हूँ कि बॉलीवुड के गीत-संगीत और संवादों के माध्यम से बोलचाल की हिंदी अर्थात् Hinglish का प्रशिक्षण अन्य देशों में भी दिया जा सकता है। ❍❍❍

लोकगीतों में गाँधी: चंपारण-सत्याग्रह के संदर्भ में

डॉ. धनंजय सिंह

यह पहले गिरधारी हैं, जिनका पहनावा अजीब है। अपने दुश्मनों से लड़ने के लिए इनके पास कोई भौतिक हथियार नहीं है। ये तो एकदम भिखारी हैं। गौरतलब है कि ऐसे अजीब लिबास के लिए लोक में भोले शंकर की छवि लोकप्रिय रही है लेकिन वह एक मिथकीय चरित्र रहे हैं जबकि गाँधीजी एक इतिहास पुरुष हैं। चंपारण सत्याग्रह की सफलता उन्हें एक इतिहास पुरुष से मिथकीय चरित्र में तब्दील कर रही है। गाँधी में भी सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य है लेकिन वे अपने लिए कुछ भी नहीं करते हैं। पूरे राष्ट्र के लिए करते हैं। यहाँ इस बात की चर्चा गैर-जरूरी नहीं होगी कि दक्षिण अफ्रीका से भारत आने के बाद गाँधीजी ने कमर तक धोती पहनने तथा कमर का ऊपरी हिस्सा उघारे-निघारे रखने का जो लिबास अपनाया, वह ग्रामीणों के पहनावे के अनुरूप था, क्योंकि तब अधिकतर किसान गर्मी-बरसात में कमर के ऊपर उघारे देह ही रहते थे।

सम्पर्क: आर-109/1, रमेश पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92, मो. 8826052269, ई-मेल: djdu25@yahoo.com

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में चंपारण सत्याग्रह एक ऐसा मोड़ है, जिसने पहली बार आम जनता को एहसास दिलाया कि अंग्रेजी सरकार के शोषण को खत्म ही नहीं किया जा सकता बल्कि यह विश्वास भी पैदा किया कि अंग्रेजी साम्राज्य से छुटकारा भी पाया जा सकता है। इसी चंपारण सत्याग्रह ने मोहनदास करमचंद गाँधी को 'महात्मा' के रूप में पहचान दिलायी। चंपारण आंदोलन की सफलता से बिहार ही नहीं, बल्कि पूरे देश की किसान-मजदूर जनता उनसे जुड़ने लगी एवं स्वाधीनता आंदोलन में शामिल होने लगी, जिसकी आवाज देश की तमाम लोकाभिव्यक्तियों में भी दर्ज होती जा रही थी।

इतिहास साक्षी है कि 15 अप्रैल, 1917 को राजकुमार शुक्ल जैसे एक अनाम से आदमी के बुलावे पर गाँधी का अनिच्छा से चंपारण आगमन हुआ था। कहना न होगा कि चंपारण अंग्रेजों की बनायी व्यवस्था में निलहे जमींदारों से त्रस्त था। उनके अत्याचारों एवं आतंकों से मुक्ति के लिए पहले भी कई आंदोलन हुए थे लेकिन सभी विफल रहे थे। गाँधी के आगमन की खबर से चंपारण के किसान आशावान थे। क्योंकि यहाँ आने से पहले उनके कारनामों की कीर्ति लोगों तक पहुँच चुकी थी यानी गाँधी सत्याग्रह के जरिये दक्षिण अफ्रीका में जो आंदोलन कर चुके थे, उसकी सफलता से लोग परिचित हो चुके थे। उनके लिए जो महत्वपूर्ण बात साबित हुई, वह थी-चंपारण में गाँधी का जीवन व्यवहार एवं जीवन शैली। उसने लोगों के दिलो-दिमाग में श्रद्धा का भाव इस कदर भरा कि गाँधी 'महात्मा' के रूप में उभरने लगे। इस संबंध में तमाम वृतांत उन्हें सुनने को मिले। इन वृतांतों के गढ़ने में लोकगीतों ने बड़ी भूमिका निभायी अर्थात् जितनी तीव्रता से गाँधी से महात्मा बनने की ओर बढ़ रहे थे उतनी तेजी से चंपारण की किसान जनता का मनोबल भी स्वाधीनता आंदोलन की ओर अग्रसर हो रहा था। गाँव-गाँव से आजादी की छटपटाहट लोकाभिव्यक्तियों में उभरने लगी थी। चंपारण, आरा, छपरा, गोरखपुर, आजमगढ़, मिर्जापुर, बलिया, गाजीपुर, सासाराम जैसे जनपदों में ये लोकगीत आजादी की चेतना की लौ जगाने लगे थे। सन् 1917 में रघुबीर नारायण बटोहिया का गीत-'सुंदर सुभूमि भइया भारत के देसवा से, मोर प्रान बसे

हिम खोइ रे बटोहिया।' भोजपुरी प्रदेश का राष्ट्रीय गीत बना हुआ था। खेतों में काम करने वाले किसान, स्कूल जाते हुए छात्रों तथा गाय चराने वाले अनपढ़ों के मुँह से भी यह गीत सुनने को मिलता। इस गीत में अखंड भारत का चित्र बड़ा ही सजीव और सुंदर है। भारतमाता का यह दिव्य स्वरूप बेहद मनोरम है।[1] इस कड़ी में इसी तर्ज पर प्रिंसिपल मनोरंजन प्रसाद सिन्हा ने सन् 1920 में 'फिरंगिया' गीत में अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों का खुल कर चित्रण किया था। निलहों के राज की खौफ एक चैता गीत में व्यंग्यात्मक रूप में उभरा है-'अब कइसे जीयबु बकरिया, भइले निलहवा के राज'।[2] चंपारण सत्याग्रह से कुछ दिन पहले चंपारण के एक किसान कवि शिवशरण पाठक ने बेतिया महाराज को नील की खेती करने वाले किसानों का दु:खद वृतांत सुनाया था-

'राम नाम भइल, मोर गाँव लिलहा के भइले।
चँवर दहै सब धान गोएंडे लील बोअइले।।
भई भैल आमील के राज, प्रजा सब भइले दुखी।
मिल जुल लूटे गाँव, गुमस्ता हो पटवारी सुखी।।
असामी नाव पटवारी लिखे, गुमस्ता बतलावे।
सुजावल जी जपत करसु, साहेब मारन धावे।।[3]

गीत बहुत लंबा है। इस गीत का भावार्थ है-हे महाराज! राम का नाम[4] तो हुआ लेकिन गाँव निलहों का हो गया है। धान की खेती चँवर में बह गई, घर के नजदीकों में नील की खेती होने लगी। अब तो कारिंदों का राज हो गया। प्रजा दु:खी हो गई। गुमस्ता हो या पटवारी सभी मिल-जुलकर गाँव को लूटने लगे हैं। गुमस्ता नाम बतलाता है और पटवारी लिखता है। तहसीलदार घर के सामानों को जब्त करता है और ऊपर से अंग्रेज निलहा साहब मारने दौड़ता है। गीत आगे की कड़ी में नील की खेती करने में होने वाली कठिनाईयों को बयाँ करता है। थोड़ी-सी जुताई के बाद ही हेंगाना पड़ता है ताकि कोई ढेला न रह सके। कार्तिक माह से ही नील के लिए खेत तैयार करवाते हैं और चार महीने बाद फाल्गुन में बोआई करवाते हैं। जैसे ही नील दो पतों का होता है, उसकी सोहनी मतलब निराई शुरू हो जाती है। घास-पतवार निकालते समय बहुत कष्ट होता है। दोजी के दु:ख दोबरी मतलब नील के जड़ में फूटी दोहरी टहनी को बचाकर निराई करना दोगुना श्रम माँगता है। एक उपद्रव वो (कारिंदों से लेकर अंग्रेज तक) करते हैं दूसरे इसकी खेती भी बहुत पीड़ादायी है। सभी से इसी की गाड़ी चलवायी जाती है। इस खेती से ना पुआल होता है और ना ढाटा-भूसा, जो माल-मवेशियों के काम आ सके। जिससे हम अपना दु:खड़ा सुनाने जाते हैं, वह लात-घूसों से नीचे बात ही नहीं करता है। कोई धरमी ही होगी जो इस नील की खेती से पीछा छुड़वायेगा। ब्राह्मणों को बहुत ही दु:ख है कि उन्हें भी दोनों समय नील की खेती कोड़वाते रहता है। इस गीत के संग्रहकर्ता दुर्गाप्रसाद सिंह ने अपनी किताब 'भोजपुरी के कवि और काव्य' में और स्पष्ट किया है कि 'चंपारण में नीलहों का बहुत अत्याचार था। ये लोग बेतिया के महाराज की जमींदारों के मोकरीदार थे। उनके अत्याचार से तंग आकर आपने महाराज के दरबार में एक बड़ा पद पढ़ा था और नीलहों से रक्षा करने की प्रार्थना की थी।... अत: इनके पद को सुनकर नीलहों के अत्याचार का उन्हें ज्ञान हुआ। महाराज ने उन नीलहों से क्षुब्ध होकर उन्हें चंपारण से खदेड़ने की विफल चेष्टा की थी।'[5] गाँधी आगमन से पूर्व का एक और गीत गौरतलब है जिसे बिहार-कोकिला शारदा सिन्हा ने गाया भी है-

'मोरा पिछुअरवा रामा लीलवा के खेतवा।
मोर बलमुआ रे, नीले रंग चुनरी रँगाव।। मोर बलमुआ रे।'[6]

इस गीत में कोई स्त्री के घर के पीछे नील के खेती हुई है। उसे देखकर अपने पति से नीले रंग की चुनरी रँगाने की निवेदन करती है। इस गीत में 'मोरा पिछुअरवा लिलवा के खेतिया' पद व्याख्या सापेक्ष है। गौरतलब हो कि गाँवों के घर के पीछे की जमीनें आमतौर पर परती हुआ करती हैं, उनमें माल-मवेशियाँ घास चरती हैं या फिर सुबह-शाम को अँधियारे (भोर-गदबरे) में लोग शौचालय के लिए जाया करते हैं अर्थात् उनमें खेती लगभग ना के बराबर की जाती है। लेकिन गीत जिस परिवेश में लिखा गया है, वह साफ-साफ अपनी पृष्ठभूमि को दर्शा रहा है कि नीलहे जीमींदारों का आतंक इतना था कि किसानों को इन परती खेतों में भी नील की खेती करनी पड़ी। ऊपर से आसामीवार, जिरात, तीनकठिया इत्यादि प्रथाओं में चंपारण के किसानों से मड़वन, फगुआही, दशहरी, सिंगराहट, लटियावन, शरहवेशी, दस्तूरी, खुश्की समेत तकरीबन छियालिस प्रकार के अवैध कर वसूले जाते थे। कर वसूली की विधि भी बर्बर और अमानवीय थी। नील की खेती से बंजर होने का एक अलग भय था। तो इन गीतों के जरिये चंपारण के किसानों की दशा को समझा जा सकता है। ये महज लोकगीत नहीं, बल्कि व्यापक जनप्रतिरोध के ऐसे औजार हैं, जिनके जरिये चंपारण में निलहों के अत्याचार और आतंक का सफल प्रतिरोध किया गया। इसलिए इस दौर के लोकगीतों में सिर्फ ग्रामीण किसानों

पर किये जा रहे जुल्म की चर्चा ही नहीं, बल्कि उनसे दो-दो हाथ करने का इरादा और जारी दमनचक्र से मुक्ति पाने के संकल्प के साथ अंग्रेजी हुकूमत पर तीखा व्यंग्य भी है-

'मोरा चरखा के टूटे ना तार,
चरखा चालू रहे।
गाँधी बाबा चलले दुलहा बनके,
दुलहिन बने सरकार।
चरखा चालू रहे।'

इस गीत में दुल्हा-दुल्हन का प्रतीकों के प्रयोग हुआ है। इन प्रतीकों जरिये अंग्रेजी हुकूमत की इतनी खिल्ली कभी नहीं उड़ी होगी, जितनी पहली बार चंपारण में उड़ी। चंपारण आंदोलन निलहों के आतंक से मुक्ति का ही आंदोलन नहीं था, बल्कि अंग्रेजों के दमनकारी कानून-व्यवस्था से मुक्ति पाने की ललक थी, जिसे चंपारण के संपन्न किसानों को भी भूखों मरने के लिए विवश कर दिया था। किसानों और चंपारण के साथ देश के भाग्य को जगाने के लिए गाँधी के अलावा कोई दूसरा विकल्प शायद नहीं था। गाँधी आयेंगे तो सब होगा, गाँधी आयेंगे तो शोषण से मुक्ति मिलेगी, गाँधी आयेंगे तो खुशहाली आयेगी, गाँधी आयेंगे तो आतंक और खौफ का राज खत्म होगा-

'परल बा टिकसवा के बोझ, धरमवा के खून भइल।
चलीं चली गाँधी महाराज, देखीं अजबे कानून भइल।'

गाँधी से ही यह उम्मीद मिली है कि टैक्स के बोझ से जो धर्म का कत्लेआम हो रहा है, अजीब तरह का कानून बना है। गाँधी महाराज से किसान जनता इन सब कानूनों को देखने की गुहार लगा रही है। इस गुहार को राजकुमार शुक्ल ने 27 फरवरी, 1917 को चंपारण के किसानों का न्यौता गाँधी के नाम से लिखा था-'मान्यवर महात्मा, किस्सा सुनते हो रोज औरों के, आज मेरी भी दास्तान सुनो। आपने उस अनहोनी को प्रत्यक्ष कर दिखाया, जिसे टॉल्सटाय जैसे महात्मा केवल विचार करते थे।... हमारी दु:खभरी कथा उस दक्षिण अफ्रीका के अत्याचार से... कहीं अधिक है। हम अपना दु:ख सुनाकर... आपके कोमल हृदय को दु:खित करना उचित नहीं समझते। बस केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप स्वयं आकर अपने आँखों से देख लीजिए, तब आपको अच्छी तरह विश्वास हो जायेगा कि भारतवर्ष के एक कोने में वहाँ की प्रजा... किस प्रकार कष्ट सहकर पशुवत् जीवन व्यतीत कर रही है।'[7]

'धीरे बहुत धीरे बहु पछुआ बयरिया।
घमवा से बदरी करहु रखवरिया।।
जुग जुग जोहे जेहि जगत पुरातन।
धरती पर उतरेला पुरुष सनातन।
नाहीं बडुए संख चक्र, नाहीं गदाधारी।
नाहीं हउवे दसरथ-सुत धनुधारी।।
कान्हें पट पीत नाहीं, मुरली अधर नाहीं।
साक्य-रजपुत नाहीं, बनल भिखारी।
अबकी अजब रूप धइले गिरधारी।'[8]

इस भजन-गीत में ईश्वर के अवतारों में से सबसे अलग रूप में अवतरित गाँधी बाबा देव रूप में है। यह पहले गिरधारी हैं, जिनका पहनावा अजीब है। अपने दुश्मनों से लड़ने के लिए इनके पास कोई भौतिक हथियार नहीं है। ये तो एकदम भिखारी हैं। गौरतलब है कि ऐसे अजीब लिबास के लिए लोक में भोले शंकर की छवि लोकप्रिय रही है लेकिन वह एक मिथकीय चरित्र रहे हैं जबकि गाँधीजी एक इतिहास पुरुष हैं। चंपारण सत्याग्रह की सफलता उन्हें एक इतिहास पुरुष से मिथकीय चरित्र में तब्दील कर रही है। गाँधी में भी सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य है लेकिन वे अपने लिए कुछ भी नहीं करते हैं। पूरे राष्ट्र के लिए करते हैं। यहाँ इस बात की चर्चा गैर-जरूरी नहीं होगी कि दक्षिण अफ्रीका से भारत आने के बाद गाँधीजी ने कमर तक धोती पहनने तथा कमर का ऊपरी हिस्सा उघारे-निघारे रखने का जो लिबास अपनाया, वह ग्रामीणों के पहनावे के अनुरूप था, क्योंकि तब अधिकतर किसान गर्मी-बरसात में कमर के ऊपर उघारे देह ही रहते थे। यहीं नहीं, गाँवों में आवास आसानी से उपलब्ध मिट्टी, बाँस, लकड़ी, खर-पतवार, खपड़ा आदि से निर्मित होते थे। गाँधीजी ने यही मकान-निर्माण की तकनीकी अपने आश्रमों को बनाने में अपनायी। दक्षिण अफ्रीका के फीनिक्स, टॉलस्टॉय आश्रम से लेकर भारत में साबरमती, सेवाग्राम जैसे आश्रमों का निर्माण स्थानीय स्तर पर उपलब्ध बाँस, लकड़ी, खपड़ा आदि से ही कराया। गाँधी के लिबास और आवास से भी जनता अपने को जोड़ती थी और उनके हर कदम के पीछे चलने को तैयार रहती थी-

'गाँधी के आइल जमाना, देवर जेहलखाना अब गइले।
जब तपे सरकार बहादुर, भारत मरे बिनु दाना।
देवर जेहलखाना...'[9]

इस झूमरगीत में महात्मा गाँधी का समय आ गया। अब जेल जाने और लाल टोपी का भय खत्म हो गया। देश सेवा के लिए

देवर भी जेल चले गये। जब से सरकार बहादुर का राज्य हुआ है, भारत अन्न बिना मर रहा है। देशभक्तों के हाथ में हथकड़ी है और पैरों में बेड़ी है। सारा देश पागल हो गया है। इसलिए एक स्त्री अपने पति को परदेस जाने से रोकती है-

अब हम कातबि चरखवा, पिया मति जाहू बिदेसवा।
हम कातबि चरखा सजन तुहु लाँव, मिलिहें एहि से सुरजवा।।
पिया मति...'[10]

इस जंतसारी गीत में एक स्त्री अपने पति से कहती है कि हे पति! अब मैं चरखा कातूर्गी। अत: तुम बिदेस मत जाओ। तुम चरखा बनाकर लाओ, मैं उसे कातूँगी। इसी से स्वराज्य मिलेगा। फिर देशवासियों को सुख मिलेगा और सब लोगों का क्लेश दूर हो जायेगा। महात्मा गाँधी के संदेश मान जाओ। देश की लाज चरखे से ही रहेगी। गाँधीजी कहते हैं कि चरखा चलाओ। इसी से देशवासियों का कष्ट दूर होगा। चंपारण सत्याग्रह के दौरान भोजपुरी क्षेत्र से खेतिहर किसानों एवं मजदूरों का बड़े पैमाने पर पलायन हो रहा था। लोग काफिला के काफिला कलकत्ता, आसाम जैसे औद्योगिक व बागानी नगरों की ओर खिसक रहे थे।[11] बहरहाल, उन दिनों 'लोकगीतों में राष्ट्रीय भावनाओं का इतना अधिक प्रचार हो गया था कि गाँव-गाँव के दोटे-छोटे बच्चे 'सुराज' के गीत गाते-फिरते थे। देहात में जो बरात आती थी, उनमें गवैयों के द्वारा 'सुराजी गीत' गवाना आवश्यक हो गया था। जिन विवाहों में तिलक दहेज नहीं लिया जाता है, उन्हें सुराजी विवाह[12] कहा जाता है। उन दिनों वर विवाह के लिए स्वदेशी वस्त्र पहनकर आता था तो उसे 'सुराजी वर' की संज्ञा दी जाती थी।'

'फिरि जाहुँ फिरि जाहुँ घरवाँ समधिया हो, मोरा धीया रहिहैं कुँआरि।
बसन उतारि सब फेंकहुँ बिदेसिया, मोर पूत रहिहैं उघार।
बसन सुदेसिया मँगाई पहिरइबो हो, तब होइहैं धीया के बिआह'

इस गारी गीत में गाँव की महिलायें दुल्हे के पिता को अपने घर लौट जाने को कहती हैं, क्योंकि दुल्हा बिदेसी वस्त्र पहनकर शादी करने आया है। जब तक दुल्हा स्वदेसी वस्त्र पहनकर नहीं आएगा, तब तक बेटी का विवाह नहीं होगा।

गाँधी और खादी से भोजपुरिया लोगों का कितना भावनात्मक लगाव रहा है, इस संबंध में भोजपुरी क्षेत्र में हजारों लोकगीत मिल जायेंगे। इस लोकप्रिय गीत को देखिये-

'रंगल खादी के चुनरिया लहरदार बा,
पहिर दिल तोहार बा ना।
ओमे लागल बा किनरिया।
ओह में सगरो गाँधी बाबा के जयकार बा।
पहिर दिल तोहार बा ना।'[13]

इन लोकगीतों में सबसे ज्यादा किस्से गाँधी बाबा को लेकर हैं। लोक चेतना गाँधी की चमत्कारी शक्तियों से संबंधित कुछ रोचक बातों का उल्लेख करते हुए में शाहिद आमीन ने कहा है कि ये चमत्कारी शक्तियाँ ही गाँधी को महात्मा बनाती हैं।[14] इसी परंपरा में हसन इमाम[15] ने अपने आलेख को आगे बढ़ाया है। लोक जनता बताया करती थी कि गाँधी को उनकी इच्छा के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार भी जेल में बंद नहीं रख सकती थी, कि गाँधी में 'चमत्कारी' शक्ति थी और वे इस शक्ति की बदौलत जब चाहते थे जेल का फाटक खुल जाता था और वे बाहर निकल जाते थे।

स्पष्ट है कि 1917 में गाँधी जब चंपारण आए तो 'चमत्कारी शक्तियाँ' भी उनके साथ आयीं। चंपारण पहुँचने पर लोगों ने गाँधी को 'नया मालिक' के रूप में स्वागत किया। राजकुमार शुक्ल ने प्रचारित किया कि वे 'ईश्वर का अवतार' हैं तथा गोरे अंग्रेजों से भारतमाता की मुक्ति के लिए भेजे गये हैं। ये किसान मानकर चल रहे थे कि किसी 'भगवान' ही को 'बड़का बड़का वकील लोग' का समर्थन प्राप्त हो सकता है जिनके पास अब तक अपना दुखड़ा रोने के लिए भी उन्हें फीस की मोटी रकम देनी पड़ रही थी।[16] डी.जी. तेंदुलकर बिहार के गाँव की एक मजेदार कहानी का जिक्र करते हैं। एक बुढ़िया गाँधीजी के समीप आई और बोली-'महाराज, मेरी उम्र 104 वर्ष की है और आँखों की नजर धुँधली हो चुकी हैं। मैंने बहुत सारे तीर्थस्थानों का भ्रमण किया है। मेरे खुद के घर में दो मंदिर स्थापित हैं। मेरे जानते राम और कृष्ण-दो ही अवतार थे। मैंने सुना है कि अब गाँधी भी एक अवतार हैं। जबतक मैं उन्हें देख नहीं लेती हूँ, मेरे प्राण अटके रहेंगे।'[17] बेतिया के आसपास के इलाकों में पेड़-पौधों से लेकर छप्पर के कोंहड़ा-कद्दू तक पर गाँधी की आकृति उभरने लगी।[18] इस सब की जड़ में लोगों का यह विश्वास था कि गाँधी कोई साधारण आदमी नहीं बल्कि 'अवतारी पुरुष' हैं। गाँधी को आदमी से अवतारी पुरुष बनाने में लोक चेतना की खासी भूमिका रही है-

'गाँधी कहै, गाँधी कहै, मन चित्त लाइको।
गंगा सरजू चाहे कूपा पर नहाइ के।
लिहले अवतार एही देशवा में आइ के।'[19]

महात्मा गाँधी को अवतार मानकर उनकी तुलना राम और कृष्ण से की गई। राम के साथ वानर सेना और लक्ष्मण थे। श्रीकृष्ण

के गवाल-बाल तथा बलराम थे। गाँधी के साथ जनता है और जवाहर हैं। रावण और कंसरूपी अन्यायी राज्य को हटाने ही गाँधी आए हैं।[20]

चंपारण की सफलता के बाद लोकगीत भी हमें इस नतीजे पर पहुँचाते हैं कि गाँधी कैसे महात्मा बनते हैं और उनका महात्मा बनना कैसे जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करता है। एक मनुष्य से देवत्व की ओर जाना मिथक बनने की प्रक्रिया है। मौखिक परंपरा में मिथ गढ़ने की ताकत ज्यादा होती है। महात्मा बुद्ध, गोरखनाथ, कबीर, सूर, तुलसी आदि के बारे में इतिहास तथ्यात्मक विवरण देता है। गाँधी और उनका सत्याग्रह इसी कड़ी में आता है। मिथक में रूपातंरित होने के बाद इतिहास उस अर्थ में इतिहास नहीं रह जाता, यह रूपातंरित इतिहास, विराट मानस का संस्कार बन जाता है, उससे हमारी दूरी बढ़ने के साथ वह प्रतीकात्मक अर्थ धारण करने लगता है। इतिहास के इस प्रकार मिथक बनने की प्रक्रिया में जनमानस और जनविश्वास का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। एक तरफ लोकमानस इतिहास को मिथक पद पर प्रतिष्ठित कर देता है तो दूसरी तरफ वह मिथक को अपने पारिवारिक संबंधों के दायरे में लाकर दैनिक कार्यों के साथ संलग्न कर देता है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ:

1. कृष्णदेव उपाध्याय, *भोजपुरी और उसका साहित्य,* (दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1957), पृ. 88
2. गुलाम भारत में निम्नवर्गीय किसान के लिए बकरी भी एक बड़ी धन के रूप में थी। निलहों के आतंकी राज में किसान को अपनी बकरी भी बाँधकर रखनी पड़ेगी। हम सभी जानते हैं कि गाँव के गेंडे (नजदीक) वाले खेत आमतौर पर परती हुआ करते हैं। उन खेतों में आवारा पशु से लेकर लोग अपने जानवरों को चरने के लिए छोड़ देते हैं।
3. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, *भोजपुरी के कवि और काव्य,* (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2001) पृ. 162-163
4. यहाँ 'राम का नाम' से तात्पर्य है-रामराज्य, गाँधी का रामराज्य भी तुलसीदास का रामराज्य है, जिसमें किसी को कोई कष्ट नहीं होगा। सभी अपने धर्म का पालन करते हुए सुखी होंगे।
5. वही
6. कृष्णदेव उपाध्याय, *भोजपुरी लोकगीत, द्वितीय भाग,* (प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1966), इसे भी देखें-शारदा सिन्हा, *केकरा से काहाँ मिले जाला,* (नोएडा, उ.प्र. टी-सीरिज सुपर कैसेट इंडस्ट्रीज लि., 1985), साइड बी
7. अरबिंद मोहन का लेख, आजकल, मासिक हिंदी पत्रिका, अप्रैल, 2017, पृ. 10
8. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, *भोजपुरी के कवि और काव्य,* (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्), पृ.
9. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत, द्वितीय भाग, (प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1966), पृ. 335
10. वही, पृ. 336
11. कलकत्ता में जूट उद्योगों में प्रवासी श्रमिकों की उपस्थिति के संदर्भ में उपनिवेशवादी लेखनों में उनके आँकड़े उपलब्ध हैं। 1905 ई. में बी. फोले नामक एक अंग्रेज अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है-'20 वर्ष पहले जूटमिलों में सारे मजदूर बंगाली थे। अब उनका स्थान संयुक्त प्रांत और बिहार के हिन्दुस्तानियों ने ले लिया। देखिये-दीपेश चक्रवर्ती, *रिथींकिंग वर्किंग क्लास हिस्ट्री-बंगाल-1890-1990,* (कलकत्ता: ऑक्स फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989), पृ. सं. 102
12. आजादी के बाद सुराजी विवाह को भोजपुरी समाज में बेहद हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है और आज भी उसी निगाह से सुराजी विवाह को देखा जाता है। गरीब लोग भी सुराजी विवाह नहीं करना चाहते हैं।
13. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, *भोजपुरी के कवि और काव्य,* (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्), पृ. 243
14. शाहिद अमीन, *'गाँधी ऐज महात्मा: गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट ईस्टर्न यू पी, 1921-22'* रंजीत गुहा (संपादक), सबाल्टर्न स्टडीज III, राइटिंग ऑन साउथ एशियन हिस्ट्री एंड सोसायटी, ओ यू पी, दिल्ली, 1984, पृष्ठ 1-61)
15. हसन इमाम, *'फ्राम महात्मा टू गॉड: अंडरस्टैंडिंग गाँधी इन कल्चरल परस्पेक्टिव्स ऑफ द इंडियन नेशनल मूवमेंट, प्रोसीडिंग्स ऑफ द फरस्ट एनुअल इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन कंटेम्पोररी कल्चरल स्टडीज,* ग्लोबल सायंस एंड टेक्नोलॉजी फोरम, सिंगापुर, दिसंबर 9-10, 2013, पृष्ठ 11-17)
16. बी.बी. मिश्र, सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स ऑन महात्मा गाँधीजी मुवमेंट इन चंपारण, 1917-1919, गवर्नमेंट ऑफ बिहार, पटना, 1963; विंध्याचल प्रसाद गुप्त, नील के धब्बे, बेतिया, 1986, 118; पापिया घोष; पीजेन्ट्स, प्लांटर्स एंड गाँधी: चंपारण इन 1917, पीजेंट स्ट्रगल्स इन बिहार, 1831-1992, जानकी प्रकाशन, पटना, 1994, पृष्ठ 98-108
17. हसन इमाम, *'महात्मा गाँधी इन पापुलर परसेप्शन: डिबेटिंग गाँधी इन द ट्वेंटीफर्स्ट सेंचुरी',* अभिलेख बिहार, अंक-6, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, 2015, पृष्ठ 188 में उद्धृत) चंपारण पहुँचकर गाँधी ने खुद स्वीकार किया कि शायद ईश्वर ने मुझे निमित्त बनाया।' अरविंद मोहन, चंपारण डायरी, प्रभात खबर, पटना, 9 अप्रैल, 2017, पृष्ठ 17
18. सतीनाथ भादुड़ी, ढोडायचरितमानस, पृष्ठ 292
19. राजेश्वरी शांडिल्य, 'भोजपुरी लोकगीतों में गाँधी दर्शन', www.hindi.mkgandhi.org
20. विद्याभूषण सिंह, अवधी लोकगीत विरासत, पृष्ठ 331

मेरी ज़िंदगी में गाँधी

इंदु प्रकाश पांडेय

हमारा विद्रोही जुलूस स्कूल से निकल कर गाँधी जी की जै-जैकार करता हुआ कचहरी के सामने से आगे बढ़ रहा था। गवर्नमैंट हाई स्कूल के पास पहुँच कर उस स्कूल के लड़कों के जुलूस में शामिल होने के लिए ललकार रहा था। उस स्कूल का एक भी बच्चा हमारे जुलूस में नहीं आया। यह भी एक आश्चर्य की बात है। गाँधीजी का पैगाम केवल हमारे प्राइवेट स्कूल तक सीमित रहा। जो भी हो हम हताश न होते हुए कुछ आगे शहर की तरफ बढ़ने लगे। तब हमें पुलिस के इंस्पैक्टर के साथ चलने वाले जत्थे ने रोका और हिदायत दी कि हम वहीं से वापस चले जाएँ। डंडे उठाकर हम को धमकाया, हमको गिरफ्तार कर लेने की धमकियाँ दीं। लेकिन हम जिस जोश में थे कि ऐसी धमकियाँ कुछ असर न कर सकती थीं।

जब से मैंने आँखें खोली और होश सँभाला तब से देश के पाँच विलक्षण व्यक्तित्व मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते रहे हैं, जिस से मैं प्रभावित रहा हूँ। राजा जी (राजगोपालाचारी) ने अपनी शुद्ध बौद्धिकता और दूरदर्शिता के कारण, आजाद (मौलाना अबुल कलाम आजाद) ने अपनी पंथनिर्पेक्ष्य दृष्टि एवं दृढ़ता के कारण मेरे मन में गहरी आस्था पैदा कर दी थी। जवाहरलाल नेहरू के आवेशयुक्त सुंदर किंतु अकुलाते चेहरे के कारण, सुभाष बाबू (सुभाषचंद्र बोस) की भव्य सूरत एवं गोल चश्मे से आजादी को खोजती चमकती आँखों के कारण मन में स्फूर्ति एवं उत्साह पैदा हो गया था और गाँधी जी की आदर्शवादी नैतिकता, आध्यात्मिक अंतरवाणी, सादगी, जीवन शैली की अथक कर्मण्यता ने मन को कुछ करने के लिए प्रेरित कर दिया था। गाँधी सब पर छा गये थे। उस समय उन से अलग होकर सोचना भी असंभव था। उन्होंने जीवन के सभी पक्षों को अपनी सोच और गतिविधियों में शामिल कर लिया था। वे देश के सर्वोदय के लिए पूर्ण रूप से अर्पित थे। उन का यह संपूर्ण समर्पित जीवन सब को आशावान एवं आस्थावान बना रहा था। गाँधी के साथ अन्य सभी शामिल थे जो एकजुट होकर देश को स्वतंत्र कराने में संघर्षशील थे। उन का प्रभाव सुदूर गाँवों के निर्धन, निर्बल और निरक्षर किसानों पर भी इतना था कि गाँधीजी के लगान न देने के फैसले को ले कर वे सरकार के आमने-सामने खड़े हो गये। उनका प्रभाव इस प्रकार शिक्षित-अशिक्षित दोनों वर्गों पर जादू की तरह चढ़ा हुआ था। मैं ही कैसे बच सकता था। उन से स्वराज्य का सबक सीखा। और कुछ हद तक जीवन में स्वावलंबन आया।

1937 में चुनाव के सिलसिले में जब सुभाष बाबू यू.पी. का दौरा कर रहे थे तब वे रायबरेली भी आये थे। स्टेशन पर ही उनका भाषण हुआ था। उमड़ती हुई भीड़ में मैं भी शामिल था। उनके सुंदर भव्य व्यक्तित्व ने मन में देश की सेवा के लिए एक ऐसी उमंग पैदा की कि मन में ऐसा उत्साह उमड़ आया कि उनके साथ हो लूँ। पर अभी तो मैं 7वीं कक्षा का विद्यार्थी था। झक सफेद खादी की ढीलीढाली धोती, वैसा ही ढीला-सा कुर्ता, गोल चश्मा और ऊँची तिरछी गाँधी टोपी पहने

सम्पर्क: श्वालबाख, जर्मनी

हुए सुभाष बाबू का रूप मन में बस गया था। आजादी के संग्राम में लड़ने के लिए इनके इस भव्य दर्शन से ही मन में तीव्र भाव पैदा हो गये थे। वैसे तो 31 में ही कासगंज में उस समय, ''टोडी बच्चा हाय-हाय, लाल पगड़ी हाय-हाय'', के नारे लगाते हुए चौक में हम चक्कर लगा रहे थे, जब भगतसिंह को फाँसी दी गयी थी, उस समय इतना अधिक जोश था कि लगता था कि सरदार भगतसिंह को वहीं कासगंज की चौक पर फाँसी दी गयी हो। कासगंज में हमारे प्राइमरी स्कूल के सामने ही तिलक भवन था, जहाँ कांग्रेस के नेता आते-जाते रहते थे। उस समय भी खादी पोशाक में गाँधी टोपी पहने हुए एक व्यक्ति को अक्सर आते-जाते देखता था। वह हमेशा आसमान की ओर सिर उठाये हुए चलता था, शान में आ कर मैं ने भी उसकी नकल में वैसे ही चलने की कोशिश की तो एक दिन सड़क में बिछे कंकड़ों से टकराकर पाँव के पंजे लहूलुहान करवा बैठा। तन में तो चोट लगी ही मन को भी गहरी चोट लगी, मुझे हमेशा यही लगता रहा कि उस समय मोहनलाल (गाँधीजी) हमारी ही कक्षा में हमारे ही सहपाठी थे जब उन्होंने अपनी कॉपी में गलती सुधारने से मना किया था। उस समय के गाँधीमय वातावरण का ही यह प्रभाव था कि मेरी माँ चर्खा कातने लगी थी, घर में ही दरी और गलीचे बीनने लगी थी। मैं माँ के साथ इन सभी कामों में लगा रहता था। यानी घर-बाहर गाँधी व्याप्त थे।

1939-40 की सर्दियों में मैं पहली बार उस जुलूस में शामिल हुआ था जो मोहनलाल गंज के मेले में निकला था। मेरे मित्र विंध्येश्वरी प्रसाद सिंह के बड़े भाई कांग्रेस के सत्याग्रही नेता चुने गये थे कि वे व्यक्तिगत सत्याग्रह में सरकार के विरोध में प्रदर्शन करें। गाँधी जी ने उस समय ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विनोबा भावे से इस सत्याग्रह की शुरुआत की थी। ब्रिटिश ने देश के नेताओं से बिना सलाह-मशविरा किये दूसरे विश्वयुद्ध में अपनी तरफ शामिल कर लिया था। उस समय कांग्रेस ही एक ऐसी पार्टी थी, जो देश का प्रतिनिधित्व कर रही थी। गाँधी जी ने इसे देश का अपमान समझा और सरकार के विरोध में सत्याग्रह शुरू कर दिया। इस सत्याग्रह में जनसमुदाय को नहीं पुकारा, बल्कि चुन-चुन कर सारे देश के प्रमुख कार्यकर्ताओं को व्यक्ति रूप में निश्चित तारीख और समय पर विद्रोही सभाओं का आयोजन करवाया। ऐसा करने वाले नेता को सरकार को सूचित करना पड़ता था कि वह कब और कहाँ सत्याग्रह की विद्रोह सभा करेंगे। मंच बन जाते थे, रास्ते तैयार हो जाते थे और सत्याग्राही दल-बदल वहाँ पहुँचता। मंच पर खड़े होकर वह जैसे ही कुछ कहना शुरू करता था वैसे ही पहले से ही तैयार खड़ी पुलिस उसे गिरफ्तार कर लेती थी। जनता एकत्र हो जाती थी और नारे लगाने लगती थी, ''भारत माता की जै, महात्मा गाँधी जी की जै, इंकलाब-जिंदाबाद।'' पुलिस सत्याग्राही को हथकड़ियाँ लगाकर आगे-आगे चलती थी और जनता उनके पीछे-पीछे या तो थाने तक या पुलिस की गाड़ी तक जाकर इंकलाब के नारे और ऊँची आवाज में लगाती रहती थी और फिर थककर अपने-अपने घर चली जाती थी। हम भी भाई साहेब के गिरफ्तार हो जाने पर मेले के डेरे पर चले गये और तरह-तरह की बातें करते हुए सो गये। तब से मैंने खादी के कपड़े पहनना शुरू कर दिया। खादी का कुर्ता-धोती या पैजामा पहनना शुरू कर दिया। जब इस तरह गाँधी सिर पर सवार हो गये, तो पहले के कपड़े और जूते भी फेंक दिये। अब मोहल्ले के एक मोची से नरी के जूते (मरे बकरे की खाल) बनवाकर पहनना शुरू कर दिया। डेढ़ रुपये में बन जाते थे। अब हम भी सुराजी बन गये। स्वराज तो मन नियंत्रित व्रत है।

इससे यह हुआ कि मैं अब शहर के बीच में स्थित तिलक भवन जाने लगा। शहर के नेताओं से मिलना-जुलना होने लगा। पर उनके सामने मैं अभी केवल बच्चा था। और था भी। कुछ समय इस शगल में जाने लगा। यह मुझे ठीक नहीं लगा। मेरे अपने अनुशासन की भी माँगे थीं। एक तो यह कि अध्ययन में किसी प्रकार की कमी नहीं आनी चाहिए और मेरे नियमित व्यायाम में बाधा नहीं होनी चाहिए और न मैं खेल-कूद में कमी करने के लिए तैयार था। मेरी नेतागीरी ने मुझे अपनी रुटीन से अलग नहीं किया। तो इस तरह मैं एक-साथ अध्ययनशील विद्यार्थी, खिलाड़ी और सुराजी बना रहा। व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में गिरफ्तार हुए नेतागण धीरे-धीरे जेलों में छूट कर 1942 तक वापस आ गये थे। गाँधीजी का उस समय भी रचनात्मक कार्य चल रहा था। आजादी के लिए अंग्रेजों के साथ लड़ाई के दौरान गाँधी जी ने दो फ्रंट बना रखे थे-एक तो सीधे अहिंसात्मक युद्ध, दूसरे जब डायरेक्ट ऐक्शन नहीं चल रहा होता था उस समय रचनात्मक दिशा में हर तरह के सामाजिक गतिविधियाँ, एडल्ट ऐजुकेशन, हिंदू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, ग्राम-सेवा इत्यादि। लगभग 16 विषय थे जिन पर सभी स्वयंसेवकों को काम करना होता था। यह सारा काम आश्रमों में और बाहर भी चलाये जाते थे। ये तमाम काम थे समाज-सुधार के। अगर और कुछ नहीं तो चर्खा कातने और कपड़ा बनाने का काम तो हमेशा ही था। ग्रामोद्योग के क्षेत्र में बहुत काम करने को थे।

लेकिन जब गाँधी के मन में आया कि अब अंग्रेजों से छुटकारा पाने के लिए सीधा युद्ध ही करना पड़ेगा। कब तक इनसे धोखा खाते रहेंगे। बंबई के गवालियावाला टैंक पर कांग्रेस पार्टी ने गाँधी जी के नेतृत्व में भारत छोड़ो का ऐलान 8 अगस्त 1942 को कर दिया। सरकार ने रात में ही, सुबह होते-होते सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। परिणामस्वरूप सारे देश में एक बवंडर-सा आ गया। गाँधी जी के ''करो या मरो'' के नारे पर सीधे जंग के लिए मैदान में उतर आये। पढ़ाई-लिखाई छोड़कर मैं भी मैदान में कूद पड़ा।

यह मेरे हाईस्कूल का आखिरी साल था। तब मैं सर राजा राम पाल सिंह हिंदू हाई स्कूल, रायबरेली, यू.पी. में पढ़ रहा था और हॉस्टल में छठे दर्जे से अपने दो छोटे भाइयों के साथ रहा रहा था। पाँचवाँ और आखिरी साल चल रहा था। इन पाँच सालों में स्कूल और शहर में काफी कुछ धाक जम गयी थी-ज्यादा फुटबॉल, हॉकी और वॉलीबॉल के अच्छे खिलाड़ी के रूप में कुछ आखिरी दो सालों की नेतागीरी के कारण। इस नेतागीरी की वजह से खुफिया पुलिस भी पीछे पड़ी रहती थी। क्रिस्प मिशन विफल हो कर वापस भी चला गया था। गाँधीजी ने उस मिशन के प्रस्तावों को "A postdated Cheque on a Defunct Bank कह कर अस्वीकार कर दिया। 1935 के Act of Provincial Autonomy के अनुसार हुए चुनावों में कांग्रेस की सात प्रांतों में जीत हुई थी, मुस्लिम लीग बुरी तरह हार गयी थी और इसलिए सरकार बनाने में भी उस को शामिल नहीं किया गया। इस से मुस्लिम जनता अपमानित थी और गुस्से में उन्होंने विद्रोही रूप अख्तियार कर लिया। झगड़े होने लगे। पंजाब में सर सिकंदर हयात ने मिली-जुली सरकार बनायी थी। पर ये सरकारें हिंदू-मुस्लिम नाइंतिफाकी की वजह से ठीक काम नहीं कर सकी। कांग्रेस अपनी पूर्ण स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध और संघर्षशील थी। ब्रिटिश सरकार का कहना था कि स्वतंत्र शासन तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक सभी संप्रदाय एकमत नहीं हो जाते। एक तिहाई मुस्लिम ऐसा नहीं चाहते थे, फिर राजा-महाराजा उस में कैसे शामिल होंगे। इस तरह मुस्लिम लीग, कम्युनिस्ट पार्टी ऐसा नहीं चाहते। उस समय हिटलर-स्टेलिन का पैक्ट हो गया था और कम्युनिस्ट पार्टी फासिस्टों के साथ हो गयी थी और तब वह फासिस्ट युद्ध से लोक युद्ध बन गया था। तो जब भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ, तो उस में मुस्लिम लीग, कम्युनिस्ट पार्टी, महाराजाओं के राज्य शामिल नहीं हुए। और मैं ने भी पाया कि मेरे सभी मुस्लिम दोस्त जुलूस से बाहर थे। हमारे छोटे-से जिले में कम्युनिस्ट पार्टी थी ही नहीं। कुछ जमींदार-तालुकेदार तो हिस्सा ले रहे थे। फिर भी मेरे लिए एक यह बड़े अचम्भे की बात थी कि डायरेक्टर ऑफ डिफेंस इंडिया रूल का चौहद साल का बेटा मेरी हिरासत के वक्त कोतवाली में भी मदद कर रहा था। और वह भी एक मुसलमान था।

हमारा विद्रोही जुलूस स्कूल से निकल कर गाँधी जी की जैजैकार करता हुआ कचहरी के सामने से आगे बढ़ रहा था। गवर्नमैंट हाई स्कूल के पास पहुँच कर उस स्कूल के लड़कों के जुलूस में शामिल होने के लिए ललकार रहा था। उस स्कूल का एक भी बच्चा हमारे जुलूस में नहीं आया। यह भी एक आश्चर्य की बात है। गाँधीजी का पैगाम केवल हमारे प्राइवेट स्कूल तक सीमित रहा। जो भी हो हम हताश न होते हुए। कुछ ही आगे शहर की तरफ बढ़ने लगे तब हमें पुलिस के इंस्पैक्टर के साथ चलने वाले जत्थे ने रोका और हिदायत दी कि हम वहीं से वापस चले जाएँ। डंडे उठाकर हम को धमकाया हमको गिरफ्तार कर लेने की धमकियाँ दीं। लेकिन हम जिस जोश में थे कि ऐसी धमकियाँ कुछ असर न कर सकती थी। तो सब से आगे हम जो चार नेता टाइप लड़के थे, मेरे अलावा श्रीकांत सिंह, राधा रमण, महेश दत्त को रस्सी से बाँध दिया और पुलिसों के साथ कोतवाली की ओर खदेड़ ले जाने लगे। तमाम शोरगुल पैदा हो गया। सारा जुलूस और भी अधिक जोर से नारे लगाने लगा। तब हमें गाड़ी में बिठकर कोतवाली भेज दिया जहाँ हमें एक कमरे में बंद कर दिया गया। उस कमरे में हमारा गर्मी के कारण दम घुटता रहा। तो मैं ने धीरज बँधाते यही कहा, यह तो शुरुआत है-इब्तदाए इश्क है, रोता है क्या, आगे-आगे देखिए होता है क्या। आगे और क्या-क्या होगा, हमें आजादी का लिए कुछ तो सहना ही होगा। उसी समय वह मुस्लिम बच्चा ताजी हवा की तरह घुस आया। कुछ जरूरत हो तो बताओ। ठंडे पानी की माँग की और चले जाने के लिए इशारा किया। बेचारा बच्चा हमारी वजह से कहीं किसी मुसीबत में न पड़ जाए, या फिर कहीं इस के बाप को परेशानियाँ न उठानी पड़ें। हम तो भीतर हिरासत में बंद थे और बाहर क्या हो रहा होगा, वह सब हमारी सोच के बाहर था। ढली शाम को हमें उस कोठरी से निकाला गया और पुलिस की गाड़ी में किसी अनजान गंतव्य की ओर रवाना कर दिया गया।

वह अनजान गंतव्य था रायबरेली सैंट्रल जेल, जो भी पैसे वगैरह हमारे पास थे, जेलर के दफ्तर में जमा करा लिये। अन्य साथियों के साथ क्या कुछ हुआ, मुझे पता न चला पर मुझे ले

जा कर एक बाथरूम जैसी छोटी कोठरी में बंद कर दिया और बाहर से ताला लगा दिया। उस कोठरी में एक भी फर्नीचर न था और न कोई कंबल या कपड़ा। एकदम खाली। थोड़ी ही देर में पेशाब की बू से माथा फटने-सा लगा। खड़े रहें या बैठें, लेकिन कैसे और कहाँ। मेरी तो साँस घुटने लगी। जब खड़े-खड़े पाँव थक गये, तो वहीं सीमेंट की उखड़ी फर्श पर बैठ गये। मन ऊबने लगा। क्या करें, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। यह कैसे देश आजाद हो रहा था, बाहर अन्य साथी कहाँ होंगे, क्या कर रहे होंगे, वे भी मेरी तरह ऐसी ही काल कोठरियों में बंद होंगे। वे क्या सोच रहे होंगे। कोई जवाब नहीं, जवाब आये तो कहाँ से, मन व्याकुल हो रहा था। सिर भन्ना रहा था। उन सँकरी दिवालों में जान साँसत में थी और मन अपनी आजादी की इस बरबादी को सह रहा था। मन को कैसे बहलायें, किस में उलझायें। हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम यही कह-कह कर अपने को धीरज दे रहा था। माँ का बताया यह दोहा दुहरा रहा था, डर तो नहीं लग रहा था लेकिन मन सध नहीं रहा था। रोना आ रहा था। इस आफत में खुद फँसा औरों को भी फँसाया। सब मुझे गालियाँ दे रहे होंगे। शायद, हो सकता है कि वे मुझ से ज्यादा हिम्मत वाले हों। अँधेरा बढ़ चला रात आ रही थी। कहाँ और कैसे सोएँगे। कुछ खाना भी मिलेगा या नहीं। इतने में ही देवदूत की तरह किसी ने ताला खोला। एक था जेल का सिपाही और दूसरा व्यक्ति था एक कैदी। दोनों ने हमें पकड़ कर बाहर निकाला। पक्का (जेल के कुछ विश्वासी कैदी कुछ सालों में पक्का बन जाते हैं, वे पक्का कहलाते हैं) बोला, तकदीरी हो बचुआ। अब तुम का बी क्लास माँ बंद करिबे। और वे हमें एक बड़े-से बंद अहाते में ले गये, जिसमें हमें बंद कर दिया। इस में एक बहुत लंबा हॉल था। दो कतारों में तखत जैसे सीमेंट के चबूतरे बने थे और उन पर दो-दो कंबल रखे हुए थे। तौ अब मौज मारौ, पक्का बोला और सिपाही के साथ चला गया। और इसी तरह धीरे-धीरे सभी साथी वहाँ आ पहुँचे। जिस तरह बसेरे के वक्त चिड़ियाँ कलरव करती हैं, हम सभी चैं-चैं करने लगे। बातों का कोई अंत नहीं। जैसे कि आजादी ही मिल गयी हो।

खाना तैयार था और हमें भूख भी जोरों की लगी थी। एक बड़ा-सा रसोई घर था। वहीं पर बोरा बिछा कर बैठ गया। जेल के अन्य कैदियों में कुछ को ए और बी क्लास के कैदियों की सेवा में लगा दिया गया था। वे ही यहाँ हर तरह के काम कर रहे थे। बड़े सलीके के रसोइये ने एक पीतल की थाली में खाना परोसा। खाने में अरहर की दाल, एक रसेदार और एक सूखी सब्जी, भात तथा गेहूँ की रोटियाँ मिलीं। दाल में जेल का बना हुआ घी भी मिला। बहुत अच्छा भोजन खाकर सारे दिन की मुसीबतें भूल गया। और जब सोने के वक्त एक ग्लास गरमा-गरम दूध पीने को मिला तो हम यह भूल गये कि जेल में हैं। इतना तो हम को घर में भी नहीं मिलता था। बाद में मुझे मालूम हुआ कि प्रति व्यक्ति के भोजन के लिए 17 आने (1 रुपया 1 आना) का खर्च होता था। हम हॉस्टल में पूरे महीने के भोजन के लिए 5 रुपये देते थे। जेल में हमारे ऊपर एक दिन में ही 2 रुपये 2 आने का खर्च किया जाता था। तो हमें तकदीरी ही कहा जाएगा। ए क्लास वालों को फल-फूल भी मिलते थें। उस समय हमारे उसी अहाते में एक अलग बँगले में बाथरूम वाले अच्छे कमरे मिले हुए थे। जेल के पुस्तकालय से पुरानी किताबें भी पढ़ने को मिल जाती थी। सब कुछ मिल रहा था लेकिन अखबार नहीं मिलते थे। बाहर के कोई समाचार नहीं मिलते थे। इस अहाते में बहुत खाली जगह थी। अगस्त महीने की शुरुआत थी, बरसात का मौसम भी शुरू हो गया था। नागपंचमी भी आ रही थी। हम लोगों ने मिलकर एक अखाड़ा भी बनाया, जिसमें खेलने-कूदने का आनंद भी आने लगा। कभी-कभी ए क्लास में बंद लाल साहेब, सेमरी के राजा, लालगंज के केदारनाथ पांडे और एक दाढ़ीदार मौलाना (नाम याद नहीं) से मिलते थे और घंटों बातें करते थे। आपस में बहसें होती रहती थी। महत्व की बात यही होती थी कि स्कूल छोड़ दिया जाए और राजनीति के क्षेत्र में काम करना ठीक होगा। मेरे अलावा सभी स्कूल छोड़ने के पक्ष में थे। मैं यही मानता रहा कि हम इस संग्राम में गाँधी जी की पुकार पर आजादी की लड़ाई में कूदे हैं और आजादी मिलने पर फिर अपनी शिक्षा में लगना ही ठीक होगा। आजाद देश को शिक्षित लोगों की जरूरत होगी। देश को और शिक्षित करके आगे बढ़ाना होगा। अशिक्षितों से देश का काम कौन करेगा। शिक्षा के मामले में मेरा निर्णय पक्का था। पर अभी तो हम बंद थे। कभी-कभी गाँधीजी की जै-जैकार कर लेते थे। कौन जाने कब तक बंद रहेंगे। गाँधीजी भी हजारों नेताओं के साथ बंद थे। कभी-कभी कुछ उड़ी-उड़ी खबरें आ जाती थी। गोलियाँ चल रही हैं, लोग मर रहे हैं। मिलिटरी चारों तरफ आतंक फैलाये हुए है। हाहाकार मचा हुआ है। इस तरह से जेल का अच्छा खाना भी कड़ुआ हो जाता था। हम अपने अपराध भाव को मिटाने के लिए कभी-कभी व्रत भी कर लेते थे। नपुंसक आक्रोश में खाली मुट्ठियाँ भाँजते थे। लगभग ऐसे ही तीन महीने बीते होंगे, कि एक दिन हुक्म आया कि सभी बच्चों को छोड़ दिया जाये।

हमारी सभी चीजें और पैसे हमें वापस देकर जेल के फाटक से बाहर निकाल दिया गया। कहाँ जाएँ, क्या किया जाए। यही सोचते-सोचते शहर की तरफ चल दिए। जेल से छूटने की किसी को खबर भी नहीं थी। हमें कोई लेने आये यह सवाल ही नहीं उठता। स्वागत में फूल-मालाओं की कौन बात करे। कुछ समझ में न आने पर प्रताप सिनेमा में जा बैठे। कुछ पैसे तो थे ही। रायबरेली में तो हम हॉस्टल में रहते थे तो, वहीं गये। दूसरे दिन स्कूल गये और हैडमास्टर विष्णुशरण लाल सक्सेना साहेब से मिले। उन्होंने कहा कि तुम्हारे रस्टिकेशन ऑर्डर आये हुए हैं। डिप्टी कमिश्नर साहेब से जाकर माफी माँग लो, अगर वे मान जाते हैं तो तुम कभी भी स्कूल आ सकते हो। मैंने तुम को कितना समझाया था कि इन आंदोलनों में न पड़ो, पर उस समय तुम पर गाँधी का भूत चढ़ा हुआ था। मैंने इस स्थिति के बारे में सोचा भी नहीं था। वे मुझे बहुत मानते थे। बहुत स्नेह करते थे। घर भी बुलाते थे। भीतर से तो वे मेरा और भी मान करते थे कि मैंने आजादी की लड़ाई में भाग लिया। उन्होंने स्कूल छोड़ने के बाद बहुत अच्छा चरित्र प्रमाण-पत्र दिया, जो मेरे पास आज भी सुरक्षित है। मेरे साथियों ने कमिश्नर के पास जाकर माफी माँगने की कोशिश की तो उन्होंने तीनों को बहुत डाँटा, तुम को माफी माँगत शर्म नहीं आती। तुम और तुम्हारे इस आंदोलन ने कितनों की जानें ली हैं, कितनों के घर बरबाद हो गये हैं। अब जाओ और पढ़लिख कर अच्छे इंसान बनो। मैंने हैडमास्टर साहेब से पहले ही कह दिया था। मैं अब अगर गाँधीजी भी कहें तो माफी नहीं मानूँगा। अब कमिश्नर के पास जाने की मैंने कोई जरूरत नहीं समझी। कुछ दिनों बाद मुकदमा चला। वहाँ भी जब माफी का सवाल आया तो हम सब ने इंकार कर दिया। हमारे ऊपर दस-दस रुपये का जुर्माना किया गया जिसे नहीं माना तो फिर से जेल जाने की बात आ गयी। तभी किसी ने हम सब पर हुए जुर्माने के रुपये अदा कर दिये। हम छूट गये। कचहरी के बाहर बड़ी हलचल थी जब हम बाहर निकले तो गाँधीजी की जै-जैकार के नारों से आसमान गूँज उठा। हम स्कूल में दाखिल हुए। कुछ ही समय बाकी थे हाईस्कूल की फाइनल परीक्षा के। किसी तरह तैयारी की और परीक्षा भी दी पर चार अंक से प्रथम श्रेणी रह गया। मैं खिलाड़ी होने के अलावा बहुत अच्छा विद्यार्थी भी था। हैडमास्टर साहेब को मुझ से बहुत उम्मीदें थीं। तमाम देश के नुकसान के सामने यह कुछ भी न था।

जेल से छूटने के बाद मुझे ध्यान आया कि मेरे छोटे भाइयों का क्या हुआ होगा। वे अगर गाँव लौट गये तो कैसे, उनके पास तो पैसे भी नहीं रहे होंगे। आज तक भी मुझे नहीं मालूम। उन दिनों अजीब तरह कर दीवानापन सवार था। होश ही गायब थे। हैडमास्टर साहेब ने मेरे पिता जी को चिट्ठी भेज कर बुला लिया। वे हमें, एक तरह से, पकड़कर घर ले गये। रात में ऊँटगाड़ी से लालगंज और वहाँ से 10 मील दूर गाँव, शिवपुरी। पैदल ले गये। सवारी तो वैसे भी हमारे गाँव कभी नहीं जाती थी। चारों तरफ सन्नाटा, सनसना रहा था। हमारी आपस में भी कोई बात नहीं। बाद में भी कुछ नहीं कहा, माँ के सामने ढकेलते हुए कहा, ये लेओ, अपने सुराजी सपूत को। और पता नहीं कब और कैसे, शायद मेरी माँ ने, मुझे बताया। 14 जून को तुम्हार बिआह (विवाह) है। हम बहुत उछले-कूदे, रोये-चिल्लाये। ना ना करते रहे। जब दादा कम्पू ते अइहैं, तो यह नाटक उनही का देखायो। हम अवधी ही बोलते थे। दादा के सामने तो मुँह खोलने की हिम्मत भी न हुई। चाचा से रो रोकर कहते रहे। वे भी अब क्या कर सकते थे। विवाह तो उसी समय पक्का कर दिया गया जब मैं जेल में था। घर में सबने यही उपाय ठीक समझा कि जब मैं जेल से घर आऊँ तो खूँटे से बाँध दिया जाऊँ। अब तक हथकड़ियाँ थीं तो अब पैरों में बेड़िया डाल दी जाएँ। तो इस तरह मुझे आजीवन कारावास दे दिया गया। गले ढोल बँध गयी। बजाऊँ या न बजाऊँ, कोई सुननेवाला नहीं था। इस कारावास से तो अब गाँधी जी भी नहीं छुड़ा सकते थे। मेरे बहुत ही प्रिय मित्र त्र्यम्बकेश्वर प्रसाद के जमींदार और औनरेरी मैजिस्ट्रेट ने सलाह दी कि घर से भाग जाऊँ। मेरे सामने दो बड़े सवाल ये थे कि भाग कर कहाँ जाऊँ, और भाग जाने पर इस अनजान, अबूझ, अशिक्षित लड़की का क्या होगा, जिसे मेरे साथ बाँध दिया गया है। इसे क्या मालूम कि उसकी शादी किसी सुराजी और विद्रोही से हो रही है। वह तो सपने देख रही होगी कि उसके बाप ने किसी अच्छे-से लड़के से शादी की होगी। बाप ने शायद खोजा भी बहुत होगा। लेकिन अपने दृष्टिकोण से। मैं गहरे सोच में पड़ गया। यह कैसा जाल है। वह सोच रही होगी घर-गृहस्थी की। सुंदर से दुल्हे की, सास-ससुर की, ससुराल के अनजाने, अपरिचित घर की। और मैं सोच रहा था कि मैं रोटी-कपड़े कहाँ से लाऊँगा, कहाँ रहूँगा, उसे कहाँ रखूँगा। मैं अब गाँधी के चक्कर से निकलकर शादी के घनचक्कर में फँस गया। तो अब मुझे उस गाय की तरह चलना होगा जिस के गले में लंगड़ डाल दिया गया हो। तेज चलने में टाँगें टूटे तो था कोई दूसरा मार्ग। मुझे तो नहीं

दिख रहा था। बस, पाँवों में शादी की बेड़ियाँ और हाथों में गाँधी की हथकड़ियाँ। देश को आजादी मिल गयी लेकिन क्या मुझे भी आजादी मिली। पहला बेटा अगर जीवित रहता तो वह आज 72 साल का होता, देश को आजाद हुए 70 साल हो गये हैं और आज मैं 92 पूरे कर चुका। पर सवाल आज भी मेरे दिमाग को मथता रहता है, कि क्या-कब ठीक है, सही है और क्या वह अच्छा भी है। क्या सब अच्छे काम सही भी होते हैं। और क्या, सब यही काम अच्छे भी है। इस विरोधाभास को ठीक-ठीक समझने का है कोई तरीका।

पूरे दो साल निकले। पढ़ाई जारी रखने का मेरा फैसला पक्का रहा। दादा-भाभी ने मेरी शादी की है तो अब वे ही सँभालें। ऐसा सोचा और दो साल इंटर में, दादा-भाभी के पास रहते हुए, कानपुर में बिताये। अपने मायके से मेरी पत्नी को भाभी अक्सर बुला लेती थी। वे चाहती थी कि मैं फँसूँ। मैं फँसा भी। वे बहुत हद तक सफल भी रहीं। कानपुर रहते हुए गाँधी का कोई काम न हुआ। उन दो सालों में मैंने बहुत पढ़ाई की। देश के तमाम संतों के साहित्य का अध्ययन किया। विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, दयानंद इत्यादि की सभी उपलब्ध पुस्तकें बाँच डाली। उधर बंगाल में भुखमरी शुरू हो गयी। हजारों लाखों लोग मरने लगे। कहते हैं कि लगभग तीस लाख लोग मरे। कलकत्ते पर जापानी हमले होने लगे। यह लगने लगा कि गाँधी जी का यह कहना कि अंग्रेज देश छोड़ देंगे तो हम अपनी रक्षा खुद कर लेंगे, मन को आश्वस्त नहीं कर पा रहा था। बंगाल के अकाल पर अपना नपुंसक क्रोध कविता के रूप में निकालने की असफल प्रयास करता रहा। असफल इसलिए कि किसी भी पत्र ने मेरी कविताएँ नहीं छापीं। मैं बेचैन रहता। गाँधीजी के कामों के लिए गाँवों में जाता। कुछ कहना चाहता या करना चाहता तो कोई भी न सुनता न वह कुछ करता। मैं निराश होता तो अध्यात्म की ओर मन मुड़ता।

सभी नेतागण और गाँधीजी जेल में थे। सुभाष बाबू अदृश्य कहीं आजाद हिंद फौज का संगठन कर रहे थे। इंफाल तक पूर्वी हद पर जंग चल रहा था। अंग्रेजी सरकार ने हवाई हमलों के बचाव हेतु अभ्यास शुरू कर दिये थे। शहर भर में सड़कों के किनारे दो मीटर ऊँची ईंटों की दिवालें बना दी थीं। सेना के लिए ऑडिनेंस फैक्ट्रियाँ जोरों से काम कर अस्त्र-शस्त्र बना रही थीं। तब भी हमारे लीडर जेलों में थे। मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी बड़ी धूम से काम कर रही थी। पाकिस्तान की माँग लेकर जिन्ना साहब सारे देश में डर पैदा कर रहे थे। कम्युनिस्ट पार्टी उनके समर्थन में काम कर रही थी और अंग्रेजों को भी अपने जन-युद्ध सहायता दे रहे थे। राजाजी पहले से ही भारत छोड़ो आंदोलन के खिलाफ थे। बाद में उनका पाकिस्तानी माँग को लगभग स्वीकारता हुआ एक फॉर्मूला भी सामने ले आये थे। 1941 से 42 में जो कुछ हो रहा था सभी कांग्रेस और गाँधीजी के खिलाफ ही था। 1942 में पुल, रेल की पटरियाँ, टेलीग्राफ के खंबे और तार काटे जा रहे थे। अराजकता पैदा हो गयी थी। रस्से और कुछाल वगैरह लेकर कई लोग मेरे पास भी आये और ये सब करने के लिए उकसाते रहे। मैंने साफ इंकार कर दिया और गाँधीजी के अहिंसा के सबक सिखाने की असफल कोशिश करता रहा। वे मुझे बताते कि गाँधीजी ने कहा कि "अंग्रेजों ने जो अराजकता फैला रखी है उससे तो अपनी अराजकता भी स्वीकार्य है।" 1940 में ही जिन्ना ने लीग के अध्यक्ष की हैसियत से पाकिस्तान का प्रस्ताव मनवा लिया था। सभी जगह पाकिस्तान के लिए आंदोलन हो रहे थे। 1945 में जेल से छूटने पर गाँधीजी ने जिन्ना के साथ अनेक मीटिंग भी की और कोशिश की कि जिन्ना अपनी माँग को तरमीम दें। देश को किसी तरह भी बँटने न दें। लेकिन जिन्ना साहेब अपने इरादों से टस से मस नहीं हुए। और गाँधीजी भी अपने हिंदू-मुस्लिम यूनिटी के सिद्धांत और भारत की अखंडता के विचार से विमुख नहीं हुए। और आखिर दम तक गाँधीजी भारत की अखंडता के लिए लड़ते रहे। हिंदू-मुस्लिम यूनिटी के लिए जान हथेली पर लिए घूमते रहें।

जिन्ना और गाँधीजी के संबंधों के बारे में हमेशा मेरे मन में एक यह सवाल उठता रहता है कि जिन्ना साहेब, जो कभी 1916 में हिंदू-मुस्लिम यूनिटी पैक्ट पर, कांग्रेस के सक्रेटरी की हैसियत से, मुस्लिम लीग से दस्तखत करवाते हैं, (लखनऊ पैक्ट) वहीं जिन्ना कैसे कांग्रेस के खिलाफ हो जाते हैं कि गाँधीजी की एक भी दलील नहीं मानते। राजाजी के फॉर्मूले कि हिसाब से गाँधी जिन्ना से बात करते हैं, जिसके अनुसार मुस्लिम अक्सरियत वाले पश्चिमी सूबों में प्लैबीसाइट करवाया जाये और उसके अनुसार स्वतंत्र सूबे बनाये जाएँ। और भी बातें हैं, इसमें, जो गाँधीजी को भी नहीं पसंद थी। दरअसल जिन्ना साहब गाँधीजी और उनकी पॉपुलिस्ट पॉलीटिक्स और जनता पर उनकी पकड़ से खार खाते थे। साउथ अफ्रीका से लौटने के बाद खेड़ा और चंपारन के आंदोलनों (1918) में सफलता के कारण गाँधीजी ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी और कांग्रेस पर पूरी धाक जमा ली थी। एक तरह से जिन्ना को अपदस्थ कर दिया था। जो भारतीय राजनीति में और कांग्रेस

पर अब तक जिन्ना ने अपनी धाक जमा ली थी, वह 1922–23 तक समाप्त हो गयी थी। और पावर अब गाँधीजी के हाथों में चली गयी थी। इस बात का ध्यान रखना होगा कि तब तक जिन्ना की वकालत अच्छी चलने लगी थी। काफी शोहरत मिल गयी थी। वे दादा भाई नौरोजी के ब्रिटिश पार्ल्यामेंट के सदस्य होने से बहुत प्रभावित थे और राजनीति के क्षेत्र में आकर शान और शोहरत हासिल करना चाहते थे और वह हो भी रहा था, अपने पिता की मुखालफत के बावजूद। गाँधीजी के आने के बाद 1922 के पहुँचते-पहुँचते वे कांग्रेस के अदना से सदस्य रह गये थे। वे उस समय लीग के सदस्य तो थे ही, इंडियन होम लीग के भी सदस्य थे। बहुत महत्वपूर्ण वकील और अच्छी धाकवाले इंसान थे। अमीर मुसलमान घराने से थे। मुझे ऐसा लगता है कि गाँधीजी के कारण उनकी बड़ी हेटी हुई, फजीहत हुई और खिसिया कर हार मानकर मैदान छोड़कर उलटा रूख बना लिया। यहाँ तक कि कुछ साल बाद लंदन भाग जाने के लिए मजबूर हो गये थे। लगभग 8–10 साल तक वे भारतीय राजनीति से बिल्कुल अलग हो गये थे। तब लियाकत अली खान बहुत खुशामद कर कैसे भी मनामुना कर 1930 तक लीग के सदर के तौर पर ले आये। और तब वे इस वायदे से आये कि उनकी पाकिस्तान की नीति को लीग मानेगी और उनकी मर्जी पर चलेगी। उन्हें 'कायदे आज़म' का खिताब भी दिया गया। तो अब गाँधी से दुबारा हार कैसे मान सकते थे। तो 1940 में और इसके बाद 1942 में बहुत शान से मुस्लिम लीग के लाहौर में हुए जलसे में पाकिस्तान बनाने का ऐलान कर दिया। अंग्रेजों और कम्युनिस्टों ने उनका समर्थन किया। उस समय गाँधीजी के साथ हमारे नेता जेल में किताबें बाँच रहे या लिख रहे थे। मेरा ख्याल है कि जिन्ना ने यह बदला लिया गाँधीजी से। यह बिल्कुल मेरा अपना कयास है, एक अटकल है।

पिछले शती का चौथा दशक हमारे देश का सबसे दर्दनाक और भयंकर काल था। अगर आजादी देश की सबसे बड़ी सफलता और जंग की जीत का काल था, तो गाँधीजी के लिए सब से बड़ी तपस्या और परीक्षा का वक्त भी था। एक तरफ हजारों-लाखों की निर्ममता से हत्याएँ हो रही थीं, लाखों बेघरबार हो रहे थे। कैसी विकराल विडंबना थी कि एक ओर गाजे-बाजों और आतिशबाजियों के साथ खुशियाँ मनायी जा रही थीं, वहीं गाँधीजी अकेले हत्या-क्षेत्र नोआखली में रोते हुए लोगों के आँसू पोंछ रहे थे। कलकत्ते में शांति के लिए अनशन कर रहे थे। सोहरावर्दी के मुख्यमंत्री होने के समय हजारों को मौत के घाट उतारा जा रहा था और गाँधीजी सोहरावर्दी की ताजपोशी कर रहे थे। बिहार की मारकाट को शांत करते हुए वे लौटे तो आजादी के आधे साल के भीतर ही गोडसे की तीन गोलियों ने उन्हें राम के पास पहुँचा दिया। यह सब क्यों और कैसे हुआ हम सब जानते है। कहने में दम्भ का भाव प्रकट होता है, लेकिन 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर मैं भी हॉस्टल के अपने कमरे में उपवास कर रहा था। माँ की तरह वैसे भी लड़कपन से ही रविवार का उपवास करता आ रहा था, इधर गाँधीजी की देखा-देखी, केवल रविवार को, मौन भी रखने लगा था। वह भी दोपहर के 12 बजे तक। रोज एक घंटे तक चर्खा भी कातता था। यर्वदाचक्र पर एक घंटे में 300 गज कात लेता था। कुछ अभ्यास हो जाने के कारण 40-50 काउंट का महीन सूत बन जाता था। कपड़े बुनना तो संभव नहीं था इसलिए अटेरन पर चढ़ा कर गुंडियाँ बना लेता था और काफी इकट्ठा हो जाने पर खद्दर भंडार में दे देता था और उसकी जगह कोई कपड़ा ले आता था साथ में कुछ बनी-बनायी प्यूनी भी ले आता था, कमरे में कपास से प्यूनी बनाना मुश्किल था। इतना कात लेता था जिस से दो कुर्ते, दो पाजामे और दो अंगौछों का जुगाड़ हो जाता था। हमारे बगल के कमरे में कटारीया नाम का बहुत अच्छे स्वभाव का मेरा ही जैसा एक विद्यार्थी रहता था, वह भी गाँधीजी से प्रभावित था। एक गोपीनाथ भी ऐसे ही विचारों के थे और हम हमेशा गाँधीजी की पुस्तकों और साहित्य का अध्ययन करते और बहस करते। नारायण दत्त तिवारी भी हमारे साथ गंगानाथ झा हॉस्टल में विमल महरोत्रा के साथ रहते थे। दोनों समाजवादी विचारों के थे। उनसे भी गाँधीजी पर बहसें होती रहती थी। मैंने विश्व विद्यालय में एक रचनात्मक परिषद् की स्थापना की थी। हर रविवार को हमारे विचारों के लोग दिन के दो बजे, एक घंटे के लिए यूनिअन हॉल में मिलते थे। एक साथ पहले आधा घंटा चर्खा कातते थे और आधा घंटा किसी तत्कालीन राजनीति तथा ऐसे ही कई अन्य विषयों पर विचार-विमर्श करते थे। इस गोष्ठी में सादिक भाई, शंकर राव देव, काका कृपलानी, प्रो. महेश दत्त मिश्र, इत्यादि संभ्रांत व्यक्ति सक्रिय भाग लेते थे।

काशी विश्वविद्यालय के फिजिक्स के प्रो. उद्धव असरानी के पास जाकर मैंने कार्य पद्धति को कुछ और जानने-समझने की कोशिश की। वे वहाँ काशी में किस प्रकार नंदकिशोर लौज को गांधियन विचारों के आधार पर संचालित कर रहे थे। मैंने भरपूर कोशिश की कि इलाहाबाद में भी इसी प्रकार से एक

संस्थान चलाऊँ, लेकिन विद्यार्थी होने की वजह से मुझे यह काम करने की अनुमति नहीं दी गयी। फिर भी ऐसे कामों के नियोजित करने के प्रयत्न करता रहा। गाँधीजी के आधार पर काम करने के लिए मैं सेवापुरी गाँधी आश्रम में भी कई महीने तक रहा और वह सब सीखा, जिसके अनुभवों के आधार पर इलाहाबाद में ऐसा कुछ सकूँ। कर्ण भाई, विचित्र भाई, भाई मजूमदार (उड़े), के सान्निध्य में रहा। प्रो. धवन से गांधियन राजनीति और जे.सी. कुमरप्पासे गांधियन अर्थशास्त्र सीखा। आस-पास के गाँवों में जाकर कुछ प्रौढ़ शिक्षा अनुभव प्राप्त किया। सुबह उठकर दो सेर चक्की से आटा पीसता था, और बर्तन भी धोता था।

इलाहाबाद के लोकप्रिय लेता विश्वम्भर नाथ पांडेय, पुरुषोत्तमदास टंडन इत्यादि से भी मिला। टंडन जी के बेटे हमारे हॉस्टल के पीछे ही रहते थे, जो कैमिस्ट्री के प्रोफेसर थे। कुछ अच्छी पुस्तकें, इन्हीं विचारों के आधार पर तैयार की थी, जिनका उपयोग बच्चों को गांधियन मार्ग पर चलाने के लिए उपयोगी था। उनपर हम विचार करते थे। मैं विद्यार्थी था और ऐसे काम मेरे लिए किसी ने ठीक नहीं माने। आगे चल कर करना, यही आश्वासन मिल जाता था। और मेरे अध्ययन के लिए भी बहुत कम वक्त बचता। मैं रात में दो बजे उठकर पढ़ता, दिन में सब की तरह क्लासों में जाता और एक गंभीर विद्यार्थी की तरह लेक्चरों के विस्तृत नोट्स बनाता। अब खेल-कूद लगभग बंद थे, फिर भी हॉस्टल की वॉलीबॉल टीम का कैप्टन था। 1945 में जब 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के कैदी जेलों से छोड़े गये तो उन में से एक कैदी हेमवती नंदन बहुगुणा 3 साल की जेल भोग कर छूटे तो मेरे पास ही आये। मेरे ही एक कमरे में रहने लगे। उनके पास साधारण जरूरत के कपड़े भी नहीं थे। वे इलाहाबाद वि.वि. के विद्यार्थी थे। अत: वे और कहाँ जाते। सही जगह मिलने के पहले वे मेरे ही पास आ पहुँचे। मेरी समझ में आज भी नहीं आता कि वे मेरे ही पास क्यों आये। और कभी कहीं जा सकते थे। गये भी, लेकिन बाद में, वे राजनीतिज्ञ थे और मैं महज गाँधीवादी कार्यकर्ता। नारायण दत्त तिवारी की तरह ये समाजवादी व्यक्ति नहीं थे। बहुत ही अच्छे वक्ता और समाज कुशल, सभा चतुर और होशियार व्यक्ति थे। ये दोनों मेरे जीवन में हवा की तरह आये और वैसे ही चले गये। फिर भी मेरी नजर में बाहर नहीं थे। कभी-कभी मिल जाते, तो राम-राम हो जाती थी। इन के कारनामें भारत में सर्वविदित हैं।

सभी को मालूम है कि 1945 से 1950 तक हिंदुस्तान में कितना तहलके मचे। ग्रेट कलकत्ता किलिंग के नाम से मशहूर हिंदू-मुस्लिम (मसाकर) यानी कलकत्ते में सोहरावर्दी के राज्य में कत्लेआम हुआ, बिहार में हिंदू-मुस्लिम दंगे, 16 अगस्त 1946 को जिन्ना का डायरेक्ट एक्शन और सारे देश में मारकाट, ब्रिटिश मिशनों की निरर्थक आवाजाही, देश का विभाजन और पाकिस्तान और भारत को क्रमश: 14 अगस्त और 15 अगस्त की आजादी। और उस समय जो कत्लेआम हुआ वह दुनिया के इतिहास में सब से दर्दनाक और दहला देने वाला बड़ा हादसा था। लाखों की तादाद में हिंदू और मुसलमान मरे और विस्थापित हुए। लेकिन गाँधीजी ने कभी नहीं चाहा कि देश का बँटवारा हो। आखिरी दम तक गाँधीजी ने कोशिशें की। इस दर्दनाक हादसे को रोकने के लिए नेहरू और पटेल से कहा कि जिन्ना को देश प्रधानमंत्री बन जाने दो और सहयोग के साथ देश की अखंडता बनाये रखो। तब देश के दोनों महान नेता गाँधीजी को भौचक्के होकर देखते रह गये। बापू, यह आप क्या कहते हैं? और बापू के न चाहते हुए भी देश का बँटवारा हो गया। आजाद भारत के जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री बने और उनके गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल। गाँधीजी फिर भी हिंदू-मुस्लिम एकता में अटूट विश्वास बनाये रहे। गाँधीजी ने 55 करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिलाये, तोड़ी गयी मस्जिदों को फिर से मरम्मत करवाने का आग्रह किया। इसके लिए आमरण अनशन किया। गाँधीवादियों के साथ मैं पाकिस्तान जाकर मुसलमानों को मनाकर वापस लाने के लिए था। कृपलानी जी, कर्मवीर भाई, सुंदरलाल और अनेक अन्य गाँधीवादी पाकिस्तान जाकर भारत वापसी का आंदोलन चलाने का इरादा रखते थे। सुंदरलाल जी गये भी थे, लेकिन उन्हें लौट आना पड़ा। कश्मीर का झमेला शुरू हो गया था। छ: महीने भी न बीते थे कि गाँधीजी की नाथूराम गोडसे ने गोलीमार कर हत्या कर दी। कैसी विडंबना, भयानक त्रासदी। इस खबर ने सारे देश में कोहराम मचा दिया।

इस दुखभरे हादसे से मेरी तो हालत बहुत खराब हो गयी। और तभी गद्रे जी मेरे कमरे में आये और मेरे पास बैठकर मेरे साथ रोने लगे। तीसरे दिन सभी छोटे-बड़े नेताओं के साथ गाँधीजी का रथ आया। इलाहाबाद स्टेशन से चला और संगम तक स्लो मिलिटरी मार्च के साथ, समस्त राष्ट्रीय सम्मान के साथ जुलूस सिविल लाइंस रोड पर से चला और टैगोर टाउन होता

हुआ लगभग दो बजे संगम पहुँचा। फिर बहुत बड़े मिलिटरी टैंक पर रखकर उनकी फूलों से ढँकी अर्थी को गहराई में ले गये और जनवरी की धुंध में गायब हो गये। स्टेशन से लेकर संगम में गंगा तक मैं साथ-साथ भागता चला गया। एक तरह का दीवानापन सवार था। लौटकर खाली कमरे में खलबली भरे देश के हालात पर गमगीन मन भीतर ही भीतर रोता रहा।

एम.ए. प्रीविअस की परीक्षाएँ दो-ढाई महीने में होने वाली थीं। तो एक बार फिर गाँधी जी की वजह से अध्ययन और परीक्षा में बाधा आयी। अगर अंधविश्वासी होता तो यही सोचता कि गाँधी जी नहीं चाहते थे कि मैं पढ़ने-लिखने में वक्त बरबाद करूँ और देश की उपेक्षा करूँ। लेकिन मैं निश्चित रूप से मानता था कि शिक्षित लोग ही देश का काम अच्छी तरह से कर सकेंगे। देश को आगे ले जा सकेंगे। तब मैंने इस इरादे से पढ़ने में फिर मन लगाने की कोशिश शुरू कर दी।

1948-49 के अकेडिमिक साल में मैं हॉस्टल यूनियन का सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुना गया। तब मैंने लाल बहादुर शास्त्री जी को यूनियन में व्याख्यान के लिए बुलाया, कर्मवीर भाई सुंदरलाल जी भी भाषण के लिए हमारी यूनियन में आये। वे बोलते-बोलते रोने लगते थे और रोते-रोते बोलते जाते थे। हिंदी में ऐसे छोटे-छोटे जुमलों में धीरे-धीरे बातचीत के लहजे में बोलते थे, कि मन पर गहरा असर पड़ता। यही उन की भाषण-शैली बन गयी थी। सभी विद्यार्थियों ने उनका भाषण बड़े ध्यान से सुना। और तभी जिन्ना साहेब की सितंबर में तपेदिक रोग से मौत हो गयी। मरने के कुछ ही वक्त पहले उन्होंने कश्मीर की लड़ाई कबालियों को अपनी सेना के संरक्षण में भेजकर शुरू करवा दी थी और चाहते थे कि मरने के पहले कश्मीर पाकिस्तान में मिला लें। वह तो न हुआ लेकिन वे चल बसे।

तत्पश्चात् पढ़ने और चर्खा कातने के सिवाय मैंने और सब छोड़ दिया। ऐसा त्यागभाव मन में गहरा गया, कि सभी कुछ निस्सार लगने लगा। तभी मेरे दो-ढाई साल के पहले बेटे की अचानक मृत्यु हो गयी। मैंने अभी तक जाना ही न था कि बाप होना कैसा होता है। मन सन्नाटे में, जब शोक समाचार पाकर पत्नी के पास पहुँचा तो वह धाड़ मार-मार कर रोने कलपने लगी। फटीफटी आँखों से उसे महज ताकता ही रह गया। गाँधी के काम की जगह अब केवल चर्खा और उनके कुछ विचार मेरे साथ बने रहे। भारत छोड़ने पर (1963 जून) चर्खा भी भारत में ही रह गया और खादी की जगह पर अंग्रेजी पोशाक चढ़ गयी। अब जो बाकी बचा वह था बेचैन मैं, और हुतात्मा हताश गाँधी की याद। वे चले गये शहीद होकर मैं था अभी जिंदा अपनी लाश लेकर। जो भी हो। बस होना ही हमी को, तो हम हो रहे हैं। क्या और कैसे, कुछ नहीं जानता, कुछ समझता भी नहीं, क्या होगा तेरा, तुम्हारा या किसी का। फटी आँखों से देखना।

कहाँ गाँधीजी और कहाँ मैं। हम कभी मिले भी नहीं और न उन्होंने मुझे जाना। वैसे भी हममें बेसिक अंतर थे। गाँधीजी पक्के आस्थावान ईश्वरवादी थे। और मैं अनीश्वरवादी। मैं कभी भी ऐसे ईश्वर में विश्वास नहीं कर सका जो अपने भक्तों का भला करता है, फिर भी भोले भक्तों का प्रशंसक हूँ, क्यों कि वे तो ईश्वर की भक्ति में तल्लीन है। वह तल्लीनता मेरे लिए प्रशंसनीय है। चाहने पर भी मैं तो आस्तिक नहीं हो पाता। अत: वे मेरे लिए पूज्य हैं। गाँधीजी घोर कर्मवादी थे। न्याय के लिए वे जूझ जाते थे जबकि मुझ में तो चोर को भी चोर कहने का साहस नहीं। अहिंसा ही उनका धर्म था। वे दृढ़ अहिंसावादी थे। अहिंसा उनके लिए एक मात्र साधन था सत्य तक पहुँचने का। दुश्मन से प्रेम का। इस मुद्दे पर मैं उनका अनुगामी हूँ, भले ही असाहसिक अहिंसक ही सही। कायरतावश ही सही, लेकिन पक्का अहिंसक हूँ। आज की इस हिंसामय दुनिया में मैं अहिंसा का प्रचारक भी हूँ। गाँधीजी की नैतिक कठोरता से डर लगता था। वैसे भी मेरी कभी हिम्मत ही न हुई कि गाँधीजी के पास जाऊँ। उनके आश्रम में उनके न रहने पर ही गया, साबरमती और सेवाग्राम के दर्शन किये जैसा सभी तीर्थयात्री करते हैं। विनोबाजी के आश्रम गया और उनके दर्शन भी हुए, पर वे मौन थे। उनके भूदान आंदोलन का बड़ा प्रशंसक रहा हूँ। जोकि उनके साथ पदयात्रा का साहस न जुटा पाया। दादा धर्माधिकारी जी अक्सर गाँधीजी से कह भी देते थे कि आप का कहना ही हमारे लिए हुक्म है, बापू, आप तर्क न दें। तो हम आज भी गाँधीजी की अद्‌भुत आत्मशक्ति एवं दृढ़ता की कथाएँ सुनाते रह सकते हैं। और कुछ, जो होना था वह गाँधीजी के साथ ही चला गया।

कुछ इस तरह से मैंने जिंदगी को आसाँ कर लिया।
एक से माफी माँग ली, एक को माफ कर दिया।

गालिब

○○○

विष्णु प्रभाकर का बाल साहित्य

डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

मैं उनकी प्रसिद्ध कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' को हिंदी की श्रेष्ठ बाल कहानी के अंतर्गत रखना पसंद करता हूँ। दो बहन-भाई नीना और कमल उम्र यही 10 और 8 वर्ष। माँ गुजर चुकी है, पिता को 20 रुपये की रिश्वत लेने के केस में 9 महीने की जेल हुई। वह चाहता था बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना। मौसी-मौसा अपने घर ले आते हैं। प्यार के कारण या लोक लाज से। पर दो महीने में उनका व्यवहार बच्चों के प्रति बदल जाता है। नीना अपनी उम्र से पहले सयानी हो जाती है। गिलास टूट जाने पर कमल को मौसी-मौसा के गुस्से का पात्र बनना पड़ा। रात वह बहन को बताता है और पूछता हैं - पिता कब आएँगे। बहन झूठा दिलासा देती है कल। सुबह घर की साफ-सफाई चमक देखकर मौसी दंग रह जाती है। कमल ने बताया - रात दीदी कहती थी पिता आने वाले हैं। मौसी कहती है अभी तो दो महीने हुए, उसे सात महीने आने को बाकी हैं।

सम्पर्क: कीर्ति कुसुम, सरस्वती नगर, डाकघर दाड़ी-176057, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश), मो. 094181 21253

विष्णु प्रभाकर हिंदी के ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने लंबे समय तक हिंदी साहित्य की सेवा की है। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य की अधिकतर विधाओं में अपनी कलम का जादू जगाया है। इनके व्यक्तित्व की खूबसूरती इसी में रही कि यह किसी तरह की साहित्यिक गुटबंदी में न पड़ कर केवल साहित्य रचते रहे। किसी एक खास विचारधारा के खूँटे में भी बँधना इन्हें स्वीकार नहीं था। जो मैं अपने पठन-पाठन या लेखन-कर्म से समझ पाया हूँ वह यह कि विष्णु प्रभाकर का साहित्य आम आदमी की जीवन धारा से जुड़कर मानवतावादी है। इनके साहित्य ने आदमी होने के गौरव को जगाया है।

यहाँ विष्णु प्रभाकर के बाल साहित्य की जानकारी देना हमारा उद्देश्य है, परंतु इससे पूर्व यह आवश्यक है कि विष्णु प्रभाकर के सम्पूर्ण साहित्य के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट कर दिया जाए कि उन्होंने राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक सम-सामायिक समस्याओं को अपनी कृतियों का वर्ण्य-विषय बनाया है। राजनैतिक, न्यायिक एवं सामयिक विषयों पर तो उन्होंने अपनी कहानियों, नाटकों, उपन्यासों एवं एकांकियों में बेबाक टिप्पणियाँ ही नहीं की है अपितु एक पूर्ण विचार दिया है। अनेक सारे प्रश्न खड़े किए हैं।

विष्णु प्रभाकर बचपन से मेरे प्रिय लेखक रहे हैं। अपनी युवावस्था में उनकी कहानी 'धरती अब भी घूम रही है', पढ़ी थी। उसने तब भी और आज भी मानस-पटल पर ऐसा कब्जा जमाया है कि उतरता नहीं। बाद में इसी कहानी का मैंने उनसे हिमाचली में अनुवाद करने और छापने की आज्ञा माँगी थी जो उन्होंने प्रदान की थी। यह एक उनकी ऐसी कहानी है जो बदलते समय में भी प्रांसगिक है। आज मैं यह समझता हूँ कि यही विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों में शीर्ष पर रख दी जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। यह कहानी प्रभाकर जी ने 1954 के अंत में लिखी थी और जनवरी 1955 के कहानी विशेषांक ''पथिक' में प्रकाशित हुई थी। विष्णु प्रभाकर ने खुद माना है-'इस कहानी के कारण इतना प्रसिद्ध हुआ, जितना मैं अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आवारा मसीहा' के कारण भी नहीं हुआ।'

जहाँ तक उनके बाल-साहित्य का ताल्लुक है, उन्होंने बाल-कहानियों, बाल एकांकी-नाटकों और कुछ महापुरुषों की जीवनियाँ लिख कर इसे समृद्ध किया है। उनका यह बाल-साहित्य-सृजन 1954 से लेकर मृत्यु के अंतिम क्षणों तक जारी रहा। विष्णु प्रभाकर का अधिकतर यह बाल साहित्य किताबघर, पराग प्रकाशन, राजपाल एंड सन्ज, प्रकाश विभाग, साहित्य अकादेमी, प्रभात प्रकाशन और एन बी टी के माध्यम से प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुँचा है।

प्रभाकर जी के प्रमुख बाल नाटक एकांकियों में 'मोटेलाला', 'दादा की कचहरी', 'अभिनव बाल एकांकी', 'हड़ताल', 'नूतन बाल एकांकी', 'ऐसे-ऐसे', 'बाल वर्ष जिंदाबाद', 'जादू की गाय' तथा अन्य बाल एकांकी, 'गजनंदन लाल के कारनामे', 'दो मित्र', 'मोती किसके', 'कुंती के बेटे' और 'रामू की होली' का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। उपर्युक्त एकांकियों में उन्होंने बाल मनोविज्ञान और बालकों की मन: स्थितियों को आधार बनाकर इनकी रचना की है। ये बाल एकांकी बालकों के सवभाव और रुचियों के अनुरूप हैं। यह भी सत्य है कि बच्चों द्वारा दादा-नाना की छड़ी को लेकर घोड़ा बनाकर उसकी सवारी करना या आँखों पर चश्मा पहन कर दादा-दादी, नाना-नानी का अभिनय करना, कुबड़ा होकर चल कर दिखाना यह सब अनुकरण ही तो है। बच्चों की सच्ची भावनाओं और उनकी इन्हीं इच्छाओं को भी नाट्य रूप में ढाल कर प्रभाकर जी ने पहल की है।

'दो मित्र' एकांकी में दो भिन्न धर्मों में आस्था रखने पर भी उनकी पक्की दोस्ती दिखाकर साम्प्रदायिक सद्‌भावना का अद्‌भुत संदेश दिया है। दोनों दोस्त एक-दूसरे के काम आते हैं। अक्सर शतरंज खेलते हैं। खेल में प्यार-टकराव, चुहलबाजी, तकरार, हास्य और रूठ जाना, फिर मन-मनौत बहुत कुछ है एकांकी में। कमला भागीरथ और उनके मित्र सैय्यद मेंहदी हसन के इस रोज़-रोज़ के नाटक से भली भाँति परिचत हो गई है। एकांकी के चुस्त-दुरुस्त संवाद किसी भी पाठक और दर्शक के मन को छू जाने वाले हैं। रूठ गए भागीरथ को मनाने पर सैय्यद मेंहदी हसन उसके घर के बरामदे में पहुँचते हैं और हाँफते-हाँफते भागीरथ को बाहों में भींच लेते हैं। भागीरथ छुड़ाने की कोशिश करता है। संवाद द्रष्टव्य है: - 'भागीरथ — तूने मुझे इतना नीच समझा। मैं तेरी नीयत पर शक करूँगा।' मेंहदी — (उसी तरह जकड़े हुए) 'मुझे माफ कर दो मेरे भाई, मुझसे गलती हो गई।' (इसी समय हाथ में दो प्याले चाय के लिए कमला वहाँ आ जाती है।) कमला — 'लीजिए, पहले चाय पी लीजिए दोनों।' दोनों एकदम अलग हो जाते हैं।

मेंहदी — 'अरे भाभी जी, यह आप ठीक वक्त पर चाय कैसे ले आती हैं? कमला — 'रिहर्सल करते-करते पार्ट पक्का याद हो गया है।' (तीनों ज़ोर से हँसते हैं) 'ऐसा-ऐसा' 'पुस्तक कीट' और 'ईमानदार लड़का' विष्णु प्रभाकर प्रणीत ऐसे बाल एकांकी हैं जो बालकों द्वारा मंच पर आसानी से खेले जा सकते हैं।

'ऐसे-ऐसे' एकांकी में तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला 9-10 वर्ष का बालक मोहन छुट्टियों में मौज-मस्ती करता रहा। स्कूल खुलने के एक दिन पहले पेट दर्द का बहाना बनाकर अपने माता-पिता को ठगता है। वे परेशान होकर हड़बड़ाहट में एक साथ वैद्य जी को और डॉक्टर को बुलाते हैं। बालक मोहन सबसे कहता पेट दिखाकर इससे 'ऐसा-ऐसा' होता है। कई बार उल्टी करने का नाटक भी करता है। वैद्य ने पेट साफ करने के लिए पुड़िया ले जाने की बात की तो डॉक्टर ने कहा — 'खुराक ले जाओ बदहजमी ठीक हो जाएगी।' दोनों के जाते ही मास्टर जी धमक पड़ते हैं। मोहन के 'ऐसे-ऐसे' होने के बहाने की असल पोल स्कूल के काम न करने के डर को खोलकर सबको दंग कर देते हैं। भय और चिन्ता के वातावरण में हँसी फूट पड़ती है। मास्टर जी ने मोहन से आते ही कहा — 'अच्छा साहब! दर्द तो दूर हो ही जाएगा। डरो मत बेशक कल स्कूल मत आना। एक बात बताओ, स्कूल का काम पूरा कर लिया है?' (मोहन चुप रहता है।) फिर इनकार में सिर हिला देता है। 'जी सब नहीं हुआ।' मास्टर — 'तो यह बात है। 'ऐसे-ऐसे' काम न करने का डर है।'

माँ भौंचक्की। मास्टर मोहन की माँ से — 'माता जी, महीना भर मौज की। स्कूल का काम रह गया। आज ख्याल आया। बस डर के मारे पेट में 'ऐसा-ऐसा' होने लगा।' माँ — 'मोहन, तेरे पेट में तो बहुत बड़ी दाढ़ी है। (उसके पिता से) - देखा जी आपने?'

पाठक वृंद! विष्णु प्रभाकर का एक एकांकी पैंतालीस वर्ष पहले पाँचवीं-छठी कक्षा को पढ़ाया मुझे याद रहा था छलनी बेचने वाले बालक का। कथानक और पात्रों के नाम भूल चुके थे। इस आलेख ने उसे फिर साकार स्वरूप में मेरे सामने प्रकट कर दिया

है। यह एकांकी है – 'ईमानदार लड़का।' राज किशोर मज़दूरों के नेता है। किशनगंज लौटते एक लड़का यही 8–10 वर्ष का छलनी बेचता मिल गया। 1947 के दंगों का अनाथ बालक जिसे भीखू अहीर ने उसके भाई सहित शरण दी थी। बालक का नाम बसंत है जबकि भाई का प्रताप। बसंत के यह कहने पर कि उसने आज एक पैसा नहीं कमाया है। राजकिशोर एक छलनी ले लेते हैं एक रुपये का नोट देकर। हालाँकि वह बसंत को दान में दो पैसे देते रहे। बसंत ने भीख लेना नहीं स्वीकारा। राजकिशोर के साढ़े 14 आने लौटाने के लिए बसंत नोट भुनाने बाजार को गया, यह कहते, 'बाबू जी थोड़ा रुको अभी आया।' राज किशोर खड़े इंतजार करते हैं थोड़ी देर। उनके एक परिचित कृष्ण कुमार ने सावधान भी किया आप ठगे गए हैं छोकरे के हाथों। राजकिशोर थोड़ा इंतजार कर घर चले जाते हैं।

दूसरे दृश्य में बसंत के भाई प्रताप के द्वारा राज किशोर को पता चलता है कि उस बालक के नोट भुना कर लौटते वक्त दोनों पैर कुचले गए हैं। होश आने पर बसंत ने आपके बचे पैसे साढ़े चौदह आने लौटाए हैं। राज किशोर बालक बसंत की ईमानदारी को देखकर उसके घर पहुँचते हैं। बसंत की ईमानदारी के दुर्लभ गुण को देखकर अस्पताल पहुँचाने के लिए एम्बुलेंस लाते हैं। डॉक्टर से कहते हैं – 'इसे बचाना ही होगा। यह गरीब है, पर इसमें एक दुर्लभ गुण है, यह ईमानदार है।' कहना न होगा कि आज की शिक्षा में इन्हीं जीवन मूल्यों की परम आवश्यकता है जो बच्चों को ईमानदार बनाए। इसी ईमानदारी की आज राष्ट्र भी माँग करता हैं।

'पुस्तक कीट' एकांकी में विष्णु प्रभाकर ने बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास पर बल दिया है। रटंत विद्या के वह विरुद्ध थे। यह एकांकी 'निर्मला' की इसी प्रवृत्ति को उजागर करने के उद्देश्य से लिखा गया है। उसकी सहेलियाँ उसके बिना सोचे समझे किताबी कीड़ा बने रहने के कारण उसका नाम 'तोती' रख देती हैं। कमजोर होने पर भी सहेलियाँ 'भीमसेनी' पुकारती हैं। मुख्याध्यापिका के पास शिकायत पहुँचती है तो वह उसे दंड भी देती हैं और निदान भी निकालती है कुछ इस तरह – 'तीन महीनों तक निर्मला किताबों की सूरत न देखे। सब किताबें उसके पास जमा करा दे। और इस अरसे में वह किसी पहाड़ी पर जाकर रहे। पहाड़ से लौट कर निर्मला को एक घंटा घूमना दो घंटे खेलना होगा। इसी शर्त पर वह स्कूल में रह सकती है। अब स्कूल दो महीने के लिए बंद हो रहा है। मैं शिमला जा रही हूँ, निर्मला चाहे तो वह मेरे साथ चल सकती है।' निर्मला मुख्याध्यापिका के इस प्रस्ताव को सहर्ष मान लेती है। हाथ जोड़कर कहती है – 'मैं आपके साथ चलूँगी। आप मुझे अवश्य अपने साथ ले चलिए।'

जहाँ तक विष्णु प्रभाकर जी की बाल कहानियों का सम्बंध है, उन्होंने शताधिक बाल कहानियों का प्रणयन किया है। प्रभात प्रकाशन ने 2009 में उनकी संपूर्ण बाल कहानियाँ दो खंडों में प्रकाशित की हैं। 'जब दीदी भूत बनी' (सस्ता साहित्य मंडल), 'स्वराज्य की कहानी' (एन बी टी), 'तपोवन की कहानियाँ' (राजपाल एंड सन्ज), 'एक देश एक हृदय' (प्रकाशन विभाग), 'मोतियों की खेती' (राजपाल एंड सन्ज), घमंड का फल (1973) (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस), 'तपोवन की कहानियाँ', 'पाप का घड़ा', 'मोतियों की खेती', 'हीरे की पहचान' (1976) (ज्ञान भारती प्रकाशन), 'गुड़िया खो गई' (1977), (अतुल प्रकाशन), 'पहाड़ चढ़े गजनंदन लाल' (1981) (प्रकाशन विभाग) तथा 'सुनो कहानी', साहित्य अकादेमी (1991), से प्रकाशित बाल कथा संकलन है। यहाँ कुछ बाल कहानियों की भी चर्चा करना प्रासंगिक समझता हूँ जिनसे उनकी बाल कहानियों की पृष्ठभूमि, कथ्य और सुगठित शिल्प का पता चलता है। इन बाल कहानियों में देशभक्ति, ईमानदारी, टूटती न्यायव्यवस्था, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी जैसी सामाजिक एवं राजनैतिक बुराईयों पर विष्णु प्रभाकर ने तीखे प्रहार किए हैं। इतना बाल साहित्य लिखने पर भी खेद है कि इतिहासकारों ने उनके अप्रतिम योगदान को दर्शाने में कंजूसी की है। यही नहीं हिंदी की मशहूर बाल कहानियों के भारतीय संस्करणों में विष्णु प्रभाकर की ये कहानियाँ हैं ही नहीं। उन आलोचकों और इतिहासकारों के ऐसा करने से विष्णु प्रभाकर को कोई फर्क नहीं पड़ा। पाठकों के साथ उनका सीधा संवाद बराबर बना रहा है। पाठकों में उनकी लोकप्रियता को देखकर उन्हें कई धमकियों का भी सामना करना पड़ा। वह स्वयं एक जगह लिखते हैं – 'धमकियाँ तो मुझे बहुत मिलती रहीं और ऐसे पत्र भी मिलते रहे कि आपको कहानी लिखनी नहीं आती तो क्यों लिखते हैं और लिखते ही हैं तो मेरे कहानी संग्रह को पढ़कर लिखिए। कोई अंत नहीं इन प्रतिक्रियाओं का।

मैं उनकी प्रसिद्ध कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' को हिंदी की श्रेष्ठ बाल कहानी के अंतर्गत रखना पसंद करता हूँ। दो बहन-भाई नीना और कमल उम्र यही 10 और 8 वर्ष। माँ गुजर

चुकी है, पिता को 20 रुपये की रिश्वत लेने के केस में 9 महीने की जेल हुई। वह चाहता था बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना। मौसी-मौसा अपने घर ले आते हैं। प्यार के कारण या लोक लाज से। पर दो महीने में उनका व्यवहार बच्चों के प्रति बदल जाता है। नीना अपनी उम्र से पहले सयानी हो जाती है। गिलास टूट जाने पर कमल को मौसी-मौसा के गुस्से का पात्र बनना पड़ा। रात वह बहन को बताता है और पूछता हैं - पिता कब आएँगे। बहन झूठा दिलासा देती है कल। सुबह घर की साफ-सफाई चमक देखकर मौसी दंग रह जाती है। कमल ने बताया - रात दीदी कहती थी पिता आने वाले हैं। मौसी कहती है अभी तो दो महीने हुए, उसे 7 महीने आने को बाकी हैं।

कहानी के दूसरे भाग में छोटे न्यायमूर्ति की लड़की मनमोहिनी की उपनिदेशक पद पर नियुक्ति होने पर पार्टी चल रही है, जो उन्हीं के घर में दिखाई गई है। इसमें आयोग के सचिव और विभाग के निदेशक हैं। बेयरा दूसरी बार पार्टी वाले कमरे में आकर एक चिट्ठी थमा जाता है जिसमें न्यायमूर्ति के बड़े बेटे की इन्कम टैक्स ऑफिसर के रूप में चयन की खबर है। छोटे न्यायमूर्ति अपनी पत्नी से कहते हैं मुझे पहले ही पता था शर्मा मेरी बात नहीं टाल सकता। सचिव और निदेशक भी टिप्पणी करते हैं- आप की बात सब जानते हैं।

इतने में बेयरा सूचना देता है, साहब दो छोटे-छोटे बच्चे आपसे मिलना चाहते हैं। छोटे न्यायमूर्ति उन्हें अंदर बुला लेते हैं जहाँ पार्टी चली है। वे बच्चों से आने का कारण पूछते हैं। बच्चे पूछने पर पहले कतराते हैं। फिर हिम्मत करके नीना बोल उठी - 'आपने हमारे पिता को जेल भेजा है। आप उन्हें छोड़ दें।' कमल भी बोला - 'हमारे पास पचास रुपये हैं। आपने 3000/- रिश्वत लेकर एक डाकू को छोड़ा है।' नीना बोली - 'लेकिन हमारे पिता जी डाकू नहीं है। महँगाई बढ़ गई थी। उन्होंने बस बीस रुपये की रिश्वत ली थी।'

कमल ने कहा - 'रुपये थोड़े हों तो .... नीना बोली - 'तो मैं एक-दो दिन आपके पास रह सकती हूँ।' कमल ने कहा - 'मेरी जीजी खूबसूरत है और आप खूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं।' पुनश्च - रटे हुए पार्ट की तरह एक के बाद एक जब वे दोनों इस प्रकार बोल रहे थे तो न जाने हमारे कथाकार को क्या हुआ, वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसे ऐसे लगा कि धरती सूर्य की चुम्बक शक्ति से अलग हो रही है। लेकिन ऐसा होता तो क्या हम यह 'पुनश्च' लिखने को बाकी रहते। धरती अब भी घूम रही है।

कहना न होगा आज की न्याय व्यवस्था, भाई-भतीजावाद, रिश्वत और भ्रष्टाचार के मुखौटों को खोलती यह कहानी आज भी नई है। अनेक सारे प्रश्न पाठकों के समक्ष आज भी अनुत्तरित हैं। विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों में जिज्ञासा, मनोरंजन और हास्य व्यंग्य मिले-जुले भाव सर्वत्र व्याप्त हैं। प्रभाकर जी के आत्मज अतुल प्रभाकर बताते हैं कि वह अपनी कहानियों के चरित्र और कथानक अपने आसपास के पड़ौसियों, मित्रजनों और रिश्तेदारों के यहाँ से उठा लेते हैं। 'पहाड़ चढ़े गजनंदन की कहानियाँ इलाहाबाद के एक दोस्त के हृष्ट-पुष्ट मोटे बच्चे को लेकर बुनी गई हैं जो हर वक्त खाता-पीता रहता था, मस्ती करता था। 'गजनंदन ने इंटरव्यू दिया' एक मनोरंजनात्मक हास्य कहानी है। इस कहानी में माता-पिता अपने बालक को स्कूल में प्रवेश दिलाने के लिए ले जाते हैं। इंटरव्यू में पूछे जाने वाले कई प्रश्नों के उत्तर रटाए गए। मुख्याध्यापक के सामने सब उत्तर वह भूल गया। मुख्याध्यापक उसे चॉकलेट देते हैं तो वह अपने मन से प्रश्नों का उत्तर देता है। मुख्याध्यापक उसके दिए मौलिक उत्तरों से खुश हो गए और उसे दाखिला मिल गया। यह बाल कहानी भी बालक के सर्वांगीण विकास के भाव को ही पुष्ट करती है।

रमा शंकर द्वारा संपादित 'आधुनिक बाल कहानियों में विष्णु प्रभाकर की एक अन्य बाल कहानी 'सुंदर लड़की' का जिक्र भी करना चाहूँगा। इस कहानी में प्रभाकर जी ने सुंदरता की बड़ी सरल व्याख्या की है। कथानक समुद्र के किनारे एक गाँव का है। जहाँ कलाकार रहता है। कलाकार का बेटा है हर्ष। उम्र अभी ग्यारह की भी नहीं। समुद्र की लहरों में ऐसे घुस जाता, जैसे तालाब में बत्तख। एक बार कलाकार के रिश्तेदार का एक दोस्त वहाँ छुट्टियाँ मनाने आया। उसके साथ उसकी बेटी मंजरी भी थी। यही नौ दस वर्ष की थी। बहुत सुंदर, बिल्कुल गुड़िया जैसी। हर्ष से हिल-मिल गई। उसे लहरों से खेलते देखती हुई पूछती - डर नहीं लगता? हर्ष बताता है - डर क्यों लगेगा, लहरें तो हमारे साथ खेलने आती हैं। चाहती मंजरी भी थी लहरों के साथ खेलना पर डरती। जब दूसरी लड़कियों विशेष कर कनक को हर्ष के हाथ में हाथ डालकर तूफानी लहरों पर दूर निकलता

देखती उसका भी मन मचलता। उसके पिता नहीं थे। पिता नाव लेकर क्या गए कि लौटे ही नहीं। माँ के साथ कनक छोटे-छोटे शंखों की मालाएँ बना कर बेचती। मंजरी को वह काली लड़की जरा न भाती। उसकी दोस्ती उसे कतई पसंद नहीं थी।

एक दिन हर्ष ने देखा पिता सुंदर खिलौना बना रहे हैं। वह पक्षी था। हर्ष की जिज्ञासा शांत करते उसने बताया - दो दिन बाद मंजरी का जन्म दिन है। तुम उसे भेंट में देना। एक दिन फिर हर्ष और मंजरी बातें करते-करते न जाने कब उठे और समुद्र में चले गए। वह मंजरी को छोटी चट्टान तक ले गया। मंजरी निडर हो चली थी। तभी हर्ष को बड़ी चट्टान पर कनक दिख गई। उसने हर्ष को अपने पास बुलाया। मंजरी के साथ वहाँ तक पहुँचने से इंकार करता है। उसे कहता है - कनक! तुम्हीं इधर आ जाओ। तब मंजरी को ईर्ष्या भी हुई कि वह कनक तक क्यों नहीं जा सकती? वह क्या उससे कमजोर है। इतने में सुंदर शंख देख कर मंजरी उस ओर बढ़ी। एक लहर ने उसके पैर उखाड़ दिए। वह बड़ी चट्टान की दिशा में लुढ़क गई। मुँह में खारा पानी भर गया। यह सब आनन-फानन में हुआ। हर्ष बचाने दौड़ा पर एक लहर ने उसे मंजरी से और भी दूर धकेल दिया। उधर कनक ने देखा मंजरी बड़ी चट्टान से टकरा जाएगी। उसके जीवन को खतरा है। वह उसी क्षण लहर और मंजरी के बीच आ कूदी और उसे हाथों से थाम लिया। अब तीनों छोटी चट्टान पर थे। मंजरी के पेट में चले गए खारे पानी को लिटा कर निकाल दिया गया। उसे जरा भी चोट नहीं लगी। पर वह बार-बार कनक को देख रही थी। जन्म दिन की पार्टी पर बिल्कुल ठीक थी। सब बच्चों को दावत पर बुलाया गया। सब कुछ न कुछ लेकर आए। अंत में कलाकार की बारी आई। उसने कहा मैंने सबसे सुंदर लड़की के लिए सबसे सुंदर खिलौना बनाया है। वह लड़की कोई और नहीं - मंजरी है। हर्ष ने तभी वह खिलौना मंजरी के हाथ में थमा दिया। मंजरी बार-बार उस खिलौने को देखती और खुश होती।

तभी क्या हुआ, मंजरी अपनी जगह से उठी और उस सुंदर खिलौने को कनक को सौंपते कहती है - 'यह पक्षी तुम्हारा है। सबसे सुंदर लड़की तुम्हीं हो।' विष्णु प्रभाकर ने उपर्युक्त बाल कथा में तन की सुंदरता से मन की सुंदरता को बड़ा करार देते हुए सुंदर कर्मों से सुंदर बालक बनने की सहज प्रेरणा दी है। बच्चों का प्रेम निश्चल होता है और निष्कपट भी। उनमें बड़ी ताकत होती है जिसे सही दिशा देने पर उपयोग में लाया जा सकता है।

विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियों की खूबसूरती यह भी है कि इन्हें पढ़कर आनंद आता है। पाठक कहानियों के कथ्य के साथ-साथ सफर करते प्रतीत होते हैं। कहानियाँ ऊबने नहीं देतीं अपितु जिज्ञासा को बराबर बनाए रखती हैं। इन कहानियों में अलग किस्म की किस्सागोई शैली है जिसे विष्णु प्रभाकर ने अपने मापदंडों से सजाया-सँवारा, गूँथा-बुना है। आशा है बालकों द्वारा बचपन में पढ़ी ये बाल कथाएँ पाठकों को वृद्धावस्था तक भी उनके बचपन को मरने नहीं देंगी।

विष्णु प्रभाकर ने भारतीय महापुरुषों को लेकर उनकी सुंदर बाल जीवनियाँ लिख कर भी बाल साहित्य में जीवनी विधा की शुरुआत की है। ये जीवनियाँ राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी, शरत चंद्र, सरदार पटेल, रविन्द्र नाथ ठाकुर, शंकराचार्य और बंकिम चंद्र की विशेष चर्चा में रही हैं। ये जीवनियाँ उच्च जीवनादर्शों को लेकर बच्चों की सरल शैली में लिखी गई हैं। बच्चों के भावी जीवन में ये उन्हें प्रेरणादायी रहने वाली हैं।

वर्तमान में विष्णु प्रभाकर के समग्र बालसाहित्य के संकलन, संपादन, प्रकाशन एवं उसके सम्यक मूल्यांकन की परम आवश्यकता है। दुख तब होता है जब बाल साहित्य के शिखर पुरुष कहे जाने वाले भी भारतीय कहानियों, हिंदी कहानियों, नाटकों-एकांकियों का संपादन-प्रकाशन करते समय, बाल साहित्य के इतिहास के आलेख, शोधपत्र अथवा शोध प्रबंध लिखते समय बाल साहित्यकार विष्णु प्रभाकर को नजरअंदाज कर जाते हैं। उम्मीद की जा सकती है कि यह पुनीत कार्य उनके आत्मज अतुल प्रभाकर और विष्णु प्रभाकर के बाल साहित्य के प्रेमी पाठक, अध्येता अवश्य पूरा करेंगे। साहित्य के राष्ट्रीय संस्थाओं को भी उसके उपलब्ध-अनुपलब्ध बाल साहित्य को पुनर्मुद्रित, संपादित एवं प्रकाशित कर सर्वजन सुलभ कराने के पग उठाने चाहिये। कहना न होगा यही बाल-साहित्य राष्ट्र की समग्र उन्नति का मूलाधार है। अनेकानेक विसंगतियों के बावजूद विष्णु प्रभाकर की मनुष्य में आस्था रही है। संपूर्ण मनुष्य में खंडों में बँटे मनुष्य में नहीं। मनुष्यता के भाव का यही पहला पाठ उनके बाल साहित्य में प्रदीप्त है। ❍❍❍

पंजाब की संत-परंपरा और रामचरित

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

"पंजाब संत काव्य का केंद्र गुरुनानक देव के उदार तथा सर्वधर्म समभाव की चेतना के कारण बना, यह ऐतिहासिक सत्य है जिसे संत साहित्य के अध्येताओं ने माना भी है। ऋषियों, मुनियों, गुरुओं, पीरों, फकीरों और सूफी संतों की धरती पंजाब में मध्यकाल से ही निरंतर न्यूनाधिक मात्रा में हिंदी साहित्य रचा जाता रहा है। 'निर्गुण' को साधना का केंद्र बनाने के साथ-साथ पंजाब के संत कवियों ने 'राम' के आदर्श चरित्र को भी अत्यंत मनोयोगपूर्वक, श्रद्धा के साथ इसलिए अपनाया है कि राम के महिमामय चरित्र में 'नैतिक मूल्यों एवं स्वस्थ परंपराओं' का समावेश सहज ही हो गया है।"

विद्वानों के अनुसार तेरहवीं शती के बाद से ही भारतीय उपमहाद्वीप में 'संतमत' का उदय कुछ उदारवादी गुरुओं के समूह के रूप में हुआ जिसे निरंतर स्वीकृति और प्रसिद्धि मिलती गई। वस्तुत: 'संतमत' से जुड़े ब्रह्मज्ञानी गुरु अंतर्मुखी होने के साथ ही 'प्रेमभक्ति' के दैवीय सिद्धांत को लेकर साधना-मार्ग पर चले, लेकिन सामाजिक रूप से उनका चिंतन 'समता मूलक समाज' के निर्माण और उत्थान को प्राथमिकता देता है। 'संतमत' में जाति-प्रथा का निषेध सर्वाधिक मूल्यवान विशेषता रही और इसी क्रम में 'हिंदू-मुस्लिम' के अंतर को भी 'संतमत' ने स्वीकार नहीं किया।

भारतीय संत-परंपरा को प्रधानत: दो वर्गों में रखा गया है- 1. पंजाब, जिसमें तत्कालीन राजस्थान और उत्तर भारत भी सम्मिलित था, का पूरा क्षेत्र; जिसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए बोलचाल की हिंदी को आधार बनाया था और 2. दक्षिणी क्षेत्र, जिसकी आधार भाषा प्राचीन मराठी रही और जिसका प्रतिनिधित्व संत कवि नामदेव के साथ अन्य दक्षिणी संत करते आए हैं।

'संतमत' का अर्थ है 'संतों का मार्ग' या 'संतों का चिंतन' जिसे कालांतर में 'सत्य का मार्ग' भी कहा गया। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'संत' शब्द मूलत: 'सद्' धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ है 'सत्य को जानने वाला' अथवा 'जिसने अंतिम सत्य को जान लिया हो।' यों तो 'संत' शब्द का अर्थ आमतौर से एक सज्जन और अच्छे व्यक्ति से लिया जाता है, लेकिन अब इसे 'मध्यकालीन भारत के संत कवियों' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। संत कवि कहते ही 'भक्तिकाल' के संत कवि कबीरदास, रैदास, दादू, मलूकदास आदि का स्मरण हो जाता है।

समीक्षकों ने माना है कि जगद्गुरू रामानंदाचार्य के कवि शिष्यों संत कबीर, संत रैदास और पीपा आदि ने 'निर्गुण' रूप में ब्रह्म की साधना में शैव, वैष्णव, शातू आदि मत-मतांतरों के

सम्पर्क: 74/3, न्यू नेहरूनगर, रूड़की-247667, मो: 09412070351, ई-मेल: ynsarun@hotmail.com

चलते भिन्नता और वैमनस्य आ गया था। कबीर ने इसीलिए घोषणा कि-

''दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम को मरम न आना।।''

अर्थात्-'तीनों लोकों ने दशरथ के सुत राम का तो बखान खूब किया, लेकिन 'राम' के नाम का 'मर्म' अथवा महत्ता किसी ने नहीं जानी।

वस्तुत: जगदगुरू रामानंदाचार्य ने युगानुरूप जो चिंतन दिया, उसका परम लक्ष्य था विखंडित भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बाँधना और जाति-पाँति के विषय घेरों से निकालकर समाजमूलक समाज की स्थापना करना। 'निर्गुण राम' को चिंतन और भक्ति-साधना का आधार बनाकर इन संत कवियों ने समाज के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया है।

समीक्षकों ने स्वीकार किया है कि मुगल आक्रमणों से सर्वाधिक संत्रस्त पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश से ही उत्तर भारत की 'संत काव्य-परंपरा' का आरंभ हुआ है। संत कवि किसी विशेष 'साधना-पद्धति' या 'सगुण ब्रह्म' की साधना में उलझने के बजाय सहज रूप से 'नाम-जाप' के माध्यम से समतामूलक समाज का निर्माण करने में जुट गए थे। संत तुलसीदास ने तो स्पष्टत: कहा-

''जाकी रही भावना जैसी!
प्रभु मूरत तिन्ह देखी तैसी!!

संत तुलसीदास का यह उदारवादी और समन्वयवादी चिंतन ही वस्तुत: संत कवियों के चिंतन का आधार बना और वे समतामूलक समाज की अवधारणा लेकर चल सके।

पंजाब संत काव्य का केंद्र गुरुनानक देव के उदार तथा सर्वधर्म समभाव की चेतना के कारण बना, यह ऐतिहासिक सत्य है, जिसे संत साहित्य के अध्येताओं ने माना भी है। ऋषियों, मुनियों, गुरुओं, पीरों, फकीरों और सूफी संतों की धरती पंजाब में मध्यकाल से ही निरंतर न्यूनाधिक मात्रा में हिंदी साहित्य रचा जाता रहा है। 'निर्गुण' को साधना का केंद्र बनाने के साथ-साथ पंजाब के संत कवियों ने 'राम' के आदर्श चरित्र को भी अत्यंत मनोयोगपूर्वक, श्रद्धा के साथ इसलिए अपनाया है कि राम के महिमामय चरित्र में 'नैतिक मूल्यों एवं स्वस्थ परंपराओं' का समावेश सहज ही हो गया है। शबरी और निषाद के प्रति श्रीराम के सहज व्यवहार ने संत कवियों को आकृष्ट किया है और पंजाब के कवियों में 'रामचरित' के चित्रण का मोह बढ़ने लगा था। यह प्रामाणिक सत्य है कि भारत के अन्य प्रदेशों के साथ-साथ पंजाब प्रांत में भी रामभक्ति साहित्य हिंदी और ब्रजभाषा के साथ ही गुरुमुखी में मिलने लगा था।

पंजाब के विद्वान समीक्षक डॉ. मनमोहन सहगल ने लिखा है-''पंजाब में 15वीं-16वीं शताब्दी से ही राम-काव्य की चर्चा होने लगी थी, जो धीरे-धीरे प्रचारित होती हुई बीसवीं सदी तक अनेक राम काव्यों में ढलती चली गई।''

समीक्षकों ने स्वीकार किया है कि पंजाब में 'रामकाव्य' की स्पष्ट परंपरा का आरंभ सन् 1604 ईसवी में महान सिख गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा संपादित ''आदिग्रंथ'' से हुआ है।

उत्तर भारतीय संत काव्य के चिंतन का मूल आधार 'निर्गुण-साधना' के साथ-साथ एकेश्वरवाद की अवधारणा रही है। गुरुनानक का मत है-

''अव्वल अल्लाह नूर उपाया,
कुछरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपज्या,
कौन भले को मंदे।।''

इसी एकेश्वरवाद को लेकर संत कबीरदास भी जोर देकर कहते हैं-

''दुई जगदीस कहाँ ते आए,
कहू कौने भरमाया''

लेकिन, यह भी प्रामाणिक सत्य है कि संत कवियों ने 'राम' के मर्यादा पुरुषोत्तम के आदर्श चरित्र को बढ़-चढ़ कर अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया है। इसका प्रमाण ''गुरू ग्रंथसाहब'' से मिल जाता है, जहाँ सिद्धांत रूप से 'निर्गुण ब्रह्म' की महत्ता स्वीकार करने और अवतारवाद का विरोध करने के बाद भी 'राम' और 'अवतार' को स्वीकृति मिली है।

'गुरूग्रंथ साहब' में ''हुकमि उपाई दस अवतारा'' कहकर हिंदू धर्म के दस अवतारों की सत्ता को स्वीकार किया गया है, तो वैयक्तिक ईश्वर अवधारणा के नाते ''राम और रघुराई'' जैसे शब्दों का प्रयोग भी 'गुरूग्रंथसाहब' में हुआ है। यही नहीं, 'गुरूवाणी' में तो 'राम-रावण-युद्ध' जैसे अनेक मिथकीय प्रसंगों का प्रयोग मिलता है, यथा-''भूलो रावण मुगधु अचेति। लूटी लंका सीस समेति।'' राम को 'गुरूमुख' रूप में स्वयं गुरू नानकदेवजी ने चित्रित किया है-

''गुरू मुखि बाँधियों सेतु बिघातै।
लंका लूटी संता पै।''

मेरा मानना तो यह है कि संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म को 'राम' कह अपनी भक्ति-साधना का आधार माना है, तभी तो कबीरदास कहते हैं-

''राम कहत चलो, राम कहत चलो,
राम कहत चलो भाई रे।''

संत कवियों के लिए वस्तुतः 'राम' के चरित्र का सामाजिक आदर्श और मर्यादित स्वरूप ही अधिक ग्राह्य रहा है।

पंजाब का राम काव्य

सिक्ख गुरुओं की पुण्यभूमि पंजाब संत कवियों की पावन साधना-स्थली रही है। पंजाब में 'राम-काव्य' की अत्यंत समृद्ध परंपरा हमें पंद्रहवीं शताब्दी से निरंतर देखने को मिली है, जिसमें पंजाब के जीवन-मूल्यों के साथ ही श्रीराम के उदात्त चरित्र का भावपूर्ण चित्रण मिलता है। यहाँ मैं संक्षेप में, पंजाब के कतिपय 'राम काव्यों' का परिचय देना चाहूँगा, ताकि यह सिद्ध हो सके कि भारतवर्ष में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की चरित्र-गाथा सर्वाधिक लोकप्रिय रही है।

कवि हरियाजी प्रणीत 'आदि रामायाण: सिक्खों के प्रसिद्ध गुरु श्री अर्जुनदव जी के बड़े भाई श्री पृथ्वीचंद के घर संवत् 1637, माघ सुदी पंचमी, 'वसंत पंचमी' को जन्में कवि हरिया जी द्वारा रचित 'आदि रामायाण' को पंजाब प्रांत की रामकाव्य-परंपरा का प्रथम 'रामकाव्य' माना गया है। मूल नाम सोढ़ी मेहरबान 'हरिया' जी के इस काव्यग्रंथ की केवल एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है, जिसका संपादन प्रोफेसर प्रीतम सिंह द्वारा सन् 1762 में किया गया था।

इस 'आदि रामायण' में राम की पौराणिक कथा के साथ ही, नाथ परंपरा में चर्चित 'भर्तृहरि और गोपीचंद' की कथा भी गूंथी गई है। संत परंपरा और अष्ट छाप में प्रभावित गीत और छंद भी कवि हरिया जी की 'आदि रामायण' में हैं।

कविवर हरिया जी की 'आदि रामायण' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 'नाम सिमरण' पर सर्वाधिक जोर दिया गया है। कवि ने राम को 'रामरायस', 'कौशल्यानंदन', 'सियापति' और 'अवधविलासी' आदि नामों से पुकारा है। इस रामकथा काव्य में राम के चरित्र का वर्णन करने के साथ-साथ 'गज-ग्राह-कथा', 'अजामिल कथा', 'ध्रुव, अहल्या और प्रहलाद' आदि चर्चित कथा-प्रसंगों को भी कवि ने मनोयोगपूर्वक चित्रित किया है।

कविवर हरिया जी के इस रामकाव्य में निर्गुण और सगुण के साथ ही राम और कृष्ण के स्वरूप में भी समन्वय स्थापित किया गया है, जो तत्कालीन संत काव्य की मूल चेतना का दिग्दर्शन ही है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह काव्य अत्यंत समृद्ध और महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। कवि ने संस्कृत, हिंदी विशेषतः ब्रजभाषा और फारसी के शब्दों का तद्भवकरण किया है। इस काव्य में प्रचलित दोहा, सोरठा, चौपाई जैसे छंदों के साथ-साथ वर्णिक छंदों का भी मनोहारी प्रयोग कवि हरिया जी ने किया है।

कवि गुलाब सिंह रचित 'रसामृत': पंजाब के रामकाव्य की परंपरा में कवि गुलाब सिंह द्वारा रचित काव्य ''रसामृत'' को 'अध्यात्म रामायण' भी कहा गया है। जिला लाहौर के ग्राम सेखवां में चब्बे जाति के किसान पिता के घर संवत् 1789 में जन्में कवि गुलाब सिंह अपने दीक्षा गुरु महात्मा मान सिंह का स्मरण ग्रंथ के आरंभ और अंत में कृतज्ञ भाव से करते हैं। कवि संस्कृत साहित्य और भाषा के ज्ञाता रहे हैं और उन्होंने ब्रजभाषा में संस्कृत काव्यों के अनुवाद भी किए हैं।

कवि गुलाब सिंह रचित ''भाव रसामृत'' रामकथा काव्य है, जिसमें लगभग सवा सौ छंद हैं और ग्रंथ का विषय मूलतः ईश्वर भक्ति, ईश-आराधना और भक्ति-निरूपण है। भाषा मधुर है-

''कंड अचेज्ञाहि दुख मिटे, पावे सुख उद्धार।
भाव रसामृत ग्रंथ यह भावौं ही अराध्य।।''

कवि गुलाब सिंह प्रणीत रामकथा काव्य ''भाव रसामृत'' को 'अध्यात्म रामायण' भी कहा गया है। इस ग्रंथ में कवि के इष्टदेव हैं दशरथनंदन श्रीराम, जिनकी वंदना करते हुए 'मंगलाचरण' में उन्हें 'औध विलासी, काननवासी, जानकीनाथ और रावणारि' कहकर भक्तिपूर्वक स्मरण किया है। कवि ने श्री रामचंद्र को 'सगुण रूप' में ही प्रस्तुत किया है और भक्तिकालीन 'राम भक्ति मार्गी' कवियों की शैली में 'राम' को ब्रह्म माना है। सबसे महत्वपूर्ण है इस ग्रंथ की रीतिकालीन भाषा-शैली, जो कवि के बहुपठ होने का प्रमाण कहा जा सकता है।

कवि हृदयराम भल्ला प्रणीत 'हनुमन्नाटक': पंजाब की रामकाव्य-परंपरा में कविवर हृदयराम भल्ला का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। मान्यता यह है कि गुरु अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी श्रीमती गंगादेवी के भाई श्रीकृष्णदास के सुपुत्र कवि हृदयराम का रचनाकाल संवत् 1680 रहा है।

संस्कृत साहित्य की चर्चित कृति 'हनुमन्नाटक' को आधार बनाकर रचा गया कवि हृदयराम का ग्रंथ अभिव्यक्ति-कौशल और नवीन उद्भावनाओं से परिपूर्ण विलक्षण कृति है। कुल चौदह अंकों की इस कृति में 'सीता के सवयंवर' से लेकर 'रावण के वध' तक की रामकथा को संजोकर श्रद्धा-भक्ति और नीति के पदों की रचना करके सवयं को अमर कर लिया है।

कवि हृदयराम भल्ला प्रणीत 'हनुमन्नाटक' के विषय में समीक्षक हरभजन सिंह का मत है-'' हृदयराम कृत हनुमान नाटक प्रथम हिंदी प्रबंध है। इससे यह अनुमान लागना असंगत न होगा कि 17वीं शताब्दी के प्रथम चारण में सगुण भक्ति का प्रचार पंजाब में शुरू हो गया था। यह बड़े ऐतिहासिक महत्व का ग्रंथ है। इसकी विषयवस्तु 'रामकथा', दृष्टिकोण 'सगुण भक्ति' काव्यरूप 'प्रबंध' और छंद 'कवित्त और सवैया' हैं। इस ग्रंथ को 'दशम ग्रंथ' के समान महत्ता दी गई है।

कवि कपूर चंदत्रिखा प्रणीत 'रामायण': पंजाबी रामकाव्य-परंपरा में कविवर कपूर चंदत्रिखा द्वारा रचित 'रामायण' का रचना काल सन् 1648 ईसवी माना गया है। दुर्भाग्य यह है कि कवि के विषय में अधिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। पंजाबी साहित्य के समीक्षक डॉ. मनमोहन सहगल ने लिखा है-''सत्रहवीं शती के प्रथम दशक में विद्यमान कवि त्रिखा लाहौर के थे और उन्होंने अपनी लघु रचना रामायण का प्रणयन किया।''

कविवर कपूर चंदत्रिखा प्रणीत 'रामायण' कुल 142 छंदों की रचना है, जिसमें कवि ने राम के जन्म से लेकर लंका-युद्ध के पश्चात् अयोध्या लौटने की कथा को ही संक्षेप में कहा है। कवि कपूर चंदत्रिखा की 'रामायण' का मूल आधार वस्तुतः उनकी अपार श्रद्धा और अटूट भक्ति है। ग्रंथ में अरबी, फारसी और पंजाबी मुहावरों से सज्जित सरल भाषा में कवि ने दोहा, कवित्त और छप्पय छंदों का प्रयोग अत्यंत कुशलता से किया है। 'लक्ष्मण-मूर्च्छा' जैसे प्रसंगों की मार्मिक अभिव्यक्ति से कवि की वर्णन क्षमता स्पष्ट हो जाती है। कवि का उद्देश्य देखिए-

''आदु जुगादु है जपै, ताही सम कोई।
राम चरित अद्भुत कथा सुने पुनपूल होई।।''

कवि साहेब दास प्रणीत 'लव-कुश कथा': पंजाब प्रांत की रामकाव्य-परंपरा में संवत् 1775 में रची गई कवि साहेब दास की रचना ''लव-कुशा कथा'' वस्तुतः रामकथा से संबंधित अत्यंत प्रौढ़ और महत्वपूर्ण रचना मानी गई है। इस ग्रंथ में कविवर साहेब दास ने राम-सीता के सुपुत्रों लव और कुश की कथा को छह खंडों में वर्णित करके मूलतः अपने आराध्य भगवान राम का ही यश वर्णन किया है।

कवि की 'लव-कुश कथा' का शुभारंभ सीता की अग्निपरीक्षा के प्रसंग से होता है और फिर सीता-त्याग; वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में लव-कुश का जन्म; राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का आयोजन; लव-कुश द्वारा यज्ञ के घोड़े का पकड़ा जाना; लव-कुश से युद्ध में राम सहित सभी भाइयों का मारा जाना और अमृत द्वारा पुनः जीवित होना; सीता का पुत्रों के साथ अयोध्या आना तथा राम के अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होना जैसे प्रसंगों का मनोहारी चित्रण कवि ने किया है।

पंजाबी रामकाव्य-परंपरा के इस अनूठे ग्रंथ में कवि ने युद्धों का अत्यंत सजीव और कई प्रसंगों का बेहद मार्मिक चित्रण किया है। इस कृति की भाषा अत्यंत प्रौढ़ ब्रजभाषा है, जिसमें मुहावरों तथा लोकोक्तियों के साथ ही उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह, यमक, रूपक और अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग देखते ही बनता है।

कवि संतोख सिंह रचित 'वाल्मीकि रामायण': पंजाब की रामकाव्य-परंपरा में कैथल राज्य के राजकवि संतोख सिंह ने संस्कृत की वाल्मीकि रामायण का अत्यंत परिश्रमपूर्वक दोहे और चौपाइयों में 'भाषानुवाद' किया है। कवि संतोख सिंह के इस रामकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कवि में सिख गुरुओं का स्तुति गान करने के पश्चात आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के प्रति भी श्रद्धा-सुमन अर्पित किए हैं।

इस काव्य का मूल रस 'करुण' है और कवि ने राम-वनवास, सीता-वियोग, लक्ष्मण-मूर्च्छा जैसे प्रसंगों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। ग्रंथ की भाषा पंजाबी, उर्दू और फारसी मिश्रित ब्रजभाषा है, जिसमें रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, संदेह और यमक जैसे अलंकारों का प्रयोग कविवर संतोख सिंह ने अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है।

गुरु गोविंद सिंह प्रणीत 'रामावतार' काव्य: पंजाब की रामकाव्य परंपरा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और चर्चित ग्रंथ है 'रामावतार', जो दशम गुरु गोविंद सिंह की गुरुवाणी 'दशम ग्रंथ' में संग्रहीत है। 'रामावतार' सर्वथा मौलिक काव्य है, जिसमें गुरु गोविंद सिंह जी ने चौबीस अवतारों का भावपूर्ण वर्णन किया है। कुल 864 छंदों के 'रामावतार' काव्य में राम के जन्म से पूर्व के रघुकुल की संक्षिप्त कथा के पश्चात् अयोध्या के राजा दशरथ के विवाह, कैकेई द्वारा वर माँगने और श्रवण कुमार के वध की घटनाओं को पूर्व पीठिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के अंत में सीता-वनवास, लव-कुश कथा और अयोध्या में राम, लक्ष्मण आदि के प्रवेश तथा स्वर्गारोहण की कथा कही गई है। 'रामावतार' के नायक राम हैं और यह कव्य 'राम' के जन्म से स्वर्गारोहण तक की घटनाओं को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करता है। वस्तुत: यह 'लीला-नाटक' कहा जा सकता है, जिसमें संवादों की भरमार है।

गुरु गोविंद सिंह प्रणीत 'रामावतार' काव्य मूलत: वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' पर आधारित है, किंतु इसकी संक्षिप्तता के कारण यह लोकप्रिय और चर्चित ग्रंथ बन गया है। समीक्षक डॉ. जय भगवान गोयल ने 'रामावतार' के विषय में कहा है-''यह ग्रंथ न तो वाल्मीकि रामायण अथवा उत्तर रामचरित की भाँति करुणा प्रधान है, न ही आध्यात्मिक रामायण की भाँति इसमें दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है।'' रामचन्द्रिका की भाँति यह छंदों एवं अलंकारों के चौखटे में जड़ी हुई चमत्कार पूर्ण रचना भी नहीं और न ही इसमें साकेत की भाँति बौद्धिक एवं सामाजिक तथ्यों का प्रतिपादन है। इस रचना के नायक 'भूए' भार उतारने के लिए असुरों का संहार और संतों का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए हैं, जिसके लिए उन्हें वीर रूप धारण करना पड़ा है और वीर चरित्र का ही इस रचना में विशद् आख्यान है। यह विशुद्ध वीर काव्य है।''

पंजाब में रामकाव्य-परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है, यह तो एक प्रामाणिक तथ्य है; साथ ही, यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि 'निर्गुणवादी चिंतन' के बीच 'सगुण' रूप में रामचरित का चित्रण पंजाब के कवियों में पूर्ण आस्था और श्रद्धाभाव से किया है।

अंत में, कुछ अन्य कवियों का उल्लेख करते हुए मैं एक विशेष तथ्य की ओर इंगित करना चाहूँगा कि पंजाब में अनेक ऐसे धर्मप्राण नरेश हुए हैं, जिनके दरबारों में आश्रय प्राप्त कवियों ने रामकाव्य रचा है। कपूरथला नरेश निहाल सिंह के दरबारी कवि हरिनाम ने रीतिकालीन कवि केशवदास प्रणीत ''रामचन्द्रिका'' पर गद्य में विशेष व्याख्या ग्रंथ लिखा है। कविवर वसावा सिंह ने सन् 1900 के लगभग सात कांडों में ''रामचरित रामायण'' का प्रणयन किया है। पटियाला नरेश कर्मसिंह के दरबारी कवि निहाल ने ''राम चंद्रोदय'' शीर्षक से काव्य रचा, जो वाल्मीकि से प्रभावित सुंदर काव्य रचना है।

महाकवि तुलसीदास प्रणीत 'रामचरित मानस' की भाँति सात कांडों में रची गई कवि रामदास की ''सार रामायण'' को पंजाब की रामकाव्य-परंपरा की महत्त्वपूर्ण कृति माना गया है। महाराजा देवेंद्र सिंह के दरबारी कवि लाल सिंह दास द्वारा रचित ''फूल रामायण'' में हिंदी के शताधिक कवियों के छंदों को संकलित करके रामकथा का चित्रण किया गया है। कविवर ज्ञानी संतसिंह ने ''रामाश्वमेध'' काव्य के साथ ही ''रामचरित मानस'' की सार पूर्ण टीका भी लिखी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पंजाब के कवियों ने रामचरित का बहुआयामी चित्रण श्रद्धापूर्वक किया है, जिसका इतिहास निश्चय ही प्रेरक और महत्त्वपूर्ण है। ❍❍❍

कालगणना की भारतीय पद्धति

प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

‘मानव-वर्ष मनुष्यों का वर्ष है, जो सामान्यतः 360 दिन का होता है। आवश्यकता के अनुसार उसमें घटत-बढ़त होती रहती है। दिव्य-वर्ष देवताओं का वर्ष है। वहाँ छः मास का दिन और छः मास की रात्रि होती है। मनुष्यों के 360 वर्ष मिलकर देवताओं का एक दिव्य-वर्ष होता है। मानव की सामान्य आयु 100 वर्ष मानी गयी है। इसके विपरीत देवताओं की आयु 1000 दिव्य वर्षों की मानी गयी है। इस प्रकार देवताओं की आयु मनुष्यों के 360 × 1000 = 360000 वर्ष के बराबर होती है। कुछ लोगों को देवताओं के अस्तित्व में संदेह हो सकता है, मगर भारतीय काल गणना का स्वरूप हमें उनमें या उनके जैसी किसी शक्ति को स्वीकारने के लिए ही प्रेरित करता है।

मानव जीवन समय-सीमा में बँधा हुआ है। निर्धारित समय पर दिन निकलता है, रात्रि होती है, विभिन्न ऋतुएं परिवर्तित होती हैं और उनके अनुरूप जीवन की परिस्थितियाँ और वातावरण भी बदल जाते हैं। इसलिए समय को कालखंडों में बाँटने की प्रवृत्ति मनुष्य के लिए सहज स्वाभाविक है। इस प्रवृत्ति के अनुरूप कालखंडों को निर्धारित करने का विज्ञान ‘विश्व का प्राचीनतम विज्ञान है और इसमें भारत का विशेष स्थान रहा है। हजारों लाखों वर्ष पूर्व अपनायी गयी वह प्रक्रिया इतने गूढ़ और गहन अध्ययन के आधार पर तैयार की गयी थी कि वह आज भी सटीक और सही बैठती है। इस प्रक्रिया के आधार पर तैयार किये गए हमारे पंचांग विश्वभर में बेजोड़ हैं। आज के वैज्ञानिक लंबे-चौड़े अनुसंधानों के बाद जिन नतीजों पर पहुँचते हैं, वे हमारे पंचांगों में पहले से ही विद्यमान हैं। दो अरब वर्ष पूर्व सृष्टि के जन्म से अब तक घड़ी और पल तक का हिसाब सही बैठता है और इसलिए विश्व भर के वैज्ञानिक हमारी इस प्राचीन विद्या का लोहा मानते हैं। जर्मनी के दार्शनिक मैक्समूलर के अनुसार आकाशमंडल के बारे में भारतीय लोग मूल आविष्कारकर्ता हैं। अंग्रेज लेखक डी. मार्गन के अनुसार भारतीय गणित और ज्योतिष सबसे अधिक प्राचीन है। चीनी विद्वान लियांग चिचाव का कहना है कि वर्तमान सभ्य जातियों ने जब हाथ-पैर हिलाना भी प्रारंभ नहीं किया था, तभी भारत ने मानव संबंधी समस्याओं को ज्योतिष जैसे विज्ञान से सुलझाना आरंभ कर दिया था।

समय का अर्थ होता है सम + अय, अर्थात सम्यक सुनियोजित ढंग से गति करने वाले को ही समय कहते हैं। समय को काल भी कहते हैं। प्रकृति की गति का कलन (धारण करना या गणना करना) करना ही काल है। प्राचीन साहित्य में काल की चर्चा काफी अधिक है। उदाहरणार्थ ‘कालेऽयम् निरवधिः विपुला च पृथिवी’ अर्थात् यह समय सीमाहीन है और पृथ्वी बहुत बड़ी है तथा ‘कालस्य कुटिला गतिः’ अर्थात् समय की गति बहुत कुटिल होती है आदि। हमारे यहाँ कालचक्र को चन्द्रमा के आधार पर निर्धारित किया गया और इसी आधार पर कालखंड, मास तथा वर्ष को। इसीलिए प्राचीन साहित्य में यत्र-तत्र चंद्रमा को ‘मास’ कहने की भी परंपरा रही है।

सम्पर्क: 10/611, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान), मो. 9828662214

निश्चित ही चंद्रमा का परिभ्रमण काल सूर्य से काफी कम है, मगर इसकी क्षतिपूर्ति के लिए हमारे यहाँ शुद्ध वैज्ञानिक आधार पर कभी तिथियाँ घटती-बढ़ती हैं और कभी पूरा मास। इस प्रकार कालांतर में सौर और चंद्र कैलेंडर दोनों समान स्थिति में पहुँच जाते हैं। हमारी प्राचीन मान्यता के अनुसार सृष्टि का निर्माण होता है और फिर लंबी समय-सीमा पार करते हुए महाप्रलय द्वारा उसका विनाश भी हो जाता है। कुछ अंतराल के बाद उसका पुन: निर्माण होता है इस प्रकार एक सृष्टि का अपना निश्चित कालखंड होता है। तदुपरांत दूसरा कालखंड दूसरी सृष्टि को जन्म दे देता है। इस प्रकार नियन्ता की दृष्टि से कालक्रम अनादि और अनंत है। ऋग्वेद में किये गए एक उल्लेख के अनुसार दीर्घात्मा ऋषि ने युग-युगों तक तपस्या करके ग्रह, उपग्रह, तारा, नक्षत्र आदि की स्थितियों का आकाश मंडल में पता लगाया। इसी आधार पर आगे चलकर ज्योतिष शास्त्र की रचना हुई, जिसे वेदों का ही एक अंग माना जाता है।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार विश्व का सबसे छोटा तत्व परमाणु है। हमारे प्राचीन विद्वानों ने कालक्रम का वर्णन करते समय भी काल की सबसे छोटी इकाई के रूप में परमाणु को ही स्वीकारा है। वायुपुराण में दिये गए विभिन्न कालखंडों के विवरण के अनुसार दो परमाणु मिलकर एक अणु का निर्माण करते हैं और तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु बनता है। तीन त्रसरेणुओं से एक त्रुटि, 100 त्रुटियों से एक वेध, तीन वेध से एक लव तथा तीन लव से एक निमेष (क्षण) बनता है। इसी प्रकार तीन निमेष से एक काष्ठा, 15 काष्ठा से एक लघु, 15 लघु से एक नाड़िका, दो नाड़िका से एक मुहूर्त, छ: नाडिका से एक प्रहर तथा आठ प्रहर का एक दिन और एक रात बनते हैं। दिन और रात्रि की गणना साठ घड़ी में भी की जाती है। तद्नुसार प्रचलित एक घंटे को ढाई घड़ी के बराबर कहा जा सकता है। एक मास में 15-15 दिन के दो पक्ष होते हैं- शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष। सूर्य की दिशा की दृष्टि से वर्ष में भी छ: छ: माह के दो पक्ष माने गये हैं: उत्तरायण तथा दक्षिणायन। वैदिक काल में वर्ष के 12 महीनों के नाम ऋतुओं के आधार पर रखे गये थे। बाद में उन नामों को नक्षत्रों के आधार पर परिवर्तित कर दिया गया, जो अब तक यथावत हैं। ये नाम हैं-चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन। इसी प्रकार दिनों के नाम ग्रहों के नाम पर रखे गये-रवि, सोम (चंद्रमा), मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि। इस प्रकार कालखंडों को निश्चित आधार पर निश्चित नाम दिये गए और पल-पल की गणना स्पष्ट की गयी।

कालगणना से संबंधित हमारे प्राचीन साहित्य में मानव-वर्ष और दिव्य वर्ष में भी अंतर किया गया है। 'मानव-वर्ष मनुष्यों का वर्ष है, जो सामान्यत: 360 दिन का होता है। आवश्यकता के अनुसार उसमें घटत-बढ़त होती रहती है। दिव्य-वर्ष देवताओं का वर्ष है। वहाँ छ: मास का दिन और छ: मास की रात्रि होती है। मनुष्यों के 360 वर्ष मिलकर देवताओं का एक दिव्य-वर्ष होता है। मानव की सामान्य आयु 100 वर्ष मानी गयी है। इसके विपरीत देवताओं की आयु 1000 दिव्य वर्षों की मानी गयी है। इस प्रकार देवताओं की आयु मनुष्यों के 360 × 1000 = 360000 वर्ष के बराबर होती है। कुछ लोगों को देवताओं के अस्तित्व में संदेह हो सकता है, मगर भारतीय काल गणना का स्वरूप हमें उनमें या उनके जैसी किसी शक्ति को स्वीकारने के लिए ही प्रेरित करता है। यह भी संभव है कि काल गणना से संबंधित प्राचीन साहित्य में देवताओं का उल्लेख प्रतीकात्मक रूप में ही किया गया हो और उनका संबंध किसी शक्ति या प्रकृति के किसी तत्व से रहा हो। अंतरिक्ष के बारे में जिस तरह नई-नई खोजें हो रही हैं, उन से भी देवता या दूसरे ग्रह में बसने वाले ऐसे ही किसी तत्व की जानकारी मिलना भी असंभव नहीं है।

भारत में सबसे पुराना संवत्सर-सृष्टि संवत्सर माना गया है। इसका प्रारंभ सृष्टि के निर्माण से हुआ और सृष्टि के अंत के साथ ही इस संवत्सर का भी अंत होगा। यही सृष्टि संवत्सर, एक कल्प या ब्रह्मा का एक दिन माना गया है। सृष्टि-संवत्सर की पूरी गणना प्राचीन ग्रंथों में दी हुई है। उसके अनुसार सन् 2018 में सृष्टि और उसके साथ सूर्य को बने 196,08,53,118 मानव वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। सृष्टि की कुल आयु 4320000000 वर्ष मानी गयी है। इसमें से वर्तमान आयु निकालकर सृष्टि की शेष आयु 2,35,91,46,882 वर्ष बचती है। तदुपरांत महाप्रलय निश्चित है। आधुनिक विज्ञान भी किसी न किसी रूप में सृष्टि के इस विनाश की संभावना को स्वीकारने लगा है। सृष्टि की आयु के बारे में भी वह हमारे विचारों से सहमत होने लगा है। इसके बाद ब्रह्मा की रात्रि प्रारंभ होती। यह रात्रि भी 4320000000 मानव-वर्षों की ही होगी, जिसे प्रलय-काल कहा गया है। इसके उपरांत सृष्टि के पुनर्निर्माण के साथ ब्रह्मा का नया दिन शुरू होगा। इस प्रकार ब्रह्मा का एक अहोरात्र 8640000000 मानव वर्षों का होता है। ब्रह्मा को परमेष्ठी मंडल की भी संज्ञा दी गयी हैं, जिसके चारों ओर सूर्य चक्कर लगाता है। ब्रह्मा के अहोरात्र को 360 से गुणा करने पर

एक ब्रह्मयुग वर्ष बनता है तथा उसे 100 से गुणा करने पर (8640000000 × 360 × 100) ब्रह्मयुग होता है। इसी प्रकार काल गणना का क्रम आगे भी चलता है। यहाँ यह दृष्टव्य है कि आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी ऐसा एक केंद्र-बिंदु है, जिसके चारों ओर सभी आकाशगंगाएँ चक्कर लगाती हैं। संभवतः इस केंद्र-बिंदु को ही हमारे यहाँ परमेष्ठी मंडल या ब्रह्मा की संज्ञा दी गयी। इसी प्रकार देवताओं की आयु का संबंध विभिन्न नक्षत्रों या आकाशगंगाओं की आयु से हो सकता है।

सृष्टि के पूर्वोक्त संपूर्ण जीवन को भी अनेक कालखंडों में बाँटा गया है। इसके अनुसार कुल 15 मन्वंतर होते हैं, जिनमें से प्रत्येक मन्वंतर का अधिपति का एक मनु होता है। 14 मन्वंतर में से प्रत्येक में 71 चतुर्युगी (एक चतुर्युग में कृतयुग या सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग तथा कलियुग) होती हैं। 15वें मन्वंतर में केवल छः चतुर्युगी होंगी। चतुर्युग को महायुग भी कहा गया है। गणना के अनुसार सृष्टि-संवत्सर के अब तक छः मन्वंतर निकल चुके हैं और अब सातवाँ मन्वंतर चल रहा है। वैवस्वत मनु से प्रारंभ होने के कारण इसे वैवस्त-मन्वंतर कहते हैं। इस सातवें मन्वंतर, वैवस्वत मन्वंतर के भी 27 महायुग व्यतीत हो चुके हैं तथा 28वें महायुग के तीन युग निकल चुके हैं और अब चौथा युग कलियुग चल रहा है।

एक महायुग में कुल 4320000 वर्ष होते हैं। महायुग के अलग-अलग चार युगों की अवधि इस प्रकार है-

कृतयुग (सतयुग)	1,72,800 वर्ष
त्रेता युग	12,96,000 वर्ष
द्वापर युग	8,64,00 वर्ष
कलियुग	4,32,000 वर्ष
	43,20,000 वर्ष

महायुग में सबसे कम अवधि कलियुग की है। इसमें दो गुणा अवधि द्वापर की, तीन गुणा त्रेता की तथा चार गुणा सतयुग की होती है। इस समय चल रहे कलियुग का प्रारंभ युधिष्ठिर के अवसान के समय से माना जाता है। उसी समय से कलि संवत् भी प्रारंभ हुआ। एक पौराणिक कथा के अनुसार महाप्रलय के उपरांत चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही ब्रह्मा ने नयी सृष्टि के लिए आदेश दिया था। कलियुग को चार चरणों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक चरण 1,08,000 वर्ष का होता है। वर्ष 2018 ई. तक इस प्रथम चरण के 5119 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। और 1,02,881 वर्ष शेष है। तथा संपूर्ण कलियुग में अब 4,26,881 वर्ष शेष रहे है। इसके बाद पुनः सतयुग प्रारंभ होगा। निश्चित ही एक व्यक्ति के लिए यह अवधि बहुत लंबी है, मगर सृष्टि नियंता की दृष्टि से यह अवधि अत्यंत अल्प है।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इन अलग-अलग युगों में ईश्वर ने भक्तों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए अलग-अलग अवतार लिए हैं। सतयुग में शंखासुर के विनाश के लिए मत्स्यावतार हुआ, समुद्र मंथन में देवताओं की सहायता के लिए कच्छप अवतार हुआ, हिरण्याक्षु के वध के लिए वाराह अवतार हुआ तथा भक्त प्रहलाद की रक्षा और हिरण्यकशिपु के संहार के लिए ईश्वर ने नरसिंह रूप धारण किया। त्रेतायुग में ईश्वर ने मानवावतार धारण करके राजा बलि से पृथ्वी का दान लेकर उन्हें पाताल का राज्य दिया तथा रावण का वध करने के लिए उन्होंने राम के रूप में धरती पर जन्म लिया। उन्होंने द्वापर युग में कंस तथा अन्य दुर्जनों का वध करने के लिए कृष्ण का अवतार लिया। पौराणिक मान्यता के अनुसार कलियुग में भी ईश्वर अवतार लेंगे। वह कल्कि अवतार होगा, जो कलियुग के उत्तरार्द्ध में उसकी समाप्ति से केवल 891 वर्ष पूर्व होगा। इस महायुग में सतयुग का प्रारंभ कार्तिक शुक्ल नवमी बुधवार को, त्रेतायुग का प्रारंभ वैशाख शुक्ल तृतीया सोमवार को, द्वापर का प्रारंभ माघ कृष्ण प्रतिपदा को तथा कलियुग का प्रारंभ भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी को माना जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार रामायण की घटना त्रेतायुग के उत्तरार्द्ध में तथा महाभारत की घटना द्वापर के उत्तरार्द्ध में घटी।

पूर्वोक्त गणना के अनुसार प्रत्येक मन्वंतर में 43,20,000 × 71 = 30,67,20,000 वर्ष होते हैं तथा पंद्रहवें मन्वंतर में केवल छः चतुर्युगी होने के कारण 43,20,000 × 6 = 2,59,20,000 वर्ष होते हैं। इनका कुल योग 30,67,20,000 × 14 × 2,59,20,000 = 4,32,00,00,000 वर्ष ही सृष्टि की कुल आयु को तथा ब्रह्मा के एक दिन या एक कल्प को प्रकट करते हैं। एक अन्य मान्यता के अनुसार मन्वंतर केवल 14 होते हैं, 15 नहीं। इस मान्यता के अनुसार प्रत्येक युग के प्रारंभ और अंत में उसका दसवाँ भाग क्रमशः संध्या काल और संध्यांश होता है। इस प्रकार 15वें मन्वंतर की छः चतुर्युगी इन्हीं 14 में लगभग पूरी हो जाती है और सृष्टि की कुल आयु वही बैठती है।

पौराणिक मान्यताओं से मुक्त रहते हुए प्रसिद्ध विद्वान् आर्यभट्ट ने मन्वंतर तो 14 ही माने हैं, परंतु उनके अनुसार प्रत्येक मन्वंतर में 71 के सथान पर 72 महायुग होते हैं। तथा इनमें सभी युग समान कालावधि के होते है। आर्यभट्ट यह अवधि 10,80,000 वर्ष की मानते हैं। इस प्रकार महायुग की संपूर्ण अवधि (10,80,000 × 4 = 43,20,000) के बारे में उनका कोई मतभेद नहीं है।

भारतीय काल–गणना की व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक मन्वंतर में मनु के अतिरिक्त मनु पुत्र, मनु पुत्रियां, सप्तर्षि, देवता तथा इन्द्र आदि होते है, जो अपना–अपना निर्धारित कार्य सम्पन्न करते हैं। मनु अपने मन्वंतर के सवामी और संचालक होते हैं। मनु पुत्र उनके सहयोगी होते हैं। मनु पुत्रियां भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों की स्वामिनी होती है। इंद्र पर सुरक्षा का दायित्व होता है तथा सप्तर्षि एक मन्वंतर में प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित कर उसे अगले मन्वंतर में हस्तांतरित करते हैं। सामाजिक व्यवस्था के संचालन और उनके मार्गदर्शन का दायित्व भी सप्तर्षियों का ही है। इन सबसे ऊपर विष्णु, सृष्टि के पालन का कार्य करते हैं। विष्णु पुराण (3–7–46) में कहा गया है–

सर्वे च देवा मनवस्समस्तास्र
सप्तर्षियो ये मनुसूनवश्च
इन्द्रश्च योऽ यं त्रिदेशेशूभूतो
विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ता:।।

महायुग के विभिन्न युगों में प्रवृत्ति के लिए प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि कलियुग सोने वाला आलसी है, द्वापर अंगड़ाई लेने वाला युग है, त्रेता उठने वाला है तथा कृतयुग जागृति का संदेश लेकर चलने वाला श्रेष्ठयुग अर्थात् सतयुग है–

कलि: शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापर:
उत्तिष्ठं त्रेता भवति, कृत:सम्पद्यते चरन्।

इस समय वराह कल्प है और सातवें मन्वंतर, वैवस्वत मन्वंतर में 28वें महायुग के कलियुग का प्रथम चरण चल रहा है। इस तथ्य को हम आज भी आमतौर से अपनी पूजा–अर्चना में बोले जाने वाले संकल्प–मंत्र में स्मरण करते हैं–

श्री श्वेत वराह कल्पे सप्तमे वैवस्वत
मन्वन्तरे अष्टाविंशतित मे कलियुग कलि प्रथम चरणे...।

वस्तुस्थिति यह है कि हमारी धार्मिक परम्पराओं में आज भी हमारी प्राचीन संस्कृति, इतिहास और ज्ञान मुखरित है, परंतु हम उस ओर ध्यान न देकर केवल लकीर पीटते रहते हैं।

काल–गणना की भारतीय पद्धति के मूल तत्व आज भी विज्ञानों द्वारा प्रमाणित है। भारत के प्राचीन ज्ञानकोष को देखते हुए लगता है कि हमारा वर्तमान ज्ञान–विज्ञान उसकी तुलना में अभी बहुत सीमित और बौना है। हमारी काल–गणना की प्राचीन पद्धति आज के वैज्ञानिक युग में भी ठोस, तर्कसंगत और प्रासंगिक है।

कितने पुराने है कैलेंडर

आधार वर्ष 2018

भारतीय

क्र.	**नाम**	**वर्ष (लगभग)**
1.	सृष्टि संवत्	19,60,853,118
2.	युधिष्ठिर संवत्	6019
3.	बौद्ध संवत्	2593
4.	महावीर (जैन) संवत्	2545
5.	शंकराचार्य संवत्	2288
6.	विक्रम संवत्	2075
7.	शालिवाहन शक	1940
8.	वल्लभी संवत्	1688
9.	बंगला संवत्	1425
10.	हर्ष संवत्	1411
विदेशी		
1.	फारसी सन्	89986
2.	मिस्त्री सन्	27672
3.	तुर्की सन्	7625
4.	आदम सन्	7370
5.	ईरानी सन्	6023
6.	यहूदी सन्	5779
7.	इब्राहिम सन्	4458
8.	मूसा सन्	3722
9.	यूनानी सन्	3590
10.	रोमन सन्	2769
11.	बर्मी सन्	2559
12.	जावा सन्	1944
13.	हिजरी सन्	1438

❍❍❍

लोक के आलोक में रानी रूपमती

डॉ. वर्षा नालमे

"यदि लोक संस्कृति, कला और साहित्य के आलोक में रानी रूपमती के अवदान का अनुशीलन किया जाये, वह हिंदी के अलावा मालवी और निमाड़ी तथा उससे भी आगे बढ़कर राजस्थानी बोली की जानकार थी। उसने इन भाषाओं/बोलियों में कई काव्य रचे। इतना ही नहीं उसने दोहों और सवैयों की भी सुंदर रचना की जिनमें निमाड़, मालवा का ही नहीं अपितु उससे भी आगे बढ़कर हाड़ौती और रणथंभौर का भी भौगोलिक रूप से वर्णन हुआ है। रानी रूपमती ने भावधारा के अनुरूप श्रृंगारपरक काव्य का सृजन किया। जिनमें उत्कृष्ट भावानुकूलता और संगीतात्मकता के दर्शन होते हैं।"

सम्पर्क: सेंट्रल एकेडमी, टी.टी. कॉलेज, प्रगति नगर, कोटड़ा, अजमेर-305001 (राज.) मो. 9929269650

इतिहास और उसकी अवधारणाएँ कभी-कभी अपने ही इतिहास पात्रों के साथ न्याय नहीं कर पाती हैं। मध्ययुगीन मालवा की प्रसिद्ध राजधानी मांडवगढ़ की रानी रूपमती भी उन्हीं में से एक है। अभी तक प्राप्त इतिहास के छिन्न-भिन्न रूप में रानी रूपमती की छवि अफगान सुल्तान बाजबहादुर की एक मात्र प्रेमिका के रूप में है, परंतु कठोर वास्तविकता यह है कि ऐसा कुछ है ही नहीं। वास्तविकता यह है कि वे दोनों कला परंपरा के समर्पित साधक थे। उनकी उदात्त संगीत साधना और भावना में उनका आत्मीय प्रेम समाहित था। उनके पवित्र प्रेम का आधार कला थी महिला या पुरुष होना नहीं। उनके मध्य के संबंध भी संगीत साधना से बँधे थे।

मांडू सुल्तान बाजबहादुर ने रानी रूपमती को बाकायदा अपनी रानी बनाने के बाद कभी भी ना तो उसका धर्म परिवर्तन किया ना ही उसने अपनी पूजा उपासना पद्धति में कोई बाधा उत्पन्न की। उसने रानी की धार्मिक मान्यताओं का आदर करते हुए सभी प्रकार की सुविधाएँ जुटा दी थीं तथा स्वयं ने रानी की आराध्या नर्मदा के जल की धारा को मांडू में लाने की सफलता प्राप्त कर इतिहास में एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था। धर्म की तथाकथित मान्यताएँ इसी कारण उन दोनों की सच्ची संगीत साधना में कभी बाधक नहीं बनी।

इतिहास, कला एवं लोक संस्कृति इस तथ्य की आज भी साक्षी है कि मालवा के कारण भारतीय इतिहास की 16वीं सदी को भारतीय संगीत का स्वर्णकाल माना जाता है। इसी परंपरा में यह भी सच है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह की प्रिय रानी गूजरी के कारण ग्वालियर राज्य ध्रुपद गायकी संगीत का बड़ा केंद्र बनकर भारत में उभरा तथा संगीत गायक तानसेन ने ग्वालियर में संगीत शिक्षा को प्राप्त किया और बैजूबावरा जैसे संगीतकार ग्वालियर आये। परंतु इतिहास का सच यह भी है कि तानसेन और बैजूबावरा के प्रसिद्धि पाने से काफी वर्षों पूर्व ही मालवा का मांडवदुर्ग संगीत साधना का भारत में सर्वोच्च केंद्र बनकर ख्याति प्राप्त कर चुका था। सुल्तान बाजबहादुर तो संगीत की विधाओं का आराधक था और रानी रूपमती भी संगीत, नृत्य, कविता में निष्णात थी अत: ऐसी समान रुचियाँ ही यदि इन

दोनों को एक दूसरे के समीप ले आई हों तो इसमें क्या संशय माना जा सकता है?

इस बात में कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि रानी रूपमती अपनी संगीत कला में प्रवीणता के करण अपने जीवनकाल में ही जीवंत किवदंती बन गई थी। उसके ऐसे कलात्मक और उदात्त गुणों के कारण उसकी चर्चा चहुँ ओर प्रसारित होने लगी थी और बाजबहादुर ने उसकी कला को परखा होगा। परंतु इतिहास ने उसके प्रारंभिक जीवन को अंधकार में रखा और भ्रामक सूचना दी। अकबर ने मुगलई इतिहासकारों क्रमशः निजामउद्दीन और अबुलफजल ने रानी रूपमती को मात्र एक पतुरिया, गायिका और नर्तकी बता दिया। उनकी लिखी इसी बात ने फिर रानी रूपमती की छवि को धूमिल कर दिया और पश्चात् के इतिहासकारों ने उसे बाजारू औरत के रूप में रेखांकित कर उसे चौराहे पर ला खड़ा किया। उसका यही स्वरूप पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित होता रहा और रोमांटिक रूप में प्रसारित होता गया। निमाड़, मालवा की माटी की इस बेटी के सत्य जीवन पर फिर दीर्घावधि तक किसी ने लिखने या शोध करने की कोई मानसिकता भी नहीं बनायी।

मालवा के एक प्रतिष्ठित साहित्य साधक डॉ. श्याम परमार ने अपने प्रयासों और शोध साधना के बल पर सच को सामने लाने का प्रयास किया और उन्होंने बताया कि वास्तव में रानी रूपमती निमाड़ के धरमपुरी में वास करने वाले राठौड़वंशी राजपूत जागीरदार थानसिंह राठौड़ की बेटी थी। मुगल इतिहासकारों ने इसे सारंगपुर के ब्राह्मण परिवार की पुत्री बताया परंतु आधार प्रस्तुत नहीं किये, जबकि रानी रूपमती का जीवन उसके धरमपुरी में रहने के प्रमाण से जोड़ता है। वह बाकायदा बाजबहादुर की अर्धांगिनी थी और बाज ने उसे 'रानी' का पूरा सम्मान प्रदान कर उससे प्रणय किया था। तब रानी रूपमती भी अपने जीवन के अंतिम साँस प्राण तक अपने पति के प्रति समर्पित रही। एक सती राजपूत नारी और परम निष्ठावान पत्नी के सदृश्य उसने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया, लेकिन अकबर के मुगल सेनानायक व्याभिचारी अधमखान की अंकशायिनी बनना कतई

स्वीकार नहीं किया चाहे उसे अपनी अंगूठी में जड़ी हीरे की कणी खाकर अपने प्राण त्यागने पड़े हों।

मुगल इतिहासकार अहमदउलउमरी ने भी रानी रूपमती के बारे में भ्रामक सूचना प्रसारित की कि वह सारंगपुर की निवासी थी। इस बारे में उसका मानना था कि उसे मृत्यु पश्चात् सारंगपुर (तिंगसपुर) में दफनाया गया। लेखिका के सामुख्य अध्ययन के अनुसार सारंगपुर में रूप और बाज की मृत्यु के मकबरे मुगल स्थापत्य के रूप में आज भी मौजूद हैं परंतु उक्त इतिहासकार इस बारे में एक भी सबल पुरासाक्ष्य नहीं दे पाये कि रानी रूपमती मूलरूप से सारंगपुर की ही निवासी थी? डॉ. श्याम परमार इसके विपरीत यह मानते हैं कि रानी रूपमती माँ नर्मदा की उपासिका थी। नर्मदा सरिता निमाड़ की प्राणरेखा रही है।

अत: वह निमाड़ क्षेत्र की निवासी थी। नर्मदा में उसकी अशेष और अटूट श्रद्धा थी। मांडव में आकर रानी बनने के बाद भी उसकी नर्मदा के प्रति अनन्य श्रद्धा कम नहीं हुई और वह मीरा के कृष्ण प्रेम की अनुरागिनी की भाँति नर्मदा स्नान और बिना नर्मदा दर्शन के अन्नग्रहण नहीं करती थी। इसीलिये बाज बहादुर ने नर्मदा की पवित्र धारा को मांडू के रेवाकुंड में लाकर उस रानी की धार्मिक भावना का सम्मान दिया था। इस कुंड के निकट ही उसने अपनी रूप के लिए 'राजेश्वर शिव' का एक महालय भी बनवाया था। बाज ने रूप की धार्मिक भावना को अपने अंतर्मन से समझकर उसका सम्मान करते हुए मांडव में रानी रूपमती महल भी बनवाया। लेखिका के सामुख्य अध्ययननुसार यह विशाल महल मांडव के दक्षिण सिरे की सर्वोच्च ऊँचाई पर ऐसी जगह स्थित है जहाँ खड़े होकर निमाड़ वन प्रांत की प्राकृतिक शोभा का मनोहारी आनंद उठाया जा सकता है। यहीं से नर्मदा आज भी एक रजत रेखा के समान दिखाई देती है। रानी रूपमती इसी महल से सूर्योदय व ऊषाकाल में अपनी इस पवित्र आराध्या के दर्शन करती थी। चाँदनी रात अथवा साँझ के समय संवेदनशील पर्यटकों और कठोर इतिहासकारों को भी इस महल और मांडू के वीरान महलों में आज भी संगीत की लहरी के स्वर सुनाई देते हैं। ऐसे में दर्शक निश्चय ही अपने आपको भूतकाल में परियों के स्वप्नलोक में अवश्य पायेगा। यही इस स्थल के रौमानी सौंदर्य की विशिष्टता है जो आज भी महसूस की जा सकती है। हाँ यह भी समझना आवश्यक होगा कि रानी रूपमती के इस महल पर जाते ही चाँदनी रात में पर्यटकों, इतिहासकारों, काव्य प्रेमियों को संगीत की दुनिया में नये राग की यह जनक (रूप) एक यक्ष प्रश्न करने से नहीं चूकेगी कि-''है कोई मालवा या सात समंदर पार का ऐसा लाल जो मेरे जीवन संगीत की साधना को उजागर कर एक नियमित पवित्र महफिल जमाकर उसकी एक धरोहर को जीवंत रख सकें?'' आज यह बेमिसाल स्मारक बार-बार हमें एक ही संदेश देता है कि-''आज इतिहास मानव की गलतियाँ जानने

और सीखने का शास्त्र है-उनको दोहराने का नहीं।'' इतिहास का उद्देश्य जोड़ना और टूटने से बचाने का है, परंतु जो इसे ओझल करता है या उसे उलटता है वह सत्य नहीं। रानी रूपमती का यह मंडप (महल) इसी का प्रत्यक्ष गवाह है। यहाँ यह भी तथ्य उल्लेखनीय होगा कि इस बात को बहुत कम लेखक जानते होंगे कि-अकबर जब सन् 1573 में मांडव आया तब उसने मालवा प्रशासन संबंधी कई शाही फरमान जारी किये थे। इनमें से एक फरमान की श्रेष्ठतम मुहर (सील) ''अकादमी ऑफ इंडियन न्यू मिस्मेटिक्स एंड सिग्लियोग्राफी'' नामक पुरातत्व जर्नल के मोनो (इंदौर) का प्रमुख भाग भी है।

विश्वसनीय सूत्रों के अनुसार-''धरमपुरी धामनोद के निकट के जंगल में एक गढ़ी के अवशेषों को जानकारों ने रानी रूपमती की गढ़ी माना था। रूप के पिता थानसिंह राजपूत यहीं के वासी थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बाजबहादुर के सुल्तान बनने से काफी पहले 14वीं से 15वीं शताब्दियों में मांडव के होंशगशाह गौरी और महमूद खिलजी जैसे सुल्तानों ने गागरोन, चित्तौड़ क्षेत्र में पहुँचकर वहाँ के अनेक राजपूतों के परिवारों को आमंत्रित कर निमाड़ के इस क्षेत्र में बसाया था। थानसिंह के पूर्वज भी उन्हीं में से एक थे। कुछ ही समय पश्चात् ये परिवार निमाड़ी बनकर नर्मदा के उपासक बन गये। इस सरिता के ओर छोर की संस्कृति, जीवन उनके अपने बन गये। रानी रूपमती और उसकी संगीत, गीत की साधना भी फिर इसी संस्कृति की महान देन बनी।

लोक किवदंती है कि संगीत साधक बाजबहादुर इसी जंगल में शिकार के निमित्त आया था और संयोग से गीत गाती रूपमती से उसकी भेंट हो गयी। यह संगीत का पारखी थी अत: रूप की संगीत साधना पर वह समर्पित हो गया। उसने थानसिंह के समक्ष रूप को रानी बनाने का प्रस्ताव रखा और रूप के धर्म, उपासना विषयक हिंदू नियमों को स्वीकार कर उससे बाकायदा प्रणय किया। रूप के कारण मांडवगढ़ बड़ा कला तीर्थ बना। रूपमती में बाज ने पाया कि वह संगीत की ही नहीं वरन् गायिकी, वादन, कविता सृजन में तो सिद्धहस्त है ही वह साहस, नीति में भी अद्वितीय और कुशल राजनीतिज्ञ है। रानी बनकर वह बाज के साथ घोड़े पर सवार होकर शिकार में भी जाती थी और बाज के सैनिकों के अभियानों में भी वह साथ देती थी इसलिए बाज उसका बड़ा सम्मान करता था।

समयानुसार अनुकूल वातावरण और बाज के प्रोत्साहन के कारण रूपमती ने नवीन राग रागिनियों का आविष्कार कर दिखाया। उसने ख्याल गायिकी की खोजकर उसे 'बाजखानी ख्याल' नाम दिया और इसी कारण मांडू 'ख्याल गायकी' का भारत में प्रमुख केंद्र के तौर पर उभरा। रूप के कारण फिर 16वीं सदी में मालवा को संगीत के क्षेत्र में ख्याल प्रस्तुत करने का बेमिसाल श्रेय मिला जो रूप की सर्वोच्च संगीत साधना का ऐसा प्रमाण रहा जिसके समक्ष मांडू की धरोहरों की बयार ने प्रणाम कर लिये थे। ख्याल गायकी के अतिरिक्त रूप ने 'भूपकल्याणी राग' का आविष्कार भी किया था। वह संगीत और नृत्य की सभी शैलियों में निष्णात थी। यदि विचार किया जाये तो जिस प्रकार तानसेन का प्रिय गायन 'ध्रुपद' था उसी प्रकार रूपमती का प्रिय गायन 'ख्याल' था। बाजखानी ख्याल की रचना रूपमती ने इसी के अंतर्गत की थी। प्रख्यात संगीतज्ञ मल्लिकार्जुन मंसूर इसी ख्याल गायकी के भारत में सर्वोच्च प्रतिनिधि रहे हैं। रूपमती की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह जिन भी कविताओं का सृजन करती थी उन्हें संगीत के रूप में तुरंत ढाल लेती थी और अभिनय तथा नृत्य के द्वारा उन्हें जीवंत कर देती थी। यह त्रिवेणी ही उसकी संगीत साधना का सर्वोच्च सोपान थी।

यदि लोक संस्कृति, कला और साहित्य के आलोक में रानी रूपमती के अवदान का अनुशीलन किया जाये, वह हिंदी के अलावा मालवी और निमाड़ी तथा उससे भी आगे बढ़कर राजस्थानी बोली की जानकार थी। उसने इन भाषाओं/बोलियों में कई काव्य रचे। इतना ही नहीं उसने दोहों और सवैयों की भी सुंदर रचना की जिनमें निमाड़, मालवा का ही नहीं अपितु उससे भी आगे बढ़कर हाड़ौती और रणथंभौर का भी भौगोलिक रूप से वर्णन हुआ है। रानी रूपमती ने भावधारा के अनुरूप शृंगार परक काव्य का सृजन किया। जिसमें उत्कृष्ट भावानुकूलता और संगीतात्मकता के दर्शन होते हैं।

उसके एक दोहे से अंचल (क्षेत्र) के भूगोल का स्पष्ट विवरण मिलता है-

चित्त चंदेरी, मन मालवा, हिया हाड़ौती माय।
पलंग बिछाऊँ रणतभंवर मैं, पोढू मांडव आय।।

लुअर्ड नामक ब्रिटिश साहित्यकार ने (धार एंड मांडु) नामक अपनी लघुकृति में वाचिक पद का उल्लेख किया जिसमें यह

दर्शाया गया है कि - रूपमती स्वयं को अपने पति बाजबहादुर पर न्यौछावर करने को उद्यत हैं-

अरू तो धन जोड़ता है री
मेरो तो धन प्यार की प्रीत पूँजी
अनेक जतन की राखो मन में
जो परतीत थारी देखूजी
तिरिया की ना लागे दृष्टि
अपने कर राखूँगी कुंजी
दिन दिन बढ़त सवायो
दूर ही घटत एको गुंजी
बाजबहादुर को स्नेह ऊपर
निवछावर करूँगी जी।... अरू तो धन

बाज बहादुर के प्रति उसका प्रेम अति पवित्र और उत्कृष्ट था। अपने इसी आत्मिक और मर्यादित प्रेम की अभिव्यक्ति उसने अपनी जिस कविता में समादृत की वह अद्वितीय है। वह लिखती है कि ''बाज! आपको किसने बहला दिया है? आप कहाँ हैं? साँझ हो गयी है और दिन अस्त होने को है। मैं आकुल होकर प्रतीक्षारत हूँ। सारा कोलाहल मांडू में थम सा गया है और अर्थहीन सा प्रतीत होता है। प्रस्तुत है इस विरह व्यथा की एक बानगी-

त्हने किन बैरिन बिलमायो
ऊभी थ्हारै कारन
भड़-भड़ जोऊ बाट
साँझ पड़ी दिन आ थम्यो
उठ ग्यो सारो हाट
रूपमती को बाजबहादुर
रसियो सिगरो ठाट

रूपमती का उदात्त प्रेम अपने बाज के प्रति इतना पवित्र और आत्मीय था कि वह एक पल भी बगैर उसके नहीं रह सकती थी। अपनी इसी भावाभिव्यक्ति को स्पष्ट रूप से स्वीकारते हुए वह लिखती है कि-

बिन पिया पापी जिया
चाहत है सुखराज
रूपमती दुखिया भई
बिन बहादुर बाज

उक्त रचनाओं से यह भी ऐतिहासिक रूप से स्पष्ट होता है कि बाजबहादुर का कर्मक्षेत्र चंदेरी, गागरोन से लेकर स्थापन स्थल शुजालपुर, शाजापुर होते हुए मालवा से मांडवगढ़ तक रहा तो रूपमती के काव्य चिंतन का विराट क्षेत्र निमाड़-मालवा से लेकर हाड़ौती और उमठवाड़ होते हुए रणथम्भौर तक रहा था।

कुल मिलाकर देखा जाये तो रानी रूपमती मध्ययुगीन इतिहास एवं लोकपरंपरा और साहित्य की सर्वोत्तम समन्वयी बिंदू थी। परंतु दुर्भाग्य से उसके उत्कृष्ट साधनागत अवदान व सच्चाई तथा उसकी कलात्मक उपलब्धियों को ढका गया और बार-बार उसे मुगल लेखकों ने नृत्यांगना और पतुरिया के रूप में उच्चारित किया। मुस्लिम विद्वेष की भावना से उसके चरित्र को लांछित किया। परंतु इस पर भी उसके व्यक्तित्व के पवित्र आकर्षण ने अनेक विद्वान चित्रकारों और साहित्यकारों को अनुप्राणित किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूपमती की साधना संगीत की ख्याति उसके जीवनकाल में ही निमाड़ और मांडवगढ़ को लाँघकर समूचे मध्ययुगीन भारत में प्रसारित हो गई थी। सनवाल, गोबरधन और चेतरमन जैसे चित्रकारों ने उसके व्यक्तित्व पर विभिन्न चित्र बनाये। रूपमती के इसी रूप ने राजस्थानी से लेकर कश्मीर, पंजाब के चित्रकारों को खानदेश, दक्षिण के चित्रकारों के सथ प्रेरणा प्रदान की।

ख्यात कलाविद श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के द्वारा रूपमती और बाजबहादुर पर केंद्रित मध्यकालीन लघुचित्र शैलियों में बनाए गए लघुचित्रों का अध्ययन किया गया है। उनके अनुसार शीरी-फरहाद, लैला-मजनू, शशि-पुन्नु तथा हीर-रांझा की अमर प्रेम गाथाओं के समान ही रूपमती और बाजबहादुर की प्रेम कहानी इतिहास के पन्नों में सदैव के लिए दर्ज हो गई है। इस प्रेम कहानी ने कलाकारों को गहरे छुआ और उनकी तूलिकाओं ने रंगों और रेखाओं का मिलन कराकर इस प्रेम कहानी को मूर्त रूप देते हुए कला इतिहास में अमर कर दिया।

भारतवर्ष के विभिन्न संग्रहालयों सहित हॉर्वर्ड, नैशनल गैलरी ऑफ ऑस्ट्रेलिया, लॉस एंजिलिस, काउंटी म्यूजियम अमेरिका, मेट्रोपोलिटिन म्यूजियम न्यूयार्क अमेरिका सहित येल युनिवर्सिटी के संग्रहों में मध्यकाल की विभिन्न राजस्थानी तथा पहाड़ी, मुगल, दकनी व मालवा शैली में बने रूपमती तथा बाजबहादुर के अंकन संग्रहीत हैं।

इस गाथा पर केंद्रित चित्र मुर्शिदाबाद तथा फर्रुखाबाद जैसी कलमों में भी बनाए गए हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि क्रिस्टीज और बोनहम्स ने विभिन्न शैलियों की इस गाथा पर

केंद्रित अंकनों का समय-सयम पर विक्रय भी किया। ऐसे चित्र विभिन्न कलाप्रेमियों ने क्रय किए हैं तथा पूरे विश्वभर में इस गाथा पर केंद्रित अंकन बिखरे हुए हैं जो विभिन्न निजी संग्रहों में हैं।

इन अंकनों में प्राय: सभी में रूपमती को व बाजबहादुर को घोड़ों पर सवार चित्रित किया गया है। अनेक अंकनों में वे साथ-साथ विशेष रूप से हरिणों का शिकार करते हुए चित्रित किए गए हैं। उनके द्वारा पक्षियों के शिकार करने के भी दृश्य हैं। एक अंकन ऐसा भी है जिसमें इन दोनों को वन में घोड़ों पर सवार होकर जाते हुए चित्रित किया गया है तथा जिस जंगल से वे निकल रहे हैं उस स्थान पर एक तालाब में महिलाएँ स्नानरत चित्रित की गई हैं।

अनेक अंकन ऐसे हैं जिसमें दोनों के हाथों में बाज को बैठे चित्रित किया गया है। इन अंकनों में भले ही बाजबहादुर और रूपमती को सैनिक वेशभूषा में चित्रित किया गया हो लेकिन उनकी देह की रागात्मकता को चितेरे ने बखूबी चित्रित किया है। इन लघुचित्रों को देखते समय यह सहज आभास हो जाता है कि रूपमती और बाजबहादुर कला को समर्पित व्यक्तित्व रहे होंगे। इन अंकनों में स्वाभाविक रंग विशेष रूप से रहे, हल्के लाल व पीले रंगों का उपयोग किया गया है।

यह प्रेम गाथा इतनी लोकप्रिय हुई कि उसने एक ओर जहाँ कांगड़ा, नूरपुर व मानकोट सहित पहाड़ के दोटे-छोटे ठिकाणों की शैलियों में अपने आप को अभिव्यक्त किया वहीं दूसरी ओर पहाड़ की लोकशैलियों में भी उसने अपनी पैठ बनाई। राजस्थान की विभिन्न शैलियों में विशेष रूप से जयपुर, मारवाड़ तथा मेवाड़ की कलमों में इस गाथा को रूपायित किया गया वहीं दूसरी ओर इसके रेखांकन राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों में भी किए गए।

चितेरों ने इनके आसपास के प्राकृतिक परिवेश को पूरे सौंदर्य के साथ चित्रित किया है तथा प्रकृति के हर उपादान को बारीकी के साथ उकेरा है। हरे-भरे वृक्षों के बीच में कुलाँचे भरते हरिण और पूरी गति के साथ घोड़ों पर सवार होकर उनका पीछा करता यह युगल स्पष्ट रूप से यह आभास कराता है कि स्थिर चित्र में भी कितनी गतिशीलता समा सकती है और सौंदर्य मौन होते हुए भी कितना मुखर हो सकता है।

इसी कारण प्रतिवर्ष मांडव दुर्ग में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा मांडू

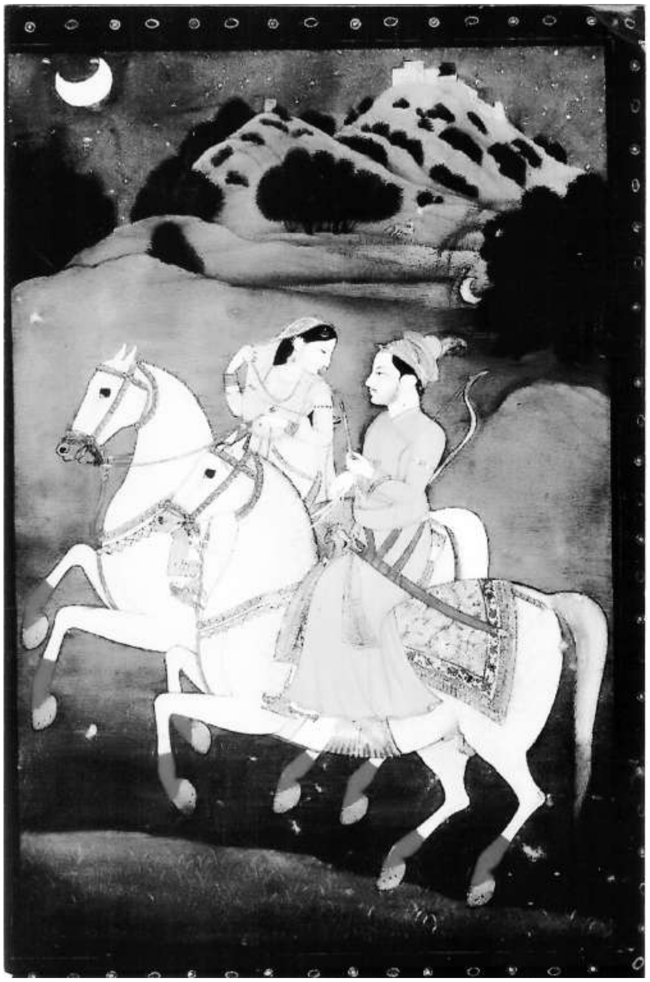

उत्सव का भी आयोजन किया जाता है। मांडवगढ़ रूपमती का संगीत साधना स्थल रहा है और सारंगपुर उसका मृत्यु स्थल। इन दोनों स्थलों पर अवलोकन आज भी लेखकों और पर्यटकों को एक भावुक संवेदनशील स्पंदन और पवित्र स्पर्श प्रदान करता है। जहाँ मूक पाषाण तो बोलते हैं। खंडहरों की दीवारों से रंग और रेखायें व निर्माण भी बोलते हैं तथा रूप की संगीत साधना भी गूँजती है पर भाव शब्दों का स्थान इतिहासकार अथवा साहित्यकार की कलम समेट नहीं पाती। कहा भी गया है कि — साधना करते-करते जब साधक अतिदृढ़ हो जाता है तब साधनागत व्यक्तित्व के समक्ष इतिहास की धरोहरें भी प्रणाम करती हैं। रूपमती रानी की संगीत साधना इसी का सर्वोच्च प्रमाण है जिसके कारण मांडव से लेकर सारंगपुर तक के खंडहर उसके नाम के समक्ष प्रणाम करते हैं। प्रस्तुत लेख यद्यपि अल्प जानकारी लिये ही माना जाना चाहिए क्योंकि अभी और यशोलब्धि इस कार्य में होना शेष है। मालवा स्थित धार में एक शोध संस्थान इस कार्य में सतत् शोधरत है। ❍❍❍

कृष्णा सोबती: मुहावरों के बावजूद पीड़ा का राग

मृदुला गर्ग

"जो सचमुच महसूस करता है, वह अपने अहसास को अभिव्यक्त करने के लिए शब्दों को नाकाफी पाता है और चुप हो जाता है; जैसे सोबती की कहानी ''ऐ लड़की'' की किरदार लड़की होती है। उसके विपरीत उसी कहानी में लड़की की माँ खूब-खूब वाचाल है। सुघड़ गृहणी का लंबा कर्मकांडी जीवन बिताकर बड़ी उम्र पाई औरतें, वाचाल होती ही हैं। पर उनकी वाचालता एक विडंबना समेटे रहती है। आम मध्यवर्गीय गृहणियों में अपनी उपलब्धियों को लेकर जो वाचाल अहंकार दीखता है, वह वास्तविक कम, नाटक ज्यादा होता है। उसका उद्‌भव, सायास सीमित किये व्यक्तित्व-बोध से होता है, वास्तविक पूर्णता बोध से नहीं, इसीलिए तो इतना वाचाल होता है।"

जैनेंद्र जी ने एक बार कहा था, कृष्णा सोबती के उपन्यासों में सैक्स का जश्न होता है। मैंने पढ़ कर देखा तो महसूस किया, जश्न सैक्स का नहीं, भाषा का है। उन्होंने ''मित्रों मरजानी'', ''सूरजमुखी अँधेरे के'', ''बादलों के घेरे'' आदि में स्त्री की सैक्सुऑलिटी पर लिखा ज़रूर है पर उसमें जो रोमानी जश्न का समाँ बाँधता है, वह भाषा की वजह से है। कथ्य की गहराई में तो पीड़ा का बोध कुण्डली मारे बैठा रहता है, उत्सव का नहीं। अगर वाकई जश्न सैक्स का होता तो आशिक के पास आते-जाते, मित्रो, पति के घर-द्वार लौट न आती। मित्रो मरजानी के भीतर जो औरत साँस ले रही है, वह एक जिन्दादिल पारिवारिक स्त्री है। साथ ही पारंपरिक भी। और क्यों न हो। भावात्मक लगाव में कैसी परंपरा और कैसी आधुनिकता? निजी चुनाव का मसला है। जो एक के लिए पारंपरिक है, दूसरे के लिए आधुनिक। दरअसल घर-द्वार से लगाव के संस्कार को सेक्सुऑलिटी के उद्दाम प्रदर्शन से ढाँपा गया है और उसे ढाँपने का काम किया है भाषा ने, इतनी सफलता के साथ कि लगता है कि मित्रो रूढ़ियों को ही नहीं, भावनाओं को भी ताक पर रखने वाली बिंदास औरत है। दरअसल वह सिर्फ एक खुद्दार औरत है, जो अपनी अस्मिता बनाये रखने के लिए मार खाने के लिए भी तैयार है। अंततः जीत कथा में निहित पीड़ा की होती है, भाषा में दीखते सेक्स के जश्न की नहीं और उससे भी ज्यादा होती है, पीड़ा को उत्सर्ग करने के पात्र के माद्दे की। उसने कथा को निर्मिति बनने से बचा कर सहज रचनात्मक कृति बना दिया। सोब्ती जी भाषा को लेकर सजग हैं; खूब-खूब सजग हैं; फिर भी वह श्लेष-विडंबना-द्वंद्व संमूर्त रचना लिख जाती हैं, क्योंकि मुहावरों के प्रयोग के बावजूद, कथानक में छिपी पीड़ा बाहर छलक आती है।

भाषा का उत्सव, स्त्रीत्व की भाषा की विलक्षणता है। तभी कृष्णा सोबती असल मतलब को दबाने का काम उसी खूबी से करती है, जिससे उसे खोलने का। क्या है स्त्रीत्व की भाषा?

सम्पर्क: ई-421 (भू-तल), जी, के.-2, नई दिल्ली-110048,
मो. 9958661937, ई-मेल: mridula.garg@gmail.com

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में प्रयुक्त स्त्रीत्व की भाषा, कथ्य और शिल्प दोनों को समेट कर चलती है। पर उसका ताल्लुक, लेखक का खुद स्त्री होना कतई नहीं है। इस कथन में किसी किस्म का अंतर्विरोध नहीं है।

उसका विवेचन करने से पहले आज की वस्तुस्थिति पर एक टिप्पणी जरूरी है। आजकल हमारे यहाँ वाद-विवाद जितना ज्यादा होता है, संवाद उतना कम। मुझे लगता है यह संस्कृति के अवमूल्यन का एक चित्रण है, क्योंकि हमारी परंपरा में तो धर्म ग्रंथ का दर्जा पाई भगवद् गीता तक संवाद है। किसी समस्या का निराकरण ढूँढते हुए भी, कायदा था कि पहले छोटे वय व पद के लोगों की राय ली जाती थी बाद में ''बड़े'' लोगों की, जिससे वे स्वतंत्र राय देने में संकोच न करें। फिर क्या हुआ कि हमने इस परंपरा का त्याग कर दिया?

इस अवमूल्यन का संबंध वैश्वीकरण या उत्तर आधुनिकता से नहीं है। वह उससे बहुत अर्सा पहले शुरू हो गया था। कई कारण हो सकते हैं। पर मुझे लगता है, एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि ब्रितानी हुकूमत के दौरान, हमारे भीतर एक जबरदस्त हीन भावना पनप गई थी। उससे उत्पन्न कुंठा का प्रतिकार करने का एक ही तरीका हमें मिला। यह कि जो उम्र या पद-पदवी के लिहाज से हमसे कमतर हो या हमारे मातहत हो, उस पर वही तानाशाही करें, जो सत्ताधारी हम पर कर रहे थे। तानाशाह तथाकथित कमतरों को सवाल करने की इजाजत नहीं देता क्योंकि उसे डर होता है कि उसकी असलियत खुल न जाए।

मेरे जेहन में यह विचार कुलबुला रहा था कि कृष्णा सोबती का उपन्यास ''ज़िंदगीनामा'' हाथ लग गया। पढ़ना शुरू किया नहीं कि अपने सोच की रचनात्मक पुष्टि उसमें मिल गई। ऐसे बौद्धिक संयोग होते रहते हैं। उनमें भाग्य या विधि के विधान से मेरी अधिक आस्था है।

ज़िंदगीनामा के शुरुआती पन्नों में लालाजी एक आख्यान सुनाते हैं। उसके बीच में जब भी कोई बच्चा जिज्ञासावश कोई सवाल कर बैठता है तो तुरंत कोई व्यस्क, उसे कान मरोड़ या हाथ के इशारे से डरा, रोक देता है। यानी सुनो, सीखो पर सवाल मत करो। मैं मान कर चल रही हूँ कि इस घटना द्वारा कृष्णा सोबती हमारे समाज में सवालों के न किये जाने की वस्तुस्थिति दर्ज कर रही थीं, क्योंकि खुद उन्होंने सवाल उठाने में कभी कोताही नहीं की। मेरी दिलचस्पी भी सवालों में है। गीता पढ़ते हुए भी श्रीकृष्ण के उत्तरों की बनिस्बत, मुझे अर्जुन के सवाल अधिक महत्वपूर्ण लगते रहे हैं।

जरूरी नहीं है कि हर सवाल का जवाब हो। किसी सवाल का एक ही जवाब हो, वह तो शुद्ध विज्ञान के सिवा कहीं संभव नहीं; शुद्ध विज्ञान में भी शोध के साथ उत्तर बदलते रहते हैं। जहाँ तक समाज, धर्म, सौंदर्य, साहित्य व कला का सवाल है, संशय व असहमति से उत्पन्न जिज्ञासा या प्रश्नाकुलता, उनका प्राण-तत्व है क्योंकि उसी के माध्यम से हम पुनर्विचार और नूतन सृजन कर पाते हैं।

पर जब सवाल अपनी तरफ मुड़ते हैं तो तकलीफ होती है और उन्हें लेकर हम बहुत उदार नहीं हो पाते। मेरा अनुभव रहा है कि हिंदी विभागों में गुरु से सवाल करने को गुस्ताखी मानने की रिवायत की वजह से, ज़्यादातर लेखक सवाल किये जाने पर नाराज़ हो जाते हैं।

सवालों के जवाब कभी हम मिल कर ढूँढते हैं तो कभी अकेले। मिलकर ढूँढने को हम संवाद का नाम दे सकते हैं, अकेले ढूँढने को साहित्य सृजन का। साहित्य सृजन में पुनर्विचार से उत्पन्न नई जीवन दृष्टि, तर्क या संवाद तक सीमित नहीं रहती। जैसे ही लेखक पात्रों का सृजन करता है, उसकी जीवन दृष्टि, विचार का दायरा लाँघ, जीते-जागते इंसानों के जीवन के घटनाक्रम में प्रवेश कर जाती है। कथा साहित्य के पात्र काल्पनिक भले हों पर वे पाठक को अपने आसपास बिखरे वास्तविक चरित्रों से ज्यादा सजीव और विश्वसनीय लगते हैं। अपने परिचितों में जिन विसंगितयों को वे, निजी कारणों से अनदेखा किये रहते हैं; साहित्यिक पात्रों में निस्संकोच स्वीकार कर लेते हैं। उन्हें अंतरंगता से महसूस करके, उन विरोधाभासों या स्वीकृत मूल्यों के अस्वीकार को ज्ञानमयता देने के बाद, वे खुद भी, कहीं न कहीं, बदलने लगते हैं।

इस प्रक्रिया में पात्रों व स्वयं लेखकों द्वारा प्रयुक्त भाषा की अप्रतिम भूमिका रहती है। उसी के माध्यम से पाठक और पात्र

की अंतरंगता स्थापित होती है। मैंने जब लिखना शुरू किया, तभी से उनकी कहानी ''यारों के यार'' में प्रयुक्त गालियों का जिक्र सुनती आई हूँ। इस टिप्पणी के साथ कि मर्दाना गालियाँ, कहानी की माँग थीं, जिसे लेखिका ने साहस के साथ पूरा किया। पाठकों-आलोचकों की दृष्टि में, चूँकि असल ज़िंदगी में वे गालियाँ मर्द देते थे, औरतें नहीं, कम-अज़-कम मध्य वर्ग में, इसलिए एक औरत का उन्हें हूबहू कागज़ पर उतारना, साहस का काम था। मुझे इस नज़रिये में मूलभूत तार्किक विसंगति दिखलाई देती है। ग़ौरतलब यह है कि उस कहानी में, भले लिखी औरत न हो, गालियाँ देते मर्द ही हैं, औरतें नहीं। औरतें देतीं तब भी अपमान औरतों का ही होता क्योंकि तमाम मर्दाना गालियाँ, मर्द के बहाने किसी औरत को बेइज़्ज़त करती हैं, माँ-बहिन हो या पत्नी, मर्द को नहीं। पर उस स्थिति में एक सार्थक बहस हो सकती थी कि क्या उन गालियों को दुहरा कर, स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक समाज के कलुष को आत्मसात् नहीं कर रहीं? पर यहाँ तो पुरुषों का वही कहन लिखा गया था, जो पुरुष लेखक लिखते रहे थे। स्त्री का उसे लिखने से परहेज करना या लिख देना खास मानी नहीं रखता। सिवाय इसके कि इस स्त्री लेखक ने खुद अपना लिखा सेंसर नहीं किया।

स्त्रीत्व या स्त्री की भाषा का अर्थ उससे कहीं गहरा और अर्थवान् है। स्त्री भाषा से मेरा मन्तव्य, भाषा में निहित स्वभाव और संस्कार से है। कृष्णा सोबती के लेखन में भाषा का जो उत्सव या त्योहार अंतर्निहित है, वह उसे स्त्रीत्व की भाषा बनाता है। लेखक यदि स्त्री न होकर पुरुष होता तब भी भाषा की यह खूबी उसे स्त्रीत्व की भाषा बनाये रखती।

हमारी संस्कृति में उत्सव और उपदेश का विशेष महत्व और भूमिका है। यहाँ तक कि हर निजी त्रासद और पीड़ादायक अनुभव को भी कर्मकांड बनते देर नहीं लगतीं; शिशु जन्म हो या पति का देहांत। त्योहारों की उत्सवधर्मिता और तकलीफ, दोनों स्त्रियाँ ज्यादा झेलती हैं। गाँव हो या कस्बा; शहर हो या महानगर; झुग्गी बस्ती हो या बंगला, त्योहार मनाने या झेलने का बोझ स्त्री के कंधों पर रहता है। यहाँ तक कि अनेक संभ्रांत परिवारों में तो स्त्री का पूरा जीवन कर्मकांड बन कर रह जाता है, जहाँ उसके निजी मनोभावों का कोई अर्थ नहीं होता। उन्हें प्रकट न करना उसकी आदत में शुमार हो जाता है।

कृष्णा सोबती का बृहद् उपन्यास ''ज़िंदगीनामा'' इसका जबरदस्त उदाहरण है। उपन्यास में एक पूरे समाज का चित्र, सतत चल रहे त्योहारों के माध्यम से उभरता है। एक तरफ फ़सल के बोने, पकने, काटने और खाने के बारहमासी उत्सव हैं तो दूसरी तरफ शिशु के गर्भ में आने से लेकर उसके पैदा होने, अन्न खाने, पढ़ने जाने, मुहब्बत, शादी वगैरह करने का अनवरत जश्न है। भाषा की उत्सवी वाचालता के कारण सूदखोरी, डाका, हत्या, कालापानी की सजा भी जोखिम और यंत्रणा का उद्दाम रंग बिखेरते त्योहार से प्रतीत होते हैं। हर त्योहार को, सुखकारक हो अथवा यातनादायक, कोई औरत परवान चढ़ा रही होती है। उसका खामियाजा भी औरत ही भुगत रही होती है। इसीलिए भाषा की उत्सवधर्मिता को मैं स्त्रीत्व की भाषा कहती हूँ।

मनुष्य नाम का प्राणी दो सूरतों में वाचाल होता है, मर्द हो या औरत या जब वह कुछ महसूस नहीं करता या जब वह नहीं चाहता कि लोग जानें कि वह कितनी शिद्दत से महसूस कर रहा है। कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में दोनों प्रकार की वाचालता की भरपूर अभिव्यक्ति है।

जो सचमुच महसूस करता है, वह अपने अहसास को अभिव्यक्त करने के लिए शब्दों को नाकाफी पाता है और चुप हो जाता है; जैसे सोबती की कहानी ''ऐ लड़की'' की किरदार लड़की होती है। उसके विपरीत उसी कहानी में लड़की की माँ खूब-खूब वाचाल है। सुघड़ गृहणी का लंबा कर्मकांडी जीवन बिताकर बड़ी उम्र पाई औरतें, वाचाल होती ही हैं। पर उनकी वाचालता एक विडंबना समेटे रहती है। आम मध्यवर्गीय गृहणियों में अपनी उपलब्धियों को लेकर जो वाचाल अहंकार दीखता है, वह वास्तविक कम, नाटक ज्यादा होता है। उसका उद्‌भव, सायास सीमित किये व्यक्तित्व-बोध से होता है, वास्तविक पूर्णता बोध से नहीं, इसीलिए तो इतना वाचाल होता है। 'ऐ लड़की' की मरणसन्न माँ, औरों के साथ खुद को यकीन दिलाना चाहती है कि उसने केवल मेहनतकश ही नहीं बेहद सार्थक जीवन जिया है; भले किसी पुरुष के शासन के अंतर्गत जिया हो। भारतीय स्त्री के जीवन की विडंबना, उसके लंबे संभाषण के बीच खुद-ब-खुद उजागर होती चलती है।

कहीं वह मन में छुपी लालसाओं को अजाने शब्द दे जाती है जैसे इन अल्फाज में, ''चाहती थी पहाड़ों की चोटियाँ चढ़ूँ। शिखरों पर पहुँचूँ। पर यह बात घर की दिनचर्या से नहीं जुड़ती। तुम्हारे पिताजी को न कुछ भी देर से चाहिए था न जल्दी। सो आप ही घड़ी बनी रही... इस परिवार को मैंने घड़ी मुताबिक चलाया, पर अपना निज का कोई काम न सँवारा, इस बात का बहुत कष्ट है मुझे...'' तो फौरन कोई दूसरा मुहावरा बोल कर उसे निरस्त कर देती है। जैसे ''माँ बन कर स्त्री तीनों काल जी लेती है।'' क्या वाकई? उसके लिए यह भले सही हो, सब के लिए दावा कैसे कर सकती है? नहीं कर सकती पर करती है क्योंकि वह चाहती है, लड़की उन पर यकीन कर के, अपना घर बसा ले। इसी जिद के भीतर से मुहावरों का जन्म होती है। दर्द देती दुनियादारी को रसीला बनाकर पेश करने के लिए मुहावरे बेहतरीन हथियार हैं। मगर ''ऐ लड़की'' की माँ दूसरे स्त्री पात्रों से भिन्न है क्योंकि वह सदियों से चले आ रहे मुहावरों का पुनर्वाचन नहीं करती, अपने मुहावरे खुद इजाद करती है।

पर बेटी को मुहावरों या वाचालता का ओढ़ना-बिछौना नहीं चाहिए क्योंकि वह अपने और सिर्फ अपने फ़ैसलों की बिना पर अकेले रहने-जीने को तैयार है। माँ पूछती है, ''एक बात सच सच कहना! क्या किसी ने तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हें जाना है?'' जवाब नहीं मिलता क्योंकि लड़की को न अपने बचाव में कुछ कहना है, न दूसरों से सीख लेनी है। वह चुप रह कर या नपा तुला बोल कर माँ के हर सवाल का जवाब दे देती है। माँ कहती तो है, ''लड़की किसी का साथ पाकर हस्ती कुछ और हो उठती है, अंदर बाहर सब्ज़ा उगने लगता है।'' पर यह भी कहने से नहीं कतराती, ''घर का खेल बराबरी का नहीं ऊपर नीचे का है घर का स्वामी कमाई से परिवार के लिए सुविधाएँ जुटाता है, साथ ही अपनी ताकत कमाता बनाता है। इसी प्रभुताई के आगे गिरवी पड़ी रहती है बच्चों की माँ।'' कितना बड़ा आत्मनिवेदन है यह, छल कपट, रूढ़िगत मुहावरों से दूर। यही असल मर्म की बात है कि माँ लड़की को चाहे जितनी सीख दे, वह उसे खूब समझती है और कहीं उससे रश्क भी करती है। तभी दिल की बात कह जाती है, ''न भी हो दुनियादारी वाली चौखट, तो भी तुम अपने आप में तो आप हो। लड़की अपने आप में आप होना परम है, श्रेष्ठ है।'' लीजिए एक और मुहावरा इजाद हो गया। पर परंपरा को ठेंगा दिखलाता नया नकोर अपना गढ़ा मुहावरा। इसी में ऐ लड़की की सफलता है। मौत के करीब पहुँच कर एक वयोवृद्ध स्त्री पुराना मुहावरा बोलने के बाद खुद अपना गढ़ा नया मुहावरा बोलने की ताकत रखती है। उसकी उद्दाम जिजीविषा उम्दा और नफीस खानपान तक महफूज नहीं है, वह अपने अनुभव को नया करने को भी तैयार है।

दो ध्रुवों पर खड़ी माँ और बेटी एक दूसरे को समझ लेती हैं क्योंकि दोनों जानती है कि मुहावरों का सच, कवच भर है, असल सच तो कभी-कभार औचक जुबान से निकल जाया करता है। यह साझा अनुभव ''ऐ लड़की'' को कृष्णा सोबती की स्त्री भाषा की सफलतम अभिव्यक्ति बनाता है।

मुहावरों के अत्यधिक प्रयोग से मुझे डर लगता है। भुक्त भोगी हूँ; अनुभव से कह रही हूँ। हमारी एक परिचित हैं, जिनके पास मुहावरों का अक्षुण्ण भंडार है। आस-पड़ोस में, परिवार में, बड़ी-से-बड़ी त्रासदी घट जाए, वे विचलित नहीं होतीं। नमकीन फाँकते-फाँकते धड़ल्ले से मौजूँ मुहावरे बोलती जाती हैं। उन जैसे अनेक लोगों को झेलकर, मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि साहित्य हो या जीवन, मुहावरे या वह बोलता है, जो महसूस नहीं करता या वह, जो अपने पीड़ा के अहसास पर परदा डाले रखना चाहता है।

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में मुहावरों का प्रयोग कभी उत्कट अहसास या छिपी पीड़ा पर परदा डालने के लिए किया जाता है तो कभी उसे निजी से सार्जनीन बनाने की ललक से, ऐसी उत्सवी वाचालता के साथ कि वे भाषा को स्त्री तत्व से लबालब कर देते हैं। ''ज़िंदगीनामा'' की वाचालता से लेकर ''ऐ लड़की'' में लड़की की चुप्पी और उस चुप्पी के अनकहे सच से वाचाल माँ का साक्षात्कार, स्त्रीत्व की भाषा के विकास का सफर है। ज़िंदगी सिर्फ रहते हुए नहीं, खूब-खूब बहते हुए दिखलाने का सफर है। ❍❍❍

भारत की जरूरत है साहित्यिक पर्यटन

डॉ. पुनीत बिसारिया

वर्तमान समय में उपलब्ध तकनीकी दक्षता का लाभ साहित्य से जुड़े पर्यटन में भी प्राप्त किया जा सकता है। साहित्यिक विभूतियों से जुड़े स्थलों पर 'लाइट एंड साउंड इफेक्ट' से उनके जीवन से लोगों का परिचय कराया जा सकता है तो रोबोटिक्स एवं मॉडलों या प्रतिकृतियों की सहायता से उन्हें सजीव-सवाक बनाकर पर्यटकों को उनसे प्रत्यक्ष कराया जा सकता है। रोबोटिक्स एक ऐसा ही सफल प्रयोग इस्कॉन के मंदिरों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है और इससे मिलते-जुलते मॉडलों या प्रतिकृतियों के प्रयोग से एक निजी संस्था मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप के जीवन वृतांतों को वहाँ प्रस्तुत करके सैलानियों का ध्यान आकृष्ट कर रही है। ऐसे स्थलों पर सर्वसुविधाओं से युक्त होटल बनाकर उन्हें यहाँ तक आने हेतु और भी प्रेरित किया जा सकता है। इनसे साहित्यकार से जुड़ी घटनाओं का पुनर्सृजन किया जा सकता है और उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।

सम्पर्क: सह आचार्य-हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश-284128 ई-मेल: puneetbisaria8@gmail.com

भारत में साहित्य और पर्यटन के अंतर्संबंधों पर प्रायः चर्चा नहीं की जाती है। भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय तथा पर्यटन से जुड़े लोगों के बीच प्रायः पर्यटन के इस पक्ष को उपेक्षित छोड़ दिया जाता है और साहित्यिक पर्यटन के महत्व के प्रति आम जनता को न तो जागरुक किया जाता है और न ही इसकी महत्ता की ओर किसी का ध्यान जा पाता है। यदि हम विदेशों में पर्यटन के साहित्यिक महत्व पर गौर करें तो पाते हैं कि उनमें इसे सहेजने की ललक तो है ही, पर्यटकों को इस ओर खींचने की तीव्र स्पृहा भी है। स्कॉटलैंड की राजधानी एडिनबर्ग को तो 'सिटी ऑफ लिटरेचर' के नाम से पर्यटन के मानचित्र पर लाने के प्रयत्न किए जा रहे है, जिसमें वहाँ के एक ट्रस्ट ने अत्यंत महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। पहाड़ियों पर बसे इस शहर में साहित्य को स्ट्रीट तक लाने का अभिनव प्रयास किया गया है। इसके लिए पत्थरों पर मशहूर लेखकों की कहानियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं, वर्षपर्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक आयोजनों की वृहत् शृंखला तैयार की गयी है, विश्व के सबसे बड़े अंतरर्राष्ट्रीय पुस्तक फेस्टिवल के आयोजन इसमें शामिल किये गए हैं, संग्रहालयों तथा प्रदर्शनियों के माध्यम से साहित्य के प्रति पर्यटकों को आकर्षित किया गया है; इस शहर की साहित्यिक विभूतियों जैसे रॉबर्ट बर्न्स, सर वाल्टर स्कॉट, आर एल स्टीवेंसन, आर्थर कॉनन डॉयल, जे एम बैरी, एलेग्जेंडर मक्काल स्मिथ, इयान रैनकिन, जे के राउलिंग आदि के जीवन से जुड़े स्थलों का भ्रमण भी साहित्यिक पर्यटन के अंतर्गत कराया जा रहा है। इसके अतिरिक्त हैरी पॉटर तथा अनेक अन्य किताबों एवं आउटलैंडर टीवी सीरिज से जुड़े स्थलों का भी भ्रमण इस पर्यटन में कराया जा रहा है।

अन्य देशों में पिट्सबर्ग, ओहियो, साउथ डकोटा, सेंट मार्टिंस, विक्टोरिया, बुसान, जरलैंड (नार्वे), रिचमंड पेन्सिल्वेनिया, कोलंबिया, आयरलैंड, फ्लोरिडा, म्यूनिख, शिकागो, फीनिक्स, सीएटल, बेल्स, मिनीसोटा, टोक्यो आदि शहरों को भी लिटरेचर सिटी के रूप में विकसित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

इंग्लैंड में भी साहित्यिक पर्यटन की सुदीर्घ परंपरा रही है। वहाँ का नेशनल ट्रस्ट लिटररी टूर अपने पर्यटन कार्यक्रम के अंतर्गत जॉर्ज बर्नार्ड शॉ (शॉज कार्नर, वेल्विन), वर्जीनिया और वीटा सैक्विले-वेस्ट (केंट), चारलोट ब्रोंट (गोथोर्प हॉल), बीट्रिक्स पॉटर (कम्ब्रिया), विलियम वड्र्सवर्थ (वड्र्सवर्थ हाउस एंड गार्डन), जेन ऑस्टेन (नॉर्थगेर ऐबी), रुडयार्ड किपलिंग (ससेक्स होम, बैटमेन), टॉमस हार्डी (टॉमस हार्डी वे), अगाथा क्रिस्टी (ग्रीनवे) और कूलरिज (कूलरिज कॉटेज) की जन्मभूमि और कर्मस्थली का भ्रमण कराता है। शेक्सपियर बर्थप्लेस ट्रस्ट शेक्सपियर से जुड़े स्थलों स्ट्रेटफोर्ड अपॉन एवन आदि का भ्रमण कराता है तथा इनके अलावा 'विजिट इंग्लैंड' टैगलाइन से ब्रिटिश सरकार जॉन मिल्टन, जेम्स हैरियट, टोलकीन, सर वाल्टर स्कॉट, चार्ल्स डिकेंस आदि लेखकों-कवियों से जुड़े स्थलों का पर्यटक स्थलों के रूप में प्रचार करता है। अमेरिका में मार्क ट्वेन हाउस एंड म्यूजियम (हार्टफोर्ड, न्यूयॉर्क), अर्नेस्ट हेमिंग्वेज बर्थप्लेस एंड म्यूजियम, हरमन मेलविलेज ग्रेव, ओस्कर वाइल्ड्स चाइल्डहुड होम आदि पर्यटन स्थल हैं। रूस में लियो टॉलस्टॉय के घर को 'यास्राया पोल्याना' के नाम से जाना जाता है और यहाँ पर्यटकों की आवक लगी रहती है। नीदरलैंड के हेग शहर में स्थित स्पिनोजा का घर, स्विटजरलैंड के सिल्स मारिया में स्थित नीत्शे का घर, अर्जेंटीना के बयूनर्स आयर्स स्थित जॉर्ज लुई बर्गेज का घर, फ्रांस के पेरिस में स्थित बालजाक का घर, जर्मनी के त्रीर में स्थित कार्ल मार्क्स का घर, तुर्की में नोबेल पुरस्कार विजेता ओरहन पामुक द्वारा स्थापित ''द म्यूजियम ऑफ इनोसेंस, चेक गणराज्य के प्राग में स्थित काफ्का की कब्रगाह भी साहित्यिक पर्यटन की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

भारत में भी साहित्यिक पर्यटन को विकसित करने के प्रयास शुरू किए गए हैं। मई 2017 में महाराष्ट्र के भीलर गाँव को महाराष्ट्र सरकार के शिक्षा विभाग ने देश के पहले साहित्यिक पर्यटन ग्राम के रूप में विकसित करने का निर्णय लिया है लेकिन यह प्रयास अभी अपनी शैशवास्था में है और भारत सरकार अथवा किसी बड़े पब्लिशिंग हाउस या पूँजीपति ने विश्व भर में विकसित हो रहे इस नए पर्यटन बाजार की ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया है।

यदि भारत में भी साहित्यिक पर्यटन को बढ़ावा दिया जाए, तो साहित्य का भला तो होगा ही, देश को भी अमूल्य देशी-विदेशी राजस्व प्राप्त होगा।

भारत में साहित्यिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए मेरे विचार से निम्नांकित प्रयास किये जा सकते हैं-

(अ) साहित्यकारों के जन्मस्थलों अथवा समाधियों का पर्यटन केंद्रों के रूप में विकास।

(ब) साहित्यकारों के लेखकीय पड़ावों से जुड़े महत्त्वपूर्ण स्थलों का पर्यटन केंद्रों के रूप में विकास।

(स) साहित्यिक फेस्टिवलों के आयोजन।

(द) मशहूर फिल्मी या टीवी सेटों और लोकेशनों का पर्यटन केंद्रों के रूप में विकास।

(य) ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा का द्योतन करने वाले साहित्य में वर्णित स्थलों का पर्यटन केंद्रों के रूप में विकास।

(र) लाइट एवं साउंड तथा रोबोटिक्स एवं मॉडलों या प्रतिकृतियों के माध्यम से साहित्यिक घटना-साहित्यकार का पुनर्सृजन।

(व) जातक कथा, हितोपदेश, चंद्रकांता संतति, भूतनाथ, कॉमिक्स आदि का चित्रांकन किये गए स्थलों का पर्यटन में प्रयोग।

(श) नाटक, रंगमंच, फिल्म एवं धारावाहिकों के प्रदर्शन/मंचन।

(ष) लेखकों, कवियों, फिल्मकारों, चित्रकारों, मूर्तिकारों, संगीतज्ञों, गायकों, अभिनेताओं से आमने-सामने संवाद की व्यवस्था।

(स) सभी रचनाओं को ऑनइलान किया जाना तथा संग्रहालय और पुस्तकालय की व्यवस्था।

(ह) मैडम तुसाद की तर्ज पर साहित्यकारों की मोम की मूर्तियाँ स्थापित करना।

भारत साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। प्राग्वैदिक काल से आज तक अनेक कवियों, रचनाकारों ने अपनी लेखनी से इस धरा के भाल को गर्वोन्नत किया है। ऐसे रचनाकारों की जन्म-मृत्यु अथवा कर्मभूमि से जुड़े स्थलों का विकास करके प्रवासी भारतीयों तथा देश में उनके कद्रदानों को वहाँ तक लाने का प्रयास किया जा सकता है। वेद व्यास (कालपी, जालौन, उत्तर प्रदेश), वाल्मीकि (बागपत, उत्तर प्रदेश), तुलसीदास (राजापुर, बाँदा), मिर्जा ग़ालिब और मीर तकी मीर (आगरा, उत्तर प्रदेश), सुब्रह्मण्यम भारती (चेन्नई, तमिलनाडु), रवींद्रनाथ टैगार (कोलकाता, पश्चिम बंगाल), कबीर, प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद (वाराणसी), मैथिलीशरण गुप्त (चिरगाँव, झांसी) आदि से जुड़े स्थलों का विकास किया जा सकता है और देश के प्रत्येक प्रांत, प्रत्येक भाषा के बड़े कवियों से जुड़े स्थलों का इसी प्रकार पर्यटन को ध्यान में रखते हुए विकास किया जा सकता है। मेरा सुझाव है कि देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय-महाविद्यालय-माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थियों का साहित्यिक अध्ययन भ्रमण अनिवार्य किया जाना चाहिए और इन्हें अपनी मातृभाषा से इतर दूसरी भाषा के रचनाकारों से जुड़े स्थलों का भ्रमण भी कराया जाना चाहिए तथा भ्रमण से वापस आने के पश्चात इन विद्यार्थियों का दूसरे स्थानों तथा वहाँ के रचनाकारों के बारे में एक संक्षिप्त लेख या असेसमेंट जमा करना चाहिए ताकि देश के सभी विद्यार्थियों का दूसरे स्थानों तथा वहाँ के रचनाकारों से जुड़ाव हो सके। इसे उत्तीर्ण करना अनिवार्य भी किया जा सकता है। देश में परस्पर साहित्यिक समझ को विकसित करने हेतु साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन देना चाहिए। इसके लिए पाठ्यक्रम में भी समुचित परिवर्धन किये जा सकते हैं।

देश में साहित्यिक फेस्टिवलों की अवधारणा अब तेजी से अपनी जड़ें जमाने लगी है। जयपुर तथा कुछ अन्य शहरों में शुरू हुए लिटरेचर फेस्टिवल तथा पुस्तक मेलों ने आम लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। इन्हें और व्यवस्थित तथा पर्यटनोपयोगी बनाए जाने की आवश्यकता है। इन्हें अंग्रेजी तक सीमित न रखकर भारतीय भाषाओं से भी जोड़ने की आवश्यकता है।

फिल्मी और टीवी सेटों और लोकेशनों को भी पर्यटन की दृष्टि से सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है। अक्सर शूटिंग के बाद फिल्म के लिए बनाये गए सेट तोड़ दिए जाते हैं और देश की अमूल्य मुद्रा को बर्बाद कर दिया जाता है। इसके सथान पर इन सेटों को पर्यटन से जोड़ा जा सकता है। मुगले आजम, रूप की रानी चोरों का राजा, बाहुबली जैसी असंख्य फिल्मों के कीमतों सेटों को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार शोले का कर्णाटक स्थित गाँव जो अब रामगढ़ कहलाता है, जबलपुर का भेड़ाघाट, जहाँ अनेक फिल्मों की शूटिंग हुई, राजस्थान के किले तथा देश भर में बिखरी अनेक अन्य शूटिंग लोकेशनों, जिन पर हिट और क्लासिक फिल्मों की शूटिंग हुई हो, का पर्यटन की दृष्टि से विकास किया जा सकता है।

साहित्य में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनका सांस्कृतिक, ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व निर्विवाद है। ऐसे स्थलों की पहचान करते हुए इनका पर्यटन की दृष्टि से महत्व स्थापित किया जा सकता है। कालिदास के मेघ के सथलों से लेकर वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में वर्णित स्थलों से होते हुए अब तक की क्लासिक रचनाओं को विकसित करने का काम सरकारी-गैर सरकारी स्तर पर किया जा सकता है। विदेशों में सरकारों के साथ गैर सरकारी संस्थाएँ भी इस दिशा में अग्रसर हैं और भारी मुनाफा कमा रही हैं।

वर्तमान समय में उपलब्ध तकनीकी दक्षता का लाभ साहित्य से जुड़े पर्यटन में भी प्राप्त किया जा सकता है। साहित्यिक विभूतियों से जुड़े स्थलों पर 'लाइट एंड साउंड इफेक्ट' से उनके जीवन से लोगों का परिचय कराया जा सकता है तो रोबोटिक्स एवं मॉडलों या प्रतिकृतियों की सहायता से उन्हें सजीव-सवाक बनाकर पर्यटकों को उनसे प्रत्यक्ष कराया जा सकता है। रोबोटिक्स एक ऐसा ही सफल प्रयोग इस्कॉन के मंदिरों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है और इससे मिलते-जुलते मॉडलों या प्रतिकृतियों के प्रयोग से एक निजी संस्था मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप के जीवन वृतांतों को वहाँ प्रस्तुत करके सैलानियों का ध्यान आकृष्ट कर रही है। ऐसे स्थलों पर सर्वसुविधाओं से युक्त होटल बनाकर उन्हें यहाँ तक आने हेतु और भी प्रेरित किया जा सकता है। इनसे साहित्यकार से जुड़ी घटनाओं का पुनर्सृजन किया जा सकता है और उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।

देश की अनेक ऐसी अमर साहित्यिक कृतियाँ हैं, जो आम जनता के लिए कंठहार बनी हुई हैं। यदि संस्कृत और हिंदी साहित्य में ही देखें तो वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास से लेकर कबीर, सूर, तुलसी, रहीम, मीरा, जायसी, देवकीनंदन खत्री, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, धर्मवीर भारती से होते हुए श्रीलाल शुक्ल आदि तक तथा इससे आगे भी आज तक ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी रचनाएँ आम जन न सिर्फ पढ़ते हैं, अपितु आपसी वार्तालाप में यथास्थान संदर्भित भी करते हैं। रामायण, महाभारत, जातक कथा, हितोपदेश, कबीर की साखियाँ और दोहे, सूर के पद, तुलसी विरचित रामचरितमानस तथा अन्य ग्रंथ, रहीम और मीरा की रचनाएँ, जायसी का पद्मावत, देवकीनंदन खत्री रचित चंद्रकांता संतति और भूतनाथ, प्रेमचंद की कहानियाँ और उपन्यास, प्रसाद के नाटक, कहानियाँ और काव्य रचनाएँ, निराला का काव्य और गद्य, धर्मवीर भारती का उपन्यास गुनाहों का देवता, श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास राग दरबारी आदि को चित्रांकित अथवा ऑडियो-विजुअल माध्यम से प्रस्तुत करते हुए पर्यटकों को इस ओर आकर्षित किया जा सकता है। बच्चों को भी पर्यटन में साहित्य को सरल एवं सहज भाषा में चित्रांकित अथवा ऑडियो-विजुअल माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। यहीं नहीं, कॉमिक्स के कुछ लोकप्रिय पात्रों तथा उनकी कहानियों को भी इसका अंग बनाया जा सकता है।

साहित्यिक विरासत को अमर तथा आम जनता के सदैव जोड़े रखने के लिए प्रत्येक बड़े शहर में प्राय: नाटक, रंगमंच, फिल्म एवं धारावाहिकों के प्रदर्शन/मंचन होता रहता है। इसे साहित्यिक पर्यटन सर्किट से जोड़कर और भी प्रभावशाली बनाया जा सकता है। महत्त्वपूर्ण रचनाकारों की जयंतियों, पुण्यतिथियों, जन्मशती वर्ष आदि के उपलक्ष्य में विशेष आयोजन किये जा सकते हैं और विषय से जुड़े विशेषज्ञों को व्याख्यान हेतु आमंत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कलाओं के फ्यूजन से साहित्य के प्रति लोगों की उत्सुकता को बढ़ाया जा सकता है। जैसे किसी रचनाकार की कृति का एक विधा से दूसरी विधा में अंतरण, गद्य की संगीतमय प्रस्तुति, कविताओं का चित्रांकन आदि। इन आयोजनों से प्राध्यापकों, विद्यार्थियों तथ आम जनता को जोड़ने के लिए इनका इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया, यूट्यूब आदि पर प्रचार भी नि:शुल्क एवं सशुल्क किया जा सकता है। यूट्यूब आदि प्लेटफार्मों पर इनका सशुल्क प्रदर्शन कर भी मुद्रा कमाई जा सकती है।

साहित्यिक पर्यटन में चर्चित लेखकों, कवियों, फिल्मकारों, चित्रकारों, मूर्तिकारों, संगीतज्ञों, गायकों, अभिनेताओं से आमने-सामने संवाद की व्यवस्था भी निर्धारित समय तथा तिथियों पर रखी जा सकती है, जिसमें इनका आम लोगों से प्रत्यक्ष जुड़ाव हो और ये आम जनता की नब्ज़ को पकड़कर और बेहतर तरीके से अपनी कला को प्रस्तुत कर सकें।

अनेक बार ऐसा होता है कि महत्वपूर्ण ग्रंथ हमें चाहकर भी प्राप्त नहीं हो पाते। ऐसे में साहित्यिक पुस्तकालय और संग्रहालय की उपयोगिता स्वत: सिद्ध है। इसके लिए सभी रचनाओं को ऑनलाइन किया जाना चाहिए और यह भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि अमुक कृति अमुक पुस्तकालय या संग्रहालय में उपलब्ध है, जिससे पाठक या अनुसंधाता वहाँ जाकर उक्त रचना ले सके।

विश्व के अन्य अनेक देशों की भाँति भारत सरकार द्वारा देश के किसी एक शहर को 'भारत का साहित्यिक शहर' घोषित किया जाना चाहिए और उस शहर को साहित्यिक दृष्टि से समग्र रूप में विकसित किया जाना चाहिए एवं उस शहर में मैडम तुसाद के संग्रहालय की तर्ज पर देश के सभी महत्त्वपूर्ण रचनाकारों की मोम की मूर्तियाँ स्थापित की जानी चाहिए। विवादों से बचने के लिए रचनाकारों के चयन हेतु सभी भाषाओं के महत्त्वपूर्ण कवियों-लेखकों की एक समिति को इसे तय करने का अधिकार दिया जाना चाहिए कि किस रचनाकार की मूर्ति लगाई जाएगी। इसके लिए उद्योग जगत की भी सहायता ली जा सकती है और साहित्य अकादमी जैसी समस्त भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था को इससे जोड़ा जा सकता है।

साहित्यिक पर्यटन विश्व भर में तेजी से विकसित हो। पर्यटन वह नवीनतम प्रक्षेत्र है जो आम जन की मानसिक खुराक के लिए भी आवश्यक है। यदि सरकार तथा निजी क्षेत्र इस अपार संभावनाओं वाले क्षेत्र पर अपना ध्यान केंद्रित करें तो न सिर्फ आतंकवाद, हिंसा और क्रूरता से जूझ रहे विश्व विशेषकर भारत में साहित्य की मधुर रसधारा प्रवाहित की जा सकती है और आम जन को तोष प्रदान किया जा सकता है। ❍❍❍

हबीब तनवीर के नाटक में लोक तत्व

रैना पी

हबीब तनवीर के नाटक में छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति का सख्त प्रभाव देख सकते हैं। हबीब तनवीर के रंगकर्म और चिंतन में छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य रूप 'नाचा' का सहज प्रभाव है। छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य 'नाचा' लोक जीवन की विशद और सशक्त अभिव्यक्ति है। उसमें जनजीवन की हर अनुभूतियों एवं संघर्षों की यथार्थपरक तथा कल्पनात्मक अभिव्यक्ति मौजूद है, जो उसकी उल्लास की मिठास और विजय की मुस्कान है। दरअसल 'नाचा' का मतलब है नृत्य। 'नाचा' वास्तव में नृत्य भाव और मुद्राओं का लयात्मक संसार है। यह समय के साथ चलते हुए चुभन और तकलीफ पैदा करने वाली स्थितियों के प्रति व्यंग्य है। यह व्यंग्य अपने समय के समाज की कलुषता, विद्रूपता और अमानवीय एवं रूढ़ कर्मों का अस्वीकार और मुखर विद्रोह है।

भारतीय रंगमंच को नए स्तर एवं नई पहचान दिलाने वालों में हबीब तनवीर का नाम उल्लेखनीय है। नाटककार, पटकथा लेखक एवं निर्देशक के रूप में प्रसिद्ध हबीब तनवीर ने 'ब्रेख्त' के नाटक साहित्य के प्रभाव से हिंदी रंगमंच में नई शैलियों का आविष्कार किया है। उन्होंने लोक रंगमंच और लोक कलाकारों के भरपूर प्रयोग द्वारा 'नया थिएटर' का नींव डाली है, जिसके द्वारा हिंदी रंगमंच को प्रतिभायुक्त कलाकारों एवं नए-नए शैलीयुक्त नाटक भी प्राप्त हुए और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भी हिंदी नाटकों का खेल हुआ। वास्तव में हबीब तनवीर हिंदी रंगमंच के हीरे की अंगूठी हैं। उनकी वजह से हिंदी रंगमंच को नया आयाम मिला है। हिंदी रंगमंच पर हबीब तनवीर का पदार्पण तभी हुआ जब हिंदी रंगमंच पश्चिम रंगमंच के अनुकरण से जूझ रहे थे। भारतीय रंगमंच पर पाश्चात्य रंगमंच जब पूर्ण रूप से अपना वर्चस्व स्थापित किया था, तभी तनवीर ने नए मुहावरों का सृजन कर उसे अपनी देश की जड़ों से जोड़ने का काम किया है। भारतीय रंगमंच यहाँ की संस्कृति एवं जीवन परिवेश से युक्त ऐसा रंगमंच है जिसमें जनता की जीवन की पूरी संस्कृति को समाहित करने की शक्ति निहित है। भारत में नाटक कला की शुरुआत लोक जीवन के परिवेश से हुआ है, लोक के अनुष्ठानपरक नृत्य एवं गीतों के माध्यम से ही नाटक का आविर्भाव हुआ है। हबीब तनवीर ने भारतीय रंगमंच के सहज स्वरूप की ओर ध्यान देकर तथा परंपरागत रंग शैलियों के पुनराविष्कार द्वारा हिंदी नाटक साहित्य और रंगमंच को नया आयाम दिया है। हबीब तनवीर के अनुसार ''शहरी रंगमंच ने जो स्वरूप हमारे समाने स्थापित किया है, वह पश्चिमी थिएटर से माँगा हुआ है और हमारी देश की सामयिक बुनियादी समस्याओं, सांस्कृतिक बुनावट, जीवन पद्धतियों और सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने में एकदम असमर्थ है। भारतीय संस्कृति के स्वरूप की सही पहचान हमें भारत के देहातों, गाँवों और कस्बों में मिलती है, यहाँ के गाँवों में ही हमें अपनी प्राचीन गौरवशाली नाट्य परंपराओं के संदर्भ-संकेत

सम्पर्क: शोधार्थी कन्नूर विश्व विद्यालय, कन्नूर, केरल,
मो: 9895507487, ई-मेल: raheeena261@gmail.com

मिलते हैं जो आज भी बरकरार हैं''। इसलिए ही तनवीर ने गाँव की रंगमंच को यानी लोक रंगमंच को अपनाया है। उनके रचनाकर्म की मुख्य धुरी लोक जीवन है।

हबीब तनवीर का पूरा रंगमंच लोक के आलोक से दीपित है। हिंदी रंगमंच में नाटककारों काफी पहले से लोक एवं लोक तत्वों को अपनी सर्जनात्मकता का माध्यम बनाया था, लेकिन हबीब तनवीर ही वह पहला शख्स हैं जिन्होंने अपने रचना कर्म के रेशे-रेशे में लोक से ऊर्जा ग्रहण कर अपने पूरे सृजनात्मक अभिव्यक्ति को पूर्ण रूप से लोक जीवन से जोड़ा है। वे पहचानते थे कि लोक में आंतरिक सच की मात्रा अधिक है। समसामयिक सच के उद्घाटन के लिए लोक अत्यंत उपयुक्त एवं सशक्त साधन है। उनके लोक रंगमंचीय हस्तक्षेप ने हिंदी रंगमंच को नवीन दिशा प्रदान की। उनके नाटक साहित्य में लोक जीवन के सभी पहलू अपनी सहजता के साथ पूर्ण रूप से झलकते हैं। तनवीर का नाटक साहित्य लोक तत्वों से भरपूर है, उसमें लोक भाषा, लोक साहित्य के सभी पहलुओं यानी लोक कथा, लोक नाट्य, लोक गीत, लोक गाथा, लोक संस्कृति, लोक परंपरा, लोक विश्वास सब कुछ है। असल में तनवीर का नाटक साहित्य लोक संस्कृति का दर्पण है। उनके नाटक के कलाकार भी लोक जगत से जुड़े हुए हैं। उन्होंने प्रतिभासंपन्न परिचित कलाकारों का इस्तेमाल न कर गाँव बस्ती के जन साधारण को कलाकार के रूप में चुनकर नया इतिहास रचा है। अंग्रेजी नाटकों के हिंदी मंचीकरण में भी छत्तीसगढ़ी कलाकारों ने ही पात्रों की भूमिका निभाई है। वास्तव में उन्होंने परंपरागत रंग शैलियों के पुनराविष्कार द्वारा नाटक साहित्य और रंगमंच को नया आयाम दिया है। परंपरागत शैलीयुक्त नाटक साहित्य होने पर भी उसमें किसी भी प्रकार की दुरूहता नहीं है। भारत रत्न भार्गव के अनुसार ''हबीब तनवीर के नाट्य साहित्य में दुरूहता की कोई गुंजाइश नहीं है। उनके नाटक में एक स्वाभाविकता है। उन्होंने ठेठ गीत-संगीत और नृत्य के माध्यम से एक ऐसी शैली तैयार की जो दर्शक वर्ग को एकदम काबू में करने वाले थे''।

मानव के हृदय पक्ष को पुष्ट करने वाली सामाजिकता ही तनवीर के नाटकों की विशेषता रही है। आधुनिक युग में पूँजी के विस्तार के परिणामस्वरूप समाज और संस्कृति के पोषक तत्व हाशिए पर डाल दिये गए हैं और आभिजात वर्ग की सोच ने हर क्षेत्र पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। समाज में मानवता पर टिकी सामाजिकता का संचार होने लगा है और पूँजी के विस्तार के कारण समाज में वैयक्तिकता का व्यापन होता है, जिससे मानव की संग्रहित शक्ति नष्ट होती है, जो मानव के भीतर असांस्कृतिक तत्वों के पल्लवन का कारण बन जाता है। इसका प्रतिरोध करना मानव के अंतर्गत उपस्थित मानवीयता के अंश को बचाने के लिए अत्यंत आवश्यक है, ऐसे अवसर पर ही तनवीर लोक पर आधारित अपने रचना कर्म द्वारा मानविकता का संचार करना चाहते हैं। सामाजिकता पर आधारित मानवता की स्थापना ही तनवीर के नाट्य दर्शन का बुनियाद है। गंभीर लोक संस्कृति को आत्मसात करने का कारण भी यही है। जयदेव तनेजा के अनुसार ''भारतीय रंग अस्मिता के पुनरावेषण, क्लासिकी और लोक रंग तत्वों के अनिवार्य अंत:सूत्रों के कल्पनाशील प्रयोग और अपनी देशज विरासत की मौलिक ऊर्जा को अधिक परिष्कृत और विस्तारशील बनाने वाले अनूठे रंगकर्मी हबीब तनवीर के नाटक साहित्य की समस्त धुरी 'मनुष्य' है। आम आदमी के दुख-सुख, आस्था-विश्वास और अनंत संघर्ष की जैसी सहज, सरल, आत्मीय, विश्वसनीय और प्रभावशाली अभिव्यक्ति जिस प्रकार आपके नाटक में हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है'' वास्तव में लोक व्यापक सामाजिकता का द्योतक है, वह आधुनिक खोखले जीवन से मुक्त सहज-स्वाभाविक जीवन जीने वाले मानवगण है। सत्येंद्र की राय में ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संसार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वही लोकतत्व कहलाता है''। प्रकृति के प्रांगण में सामूहिक जीवन बिताने वाले लोक के सहज एवं स्वाभाविक समस्त अभिव्यक्ति को यदि लोक तत्व कहें तो उसमें अस्वाभाविकता का गुंजाइश नहीं रहेगी। उनके सारे भावात्मक अभिव्यंजना के मूल में मानव की सामाजिकता का अंश जुड़ा हुआ है। तात्पर्य यह है कि लोकाभिव्यक्ति के अंदर जितने लोक तत्व सन्निविष्ट हैं, वे सब मानव की सामाजिकता यानी सामूहिक जीवन का परिणाम है। वास्तव में साहित्य के भीतर सन्निविष्ट लोकतत्व की विराटता ही साहित्य की गरिमा का आधार है, वही साहित्य को कालजयी बनाता है।

हबीब तनवीर के नाटक में छतीसगढ़ी लोक संस्कृति का जमकर प्रभाव देख सकते हैं। हबीब तनवीर के रंगकर्म और चिंतन में छतीसगढ़ी लोक नाट्य रूप 'नाचा' का सहज प्रभाव है। छतीसगढ़ी लोक नाट्य नाचा लोक जीवन की विशद और सशक्त अभिव्यक्ति है। उसमें जनजीवन की हर अनुभूतियों एवं संघर्षों की यथार्थपरक तथा कल्पनात्मक अभिव्यक्ति मौजूद है, जो उसकी उल्लास की मिठास और विजय की मुस्कान है। दरअसल 'नाचा' का मतलब है नृत्य। 'नाचा' वास्तव में नृत्य भाव और मुद्राओं का लयात्मक संसार है। यह समय के साथ चलते हुए चुभन और तकलीफ पैदा करने वाली स्थितियों के प्रति व्यंग्य है। यह व्यंग्य अपने समय के समाज की कलुषता, विद्रूपता और अमानवीय एवं रूढ़ कर्मों का अस्वीकार और मुखर विद्रोह है। असल की नकल से असल को सम्प्रेषित कर 'नाचा' यह कर्म करता है। तनवीर ने नाचा की इस शैली को अपनाकर अपने सारे रचनाकर्म को समसामयिक जीवन यथार्थ से जोड़ दिया है। उन्होंने वास्तव में लोक नाट्य की सारी शैलीगत व कथ्यगत विशेषताओं को अपनाया है। उनके नाटक बने-बनाए फ्रेम में फिट नहीं होता। उदाहरणार्थ उनके नाटकों के मंचीयन के अवसर पर दर्शक उसमें भाग ले सकता है, अपना संवाद प्रस्तुत कर सकता है। 'नाचा' शैली के कारण तनवीर के संपूर्ण नाटक साहित्य में जाति विशेष के परंपरागत लोक गीत, लोक नृत्य पर्व-त्योहार एवं किंवदंती की झलक विद्यमान है। परंपरा द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने वाले पंथी गीत, पंथी नृत्य, फकीर गायन, बाँस गीत, ददरिया, सुआ गीत, विवाह गीत, करमा नाच, राउत नाच तथा विभिन्न प्रकार के तीज त्योहारों के भरपूर प्रयोग द्वारा लोक परंपरा के विविध सोपानों को जनता के सामने लाया गया है। उनका अटूट विश्वास यही था कि लोक की परंपरा को रंगमंच से बाहर करना समीचीन नहीं है। इस प्रकार तनवीर ने अपनी रचनाधर्मिता एवं रंगधर्मिता के माध्यम से हिंदी नाटक में आधुनिकता का संचार किया।

हबीब तनवीर के नाटक में लोक परंपरा के आधार पर प्रवाहित सभी प्रकार के लोक तत्व मौजूद हैं। लोक परंपरा की आत्मछवि का अविभाज्य अंग हैं जो मौखिक रूप से प्रेषित है। लोक में परंपरा सांस्कृतिक समुन्नय का लक्षण है। यह क्रियाशील जीवन की प्रणाली भी है, जो सामाजिक प्रकार्यों को गति देता है। लोक परंपरा से प्रवाहित विभिन्न प्रकार की लोक कथाएँ ही तनवीर के नाटक साहित्य का कलेवर है। हबीब तनवीर ने अपने समय की समस्याओं को अपने नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसके लिए उन्होंने लोक कहानी का संबल लिया है। लोक कथा को पुनर्जीवित करके उसको युग के अनुरूप पेश करने का काम प्रगतिशील अवश्य है। 'चरनदास चोर' तनवीर का काफी प्रसिद्ध नाटक है जिसका खेल अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भी हुआ है, जो राजस्थानी लोक कथा पर अवलंबित है। विजयदान देथा की कहानी 'सच्चाई की बिसात' से तनवीर ने इस नाटक का कथानक निर्मित किया है। 'चरनदास चोर' कॉमेडी इन ट्रेजडी का प्रभाव ग्रहण करता है। चरनदास का चोरी करना, गुरु के समक्ष सत्य का प्रण लेना, गुरु को दिए वचन को निभाते हुए रानी के द्वारा मारा जाना, यही नाटक का कलेवर है। यह सभी बातें प्रारंभ में दर्शक में हास्य व्यंग्य और कौतूहल का रस घोलती है। परंतु बाद में सत्य के प्रण को निभाते हुए रानी द्वारा उसकी हत्या गहरे संत्रास, पीड़ादायी दुखांतक की सृष्टि करता है। उदाहरण देखिए—

> एक चोर ने रंग जमाया...2
> एक चोर ने रंग जमाया जी सच बोलके
> संसार में नाम कमाया...2
> संसार में नाम कमाया जी सच बोलके
> चोरी ही उसका नसीब था, पैसे वाला था गरीब था
> बस उसका ये किस्सा अजीब था सच बोलके...2
> भागशाली आभागा कहाया...2
> भागशाली अभागा कहाया जी सच बोलके
> एक चोर ने...
> धोखो में गुरु को वचन दिया, सच्चाई निभाने का प्रण किया
> और ऐसा कि पूरा निभा लिया सच बोलके...2
> चोर चरनदास कहलाया...2
> चोर चरनदास कहलाया जी सच बोलके
> एक चोर ने...2

प्रस्तुत नाटक के द्वारा तनवीर ने समसामयिक राजनीतिक हलचलों का चित्रण किया है। लोक कथा में उन्होंने पंथी परंपरा का भी समावेश कर समाज में सत्य एवं न्याय का संचार करने का प्रयत्न किया है। पंथी छतीसगढ़ी का एक जाति

विशेष है जो सतनामी संत परंपरा से जाने जाते है। सतनामी संतों के पंथी गायन एवं नृत्य के द्वारा तनवीर ने चरनदास चोर नाटक के उद्देश्य को दर्शकों के सामने रखा है। पंथी गायन के द्वारा तनवीर ने सत्कार्य करने की ओर इशारा किया है। मिसाल देखिए–

सत्यनाम सत्यनाम सत्य नाम सार
गुरु महिमा अपार अमृत धार बहाइदे
हो जाही बेड़ा पार, सत्य गुरु ज्ञान लखइदे
सत्य लोक से सत गुरु आये हो...2
अमृत धार ला संत बर लाये हो...2
अमृत देके बाबा कर दे सुधार
तर जाही संसार...
अमृत धार...
सत्यनाम...
सत के तराजू में दुनिया ला तौलो हो...2
गुरुजी बताइने सच सच बोलो हो...2
सच के बोलइया मन हावे दुई चार
वही गुरु हे हमार...
अमृत धार बहाइदे
हो जाही बेड़ा पार, सतगुरु ज्ञान लखइदे
सतनाम...

तनवीर के अधिकांश नाटकों की रचना लोक कथाओं को लेकर हुई है। 'गाँव का नाँव ससुरार मोर नाँव दमाद' की कहानी भी छतीसगढ़ी लोक कहानी का प्रश्रय ली हुई है। अलग–अलग तीन लोक कथाएँ, 'छेरी–छेरा', 'बुढ़वा विवाह' और 'देवार देवारिन' के संयोग गाँव का नाँव ससुरार मोर नाँव दमाद बना है तो, मध्यप्रदेश के आदिवासी कस्बे में प्रचलित लोक कथा के अनुसार 'बहादुर कलारिन' भी बना है। कभी–कभी लोक कथाएँ मिथक का रूप भी ग्रहण करता है। लोक जीवन में प्रचलित किंवदंतियाँ ही बाद में लोक मिथक बन जाती हैं। बहादुर कलारिन आदिवासियों की बीच प्रचलित लोक कथा पर आधारित है। प्रस्तुत लोक कथा को मिथक के रूप में रूपांतरित कर तनवीर ने लोक में प्रचलित पौराणिक रूपकों के रहस्य को व्यक्त करने के साथ ही उनके जीवन मूल्यों की ओर जिक्र किया है।

'बहादुर कलारिन' के मिथकीय कथा के साथ तनवीर ने सोफोक्लीज के विश्वप्रसिद्ध यूनानी नाटक राजा इडिपस और फ्रायड के इंसेस्ट प्रभाव को मिलाकर 'बहादुर कलारिन' नाटक का लेखन और निर्देशन किया है। छतीसगढ़ अंचल विशेष में प्रचलित 'बहादुर कलारिन' मिथक का मिसाल देखिए—बहादुर खूबसूरत औरत थी उसका सुंदरता उतनी मशहूर थी जितनी उसकी शराब। छछान उसकी एकमात्र लड़का है, जिसकी एक सौ छब्बीस शादियाँ हो चुकी हैं, लेकिन वह असंतुष्ट रहा। अंत में जब वह अपनी माँ को वासना की नज़र से देखा तो बहादुर दंग रह गई और खुद बहादुर ने छछान को कुएँ में धकेलकर मार डाला और बाद में अपने सीने में कटार भोंक ली और कुएँ में कूद ली। उसके बाद लोगों ने देखा कि कुएँ में से एक पौधा उग गया है जिसमें रंग–बिरंगे पत्तियों वाले फूल हैं। अलग–अलग रंग के फूल नहीं, एक ही फूल में अलग–अलग रंग की पत्तियाँ थीं। जो–जो रंग उस फूल में थे वे सब बहादुर के उन गहनों के रंग प्रदर्शित कर रहे थे जो उसने मरते वक्त पहन रखे थे। तनवीर ने जिसे एक लोक गीत द्वारा फरमाया है।

थोरकेच में चोला हा जुडाथे
रंग बिरंगे येमा फुल फिलथे रे सुआ
देख मेबड अचरज आथे
स्वर्ग बनगे बस्ती भर हा
हमर जुन्ना सोररगढ़ के, सुंदर पेड़ के सुवा फूल हा भाव थे सघोला
पेड़ ला चिन्ह ले सुवा फुल के रंग सुंदर
बहादुर कलारिन के ये चोला
सुनहिया सोचरी अलकरहा बहादुर के किस्सा...
रूख राई अउ कुआँ बऊली मंदिर बनगे सोन मचोली (79)।

छतीसगढ़ के हर कस्बे में बहादुर कलारिन की वीरगाथा से जुड़े हुए इस मिथ के प्रति संपूर्ण आस्था और विश्वास तथा पूजा भाव देख सकते हैं। लोक मानस जीवन–मूल्यों की रक्षा के लिए ही मिथकों पर विश्वास रखते हैं। 'बहादुर कलारिन' का मिथ सामाजिक–मूल्यों का संचार करता है। रिश्तों के बीच पवित्रता को बरकरार रखने के लिए ही इस मिथक का प्रयोग किया है। वास्तव में यह मूल्यों की रक्षा के लिए लोक के

संघर्ष और उस संघर्ष में मिथकों पर आस्था और विश्वास हैं। उनके लिए जीवन-मूल्य ही सर्वोपरि है।

तनवीर ने सभी प्रकार के लोक तत्वों का प्रयोग किया है। लोक कथा एवं मिथक के तरह ही विभिन्न प्रकार के उत्सव-पर्वों एवं रीति-रिवाजों तथा विभिन्न प्रकार के लोक गीतों का भरपूर प्रयोग अपने नाटक में किया है। 'गाँव का नाँव ससुरार मोर नाँव दमाद' लोक प्रचलित छेर-छेरा एवं गौरा-गौरी पर्व की पृष्ठभूमि में बना है। छतीसगढ़ में शरद पूर्णिमा के दिन एक त्योहार मनाया जाता है जिसे छेर-छेरा या छेरी-छेरा कहते हैं जो छतीसगढ़ लोक जीवन का अभिन्न अंग है। उस दिन 'छेरी के देरा छर मरकरीन छेर छेरा' कहकर नौजवान लड़के अनाज और सब्जी लोगों से माँगकर जमा करते हैं। यह छतीसगढ़ में प्रचलित परंपरागत रीति-रिवाज है। इस प्रकार जमा किए गए अनाज द्वारा पूरे गाँव वालों के लिए भोजन तैयार किया जाता है। यहाँ लोक के बीच का सौहार्द भाव, भाईचारा, परस्पर सहयोग भाव एवं प्यार की भावना दृष्टिगत है। यही नहीं छेर-छेरा वास्तव में समाज में सामाजिकता का संचार करता है, तनवीर ने खोए हुए सामाजिकता की तलाश के लिए ही छेर-छेरा उत्सव को पृष्ठभूमि बनाया है। प्रस्तुत नाटक की कथा वस्तु छेर-छेरा के माध्यम से आगे बढ़ती है। नाटक में छेर-छेरा के अवसर पर झंगलू और मंगलू गाँव के दो लड़के खेल-खेल में शान्ती और मांती से भिड़ जाते हैं लेकिन यह संघर्ष झंगलू और मांती के बीच प्रेम का बीज बो देता है। गाँव की सामाजिकता में ऐसा होता रहा है कि लड़का और लड़की ऐसी नोक-झोंक और खेल-खेल में प्रेम कर बैठते हैं और यह प्रेम फिर अपनी प्रगाढ़ता में रंग जाता है, जैसे गोपियाँ और कृष्ण का स्वाभाविक प्रेम। इस प्रेम कहानी को 'ददरिया' गीत द्वारा तनवीर ने पेश किया है। ददरिया प्रेमगीत है, जो छतीसगढ़ में काफी प्रसिद्ध है। ददरिया सवाल जवाब के द्वारा गाया जाता है। उदाहरण देखिए—

हो साँवर गोरिया हो, हो साँवर गोरिया
घेरी बेरी करत है सिंगार सँवर गोरिया
घेरी बेरी करत है सिंगार सँवर...
वाहक मदुवा के कोई बाते न पूछो...2
नस, नस चढ़ये खुमार सँवर गोरिया
आज सजन घर में होली मची है...2
भर भर मारे पिचकारी हो सँवर गोरिया...
आज सँवर गोरिया करे रे सिंगार... 2।

इसी नाटक में गौरा-गौरी त्यौहार को चित्रित किया है। गौरा-गौरी उत्सव कथावस्तु को उत्कर्ष तक पहुँचाता है। इसमें शिव विवाह के मिथ का भरपूर प्रयोग किया गया है। शिव विवाह के इस मिथ में शिव के विवाह का तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में एक सुनिश्चित उद्देश्य दिखायी देता है। प्रस्तुत नाटक में अनमेल विवाह की प्रथा को खतम करने के लिए ही प्रस्तुत मिथक का सहारा लिया है। उत्सव के अवसर पर लोक गौरा-गौरी के विवाह करते हैं सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए ऐसा करते हैं। लोक परंपराओं में छिपी हुई सांस्कृतिक विरासत का पोल तीज-त्यौहारों के समय खुल जाता है। लोक परंपरा के अनुसार गौरा-गौरी उत्सव का आयोजन मात्र परंपरा निर्वाह नहीं है वरन् समाज विरोधी तत्वों के संघर्ष में नई शक्ति नई ऊर्जा प्राप्त करने तथा अपने मानवतावादी सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करने के प्रति संकल्प का आयोजन है। लोक परंपरा के प्रयोग द्वारा तनवीर जी ने नाटक को जीवंत बनाने के साथ ही उसे जन संस्कृतिमय भी बनाया है। परंपरागत लोकोत्सव के चित्रण द्वारा समूचे वातावरण को आध्यात्ममय और जनमय बनाया है। यही लोक परंपरा और लोक संस्कृति की मीमांसा है जिसमें सब कुछ लोक जीवन से पैदा होकर लोक जीवन और लोक संस्कृति का रूप धारण कर लेता है।

हबीब तनवीर के नाटकों में लोक तत्वों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। लोक साहित्य के विविध उपादानों को ग्रहण कर तनवीर ने अपने नाटक साहित्य की रचना की तथा सामूहिक भावना को पोषित करने वाले तत्वों को आधुनिक हिंदी नाटक के दर्शक के समक्ष रखा। यह उनकी अनूठी उपलब्धि कही जा सकती है। उनका विश्वास यही रहा है कि मानव जीवन की बहुस्वरता को कायम रखने और मानव की समस्त सृजनशीलता को बरकरार रखने का एकमात्र उपाय लोक का सच्चे मायने में संरक्षण है। निस्संदेह ऐसा कह सकते हैं कि तनवीर ने गतिशील जीवन के रहस्य को पहचाना तथा तदनुरूप हिंदी रंगमंच एवं हिंदी नाटक परंपरा को एक नवीन चेहरा प्रदान किया।

भावों की गगरी गिरिजा देवी की ठुमरी

डॉ. राजेश कुमार व्यास

गिरिजा देवी ने 'याद रहे' फिल्म में अभिनय भी किया। यह तब की बात है कि जब वह मात्र 10 वर्ष की थी। पर बाद में उनके गुरू सरजूप्रसाद ने उनके फिल्मों में काम करने पर एतराज जताया तो फिल्मों से सदा के लिए उनका रिश्ता खत्म हो गया। वर्ष 1947-48 में पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ने पहली बार गिरिजा देवी को सुना। उन्हें उनकी गायकी इस कदर भाई कि 1949 में उन्होंने ही गिरिजा देवी का इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर पहला कार्यक्रम रखा। उस वक्त सिद्धेश्वरी देवी, रसलून बाई को जितना पारिश्रमिक मिलता था, उतना ही आकाशवाणी में गाने के लिए गिरिजा देवी को पहली बार मिला। बाद में 1952 में दिल्ली के कांस्टीट्यूशनल क्लब में उस्ताद बिमिल्ला खां, डीवी पलुष्कर के साथ उन्होंने उपराष्ट्रपति एस. राधाकृष्णन के समक्ष जब खमाज की ठुमरी 'मोहे कल न पड़त छिन राधा प्यारी बिना...' सुनाई तो इस कदर उनकी तारीफ हुई कि उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

सम्पर्कः 3/39, गाँधीनगर, न्याय पथ, जयपुर-302015 (राजस्थान)
मो. 9461500204 ई-मेलः dr.rajeshvyas5@gmail.com

गिरिजा देवी की ठुमरी सुरों की सुरम्य दीठ है। भावों की ऐसी गगरी जिसमें सागर समा जाए। शब्द आवृत्ति में अंतर को आलोकित करते वह जीवन के तमाम रसों की जैसे व्यंजना करती थी। कुछ इस तरह से कि मन के भाव उनके गान के संग छलक-छलक पड़ते। ठुमरी ही क्यों ध्रुवपद, तराना, ख्याल, टप्पा और लोक संगीत की होरी, चैती, कजरी, झूला, दादरा में भी जैसे वह मुसव्विरी करती थी। यह सच है, उनका गान दृष्य की विरल छटाओं से साक्षात् कराता इसीलिए हममें बसता है कि वहाँ जीवनानुभूतियों की लयदार अदायगी है। मुझे लगता है, स्वरों के अकूट खजाने में उनका गान भाँति-भाँति के चित्रों का लूंठा-अलूंठा संसार है। बुलंद मन में बसने वाली आवाज। सरस रागों में छोटी-छोटी बंदिशों का विरल भाव ही तो रचती थी वह। उनका गान सुरों का अनूठा प्रवाह है। ऐसा, जिसमें डूबते, उतरते, तिरते शब्दों की अलंकारित छटाओं में स्वयं भी भाव प्रवण हों। वह जैसे स्वरों का एक नया संसार रच देती थीं।

जब मैं यह लिख रहा हूँ और राग पीलू में निबद्ध उनकी ठुमरी जैसे कानों में ध्वनित होने लगी है, 'पपीहरा पी की बोल न बोल...।' छोटी-छोटी सपाट तानें, पर कहन के अंदाज की अनूठी मौलिकता। उनका गान श्रृंगार के सौंदर्य भाव का भी अनूठा उजास लिए है। 'नयन की मत मारो तलवरिया...' या फिर 'अखिया रसली तोरे श्याम...' और 'झुला धीरे से झुलावो बनवारी... जैसे बहुतेरे बोलों में उनको सुनेंगे तो मन करेगा उन्हें गुनें। गुनते ही रहें। बोल की हर आवृत्ति में उनका अंदाजे बयां बदल जाता है। यही गिरिजा देवी के गान की विशेषता है जो उन्हें औरों से जुदा करती है।

बनारस और सेनिया घराने का लावण्य कहीं है तो वह गिरिजा देवी के गान में है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय गान में वह स्वरों का निभाव कुछ इस खूबसूरती से करती कि मन करता उन्हें सुनें और बस सुनते ही रहें। नेहरू सेंटर में प्रस्तुत उनकी होरी का वह दृश्य आज भी आँखों में जीवंत है जिसमें पंडित बिरजू महाराज उनकी गाई ठुमरी 'रंग डारूँगी रे...' को अपने आंगिक भावों से जैसे पुनर्नवा कर रहे हैं। ऐसे ही अमजद अली खां के सरोद के साथ उनकी राग भैरवी की ठुमरी की जुगलबंदी, बाजूबंद खुल खुल जाए... न भुला देने वाली है तो रोनू मजूमदार के साथ बासुँरी की 'एक दिन मुरली श्याम बजाई...' में स्वर जैसे वाद्यों

8 मई 1929 – 24 अक्टूबर 2017

के ओज के साथ अनूठी झिलमिलाहट करते हैं। उनकी गाई होरी, चैती और कजरी 'कहनवा मानो हो राधा रानी…, 'झुला धीरे से झुलावो बनवारी…', 'अँखिया रसिली तोरी श्याम…', 'रात हम देखली सपनवा हो रामा पिया घर आए…', 'चैत मासै चुनरी रंगइबै हो रामा…', 'धूम मची है धूम…', 'झीरी झीरी बरसे कि आयगी ना बरखा बहार…' सुनते तन-मन अवर्णनीय आनंद में डूब-डूब जाता है। बोलों की आवृत्ति में गिरिजा देवी अपने गायन से भाँति-भाँति के रंग जैसे उड़ेंलती।

मुझे लगता है, स्वरों के अलंकरण का साक्षात् कहीं है तो वह गिरिजा देवी के गायन में है। शब्द मात्राओं पर संक्षिप्त और दीर्घ ठहराव, लय-ताल के अनूठे मेल, शब्दों और स्वरों के संयोगों से वह जैसे सुनने वालों का अपनापा कराती थी। यह था तभी तो संगीत में जो बिल्कुल भी रुचि नहीं रखता, वह भी एकबारगी उनके गायन को सुनकर ही उनका दीवाना हो जाता।

धुरवपद, धमार, ठुमरी, होरी, कजरी आदि सभी में साधिकाएँ गायन और भावों की गहराई को साधने के संबंध में वह कहती थी, 'गायन की संपूर्णता लोक संगीत की समझ से ही संभव है। गाँव में जो संस्कारी चीजें प्यार से लोग गाते हैं, मैंने उन्हें सुना और फिर प्रयास किया कि वहीं भाव मेरे गायन में भी आए। …पर जरूरी यह भी है कि जो आप गाएँ वह केवल सुनाने के लिए ही नहीं हो। आप अपने लिए भी गाएँ। गाएँ तो शब्दों को अच्छा करें। अच्छे स्वर दें। … और यह तभी होगा जब आप शब्दों के अर्थ से भी सरोकार रखेंगे। यह नहीं कि जो भी शब्द आ गया, उसे गा दिया।' यह सच है, गिरिजा देवी का संपूर्ण गान शब्दों में निहित भावों का अनूठा उजास है। सरस रागों में छोटी-छोटी बंदिशों की उनकी लयदार अदायगी मन को सदा ही रंजित करती रही है। उनकी स्वरचित 'घिर आई है कारी बदरिया…' और 'बैरिन रे कोयलिया तोरी बोली न सुहाय…' की शब्द व्यंजना ऐसी है कि मन विभोर हो जाता है। बोल-बनाव और आवृत्ति में अद्‌भुत समय प्रवाह। लोकमानस को छूती उनकी आवाज इस कदर साफ सुथरी और स्वर-सधी, है कि सहज ही मन सुनते औचक गुनता-गुनगुनाता भी है।

बोल बनाव में वह सदा ही नई-नई तरकीबों से कहन के सौंदर्य भाव में ले जाती है। शब्द आवृत्ति पर कोरा विश्लेषण नहीं। हर बार नया ढंग। विरल रूप! भैरवी की उनकी गाई मशहूर ठुमरी 'सांवरिया ने जादू डारा…' तो जब भी सुनता हूँ, मन उनके गायन में मीठे और भावुक बोलों के आनंद रस में भीग-भीग जाता है। मुझे लगता है, बोलों की नजाकत और भावुकता को गान में जीने वाली गिरिजा देवी इस मायने में सर्वथा विरल है कि उनके पास मौलिक कल्पना शक्ति थी। मंचीय प्रस्तुतियों में शब्द आवृत्ति में वह भावों की गहराई में ले जाती और सुनने वालों को अपने संग बहला ले जाती। एक अदद अल्हड़पन और लोक से जुड़ी संवेदना उनके गान में है। इसलिए भी कि

गान में लालित्यपूर्ण स्वर कल्पना के साथ उनके गले में गजब का सधाव था तो ताल पर अनूठा नियंत्रण। कंठ माधुर्य ऐसा कि 80 की वय में भी गजल, ठुमरी, दादरा, होरी आदि गाते वह आसानी से गले की अपनी लोच में स्वरों को कहीं से कहीं घुमा ले जाती।

गाते हुए वह बहुतेरी बार अचरज में भी डालती। पहले किन्हीं बोलों को सुनने वाला इंतजार करता कि अब इस तरह से स्वरों का घुमाव गिरिजा देवी करेंगी तभी वह गान में ऐसी जगह कुछ नया भावुकता में और अपने निराले ढंग से गा देतीं कि सुनने वाला सुनता ही रह जाता। दादरा वह गाती तो चंचलता के भावों में कविता के छंदों को जैसे जीवंत करतीं। उनके गाए बोल 'मोरे सैंया उतरेंगे पार नदिया धीरे बहो...' 'भँवरा रे हम परदेसी लोग, कब के बिछड़े आज मिलेंगे, नदी नाव संजोग...', 'बनाओ बतियाँ चलो काहे को झूठी...' सुनते मन उनके सुरीलेपन में खो सा जाता है।

बहरहाल, गिरिजा देवी ने संगीत की शिक्षा आरंभ में अपने पिता के गान को सुनकर ली। बाद में पंडित सरजू प्रसाद ने उन्हें संगीत की शिक्षा दी। वह जब दस बरस की थीं तभी ख्याल, टप्पा सीख लिया। कम उम्र में ही उनका विवाह हो गया परंतु विवाह के बाद भी संगीत से उनका लगाव कम नहीं हुआ बल्कि उसके बाद पंडित श्रीचंद मिश्र से उन्होंने गायकी की बारीकियों को सीखा। गिरिजा देवी कहती भी थीं, 'मेरी गायकी को गुरू श्रीचंद मिश्र से संपूर्ण किया।' ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, होरी, चैती, कजरी आदि तमाम शास्त्रीय और लोक संगीत को उन्होंने अपने गुरू से ही नहीं बल्कि गुरू माँ से भी सीखा। इस सीखे में स्वयं उनका वह प्रयास भी सम्मिलित था जिसके अंतर्गत वह बड़े-बड़े कलाकारों की गायकी को सुनकर उसे गुनती थी। गाँवों में जो कुछ परंपराएँ रही हैं, जो संस्कार, रीत-रिवाज होते हैं, उनका भी गिरिजा देवी ने गहन अध्ययन किया। वह स्वयं गाँवों में बहुतेरे सामाजिक कार्यक्रमों में जातीं। परंपरागत वहाँ महिलाएँ जो विवाह होने पर, घर में बच्चा होने पर सोहर-बन्ना आदि गाती उन्हें उनके साथ गाने का प्रयास करती और इस तरह उनका गान निरंतर परवान चढ़ता चला गया।

गिरिजा देवी ने 'याद रहे' फिल्म में अभिनय भी किया। यह तब भी बात है कि जब वह मात्र 10 वर्ष की थीं। पर बाद में उनके गुरू सरजूप्रसाद ने उनके फिल्मों में काम करने पर एतराज जताया तो फिल्मों से सदा के लिए उनका रिश्ता खत्म हो गया। वर्ष 1947-48 में पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ने पहली बार गिरिजा देवी को सुना। उन्हें उनकी गायकी इस कदर भाई कि 1949 में उन्होंने ही गिरिजा देवी का इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर पहला कार्यक्रम रखा। उस वक्त सिद्धेश्वरी देवी, रसलून बाई को जितना पारिश्रमिक मिलता था, उतना ही आकाशवाणी में गाने के लिए गिरिजा देवी को पहली बार मिला। बाद में 1952 में दिल्ली के कांस्टीट्यूशनल क्लब में उस्ताद बिमिल्ला खां, डीवी पलुष्कर के साथ उन्होंने उपराष्ट्रपति एस. राधाकृष्णन के समक्ष जब खमाज की ठुमरी 'मोहे कल न पड़त छिन राधा प्यारी बिना...' सुनाई तो इस कदर उनकी तारीफ हुई कि उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

गिरिजा देवी को प्यार से सभी 'अप्पा' कहते हैं। एक संवाद में उन्होंने इस संबंध में बताया कि उनकी बहन को बेटा हुआ था। वह जब थोड़ा बड़ा हुआ तो उसने तुतलाहट में सबसे पहले गिरिजा देवी को 'अप्पा' बुलाना शुरू कर दिया। बस वहीं से सभी उन्हें अप्पा कहने लगे। वर्ष 1989 में उन्हें पद्मभूषण और 2016 में उन्हें उनकी बेहतरीन गायकी के लिए भारत सरकार ने पद्म विभूषण से सम्मानित किया। इसके अलावा 1977 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 2012 में महासंगीत सम्मान और डोवर लेन संगीत सम्मेलन पुरस्कार सहित और भी बहुत से सम्मान निरंतर मिलते रहे। कोलकाता में 1980 के दशक में आईटीसी संगीत रिसर्च एकेडमी और 1990 के दशक के दौरान बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय के रूप में उन्होंने काम किया।

गिरिजा देवी सच में ठुमरी की रानी थी। ठुमरी को परिष्कृत कर उसे आम जन में लोकप्रिय करने का कार्य किसी ने किया तो वह गिरिजा देवी ही थी। कहने वाले कहते हैं, ठुमरी का क्या? विशेष बोलों का बारम्बार दोहराव ही तो है यह। सही है। वहाँ, शब्दों की आवृत्ति होती है पर उसे बरतते गिरिजा देवी जीवन के तमाम रसों का जैसे दृश्य चित्र हमारे समक्ष उकेरती थी। दिमाग नहीं, दिल से जो गाती थी वह। ...और ठुमरी ही नहीं शास्त्रीय-उपशास्त्रीय तमाम अपने गायन में सुरों का लोक उजास कहीं है तो वह उनकी गायकी में ही है। मुझे लगता है, उनका संपूर्ण गान स्वरों की ऐसी बुनावट है जिसे सुनते अपनेपन की अनुभूति होती है। सूक्ष्म, संश्लिष्ट गान का उनका भाव सौंदर्य इसलिए भी मन में बसा रहता है कि वह स्वरों की अबूझ गाँठें खोलती थी। लफ़्ज़ों में निहित भावों की गहराई में उतरते-उतराते। राग-रागिनियां ही नहीं उनकी छायाओं को भी सुनते हम उनसे एकमेक होते हैं। भले ही देह से वह हमसे जुदा हो गई हैं पर उनके गायन की विरल छटाएँ सदा हमारे संग रहेगी। न जाने क्यों यह अनुभूत हो रहा है कि गायन के लिए कोई उन्हें प्यार से बुला रहा है। वह कह रही हैं, 'काहें न आईब? मैं आऊँगी।' काश! ऐसा सच में ऐसा हो पाता।

ooo

सार्थक सिनेमा : अब भी संभावना है

संजीव श्रीवास्तव

हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर अनेक फिल्में बनी हैं और सफल भी हुई है। शतरंज के खिलाड़ी, चित्रलेखा, धर्मपुत्र, रजनीगंधा, सारा आकाश, आंधी, मौसम आदि ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर आधारित 'तीसरी कसम' आई तो वह भी बाद में एक क्लासिक फिल्म बन गई। लेकिन हिंदी सिनेमा में महानायकत्व की प्रवृत्ति के उभार के बाद साहित्यिक कृतियों से मुख्यधारा के फिल्मकारों को अरुचि होने लगी। व्यावसायिक सफलता के नये मानदंड बनने लगे।

सम्पर्क: 37/ए, तीसरी मंजिल, गली नं. 2, प्रताप नगर, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091, मो: 9313677771

''बंजारे लगते हैं मौसम/मौसम बेघर होने लगे हैं/जंगल, पेड़, पहाड़, समंदर/इंसां सब कुछ काट रहा है/छील छील के खाल ज़मीं की/टुकड़ा टुकड़ा बाँट रहा है/ आसमान से उतरे मौसम/ सारे बंजर होने लगे हैं/

मौसम बेघर...

दरयाओं पे बाँध लगे हैं/ फोड़ते हैं सर चट्टानों से/ बाँदी लगती है ये जमीन/ डरती है अब इंसानों से/ बहती हवा पे चलने वाले/ पाँव पत्थर होने लगे हैं/ मौसम बेघर होने लगे।''

कविता की ये चंद पंक्तियाँ 'कड़वी हवा' फिल्म के अंत में स्वयं कवि-गीतकार गुलजार की आवाज़ में सुनाई देती हैं तो मानो हिंदी सिनेमा उम्मीद की नई बयार लेकर आता हुआ दिखाई देता है। पर्यावरण के उजड़ते मंजर और वीरान बंजर होती उपजाऊ धरती को बयाँ करती ये कविता ऐसे वक्त में सुनाई पड़ती है जब सिनेमा स्पेशल इफेक्ट्स से लैस कई सौ करोड़ के बजट का प्रोजेक्ट बनने की होड़ बन गया है। सिनेमा अब ना तो ब्लैक मैजिक के प्रभाव से संपृक्त रहा और ना ही सोसाइटी की समस्याओं का वास्तविक चित्रण करने वाला रह गया। वस्तुत: सिनेमा बहुतायत में अब एक बिज़नेस प्लान बन गया है लिहाजा वह खुद भी क्लाइमेट चेंज की एक वजह हो गया है। लेकिन इसी दौर में दमकते गीतों के दरम्यान अगर संजीदा कविता का कहीं उपयोग होने लगा है तो मानकर चलना चाहिये कि सार्थक सिनेमा की संभावना बची है।

'कड़वी हवा' को देखते हुए हिंदी के कवि केदारनाथ सिंह की एक कविता याद आती है-शीर्षक है 'अकाल में दूब':-

भयानक सूखा है/ पक्षी छोड़कर चले गए हैं/ पेड़ों को/ बिलों को छोड़कर चले गए हैं चींटे/ चींटियाँ/ देहरी और चौखट/ पता नहीं कहाँ-किधर चले गए हैं/ घरों को छोड़कर/ भयानक सूखा है/ मवेशी खड़े हैं/ एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए/ कहते हैं पिता/ ऐसा अकाल कभी नहीं देखा/ ऐसा अकाल कि बस्ती में/ दूब तक झुलस जाए/ सुना नहीं कभी/ दूब मगर मरती नहीं/ कहते हैं वे/ और हो जाते है चुप/ निकलता हूँ मैं/ दूब की तलाश में/ खोजता हूँ परती-पराठ/ झाँकता हूँ कुँओं में/

छान डालता हूँ गली-चौराहे/ मिलती नहीं दूब/ मुझे मिलते हैं मुँह बाए घड़े/ बाल्टियाँ लोटे परात/ झाँकता हूँ घड़ों में/ लोगों की आँखों की कटोरियों में/ झाँकता हूँ मैं/ मिलती नहीं/ मिलती नहीं दूब/ अंत में/ सारी बस्ती छानकर/ लौटता हूँ निराश/ लाँघता हूँ कुंएँ के पास की/ सूखनी नाली/ कि अचानक मुझे दिख जाती है/ शीशे के बिखरे हुए टुकड़ों के बीच/ एक हरी पत्ती/ दूब है/ हाँ-हाँ दूब है/ पहचानता हूँ मैं/ लौटकर यह खबर/ देता हूँ पिता को/ अँधेरे में भी/ दमक उठता है उनका चेहरा/ अभी बहुत कुछ है/ अगर बची है दूब...'/ बुदबुदाते हैं वे/ फिर गहरे विचार में/ खो जाते हैं पिता।

गुलजार की सिनेमाई कविता और केदारनाथ सिंह की साहित्यिक कविता की दूरी मापने के क्रम में एक दूब हमें भी झलकती है, एक किरण हमारी उम्मीदों की भी चमकती है कि सिनेमा वस्तुत: वही नहीं है जिसके लिए वह विख्यात है बल्कि सिनेमा सिल्वर स्क्रीन का साहित्य भी है। हिंदी के कई नामचीन लेखकों ने सिनेमा की दुनिया का रुख किया और किसी ने भी सिनेमा को साहित्य के इतर नहीं समझा। यह अलग बात है कि अध्ययन-अध्यापन के अकादमिक परिसर में उस साहित्य को स्थान नहीं मिला। जब सालों बाद इसी परिसर में सिनेमा अध्ययन व अनसुंधान को मान्यता मिली तो सिनेमा की साहित्यिक प्रवृतियाँ गवेषणा का विषय होने लगी। तीन दशक पूर्व जब केदारनाथ सिंह ने कविता में जिस अकाल के संकट और पर्यावरण पर उसके प्रभाव को लेकर भावुक कविता लिखी और इसी दौरान उन्हें दूब की तरह नवोन्मेष की आशान्वित करने वाली प्रतीत हुई तो आज की तारीख में 'कड़वी हवा' में गुलजार की उपर्युक्त पंक्तियाँ हिंदी सिनेमा को फिर से उसी सार्थक संदर्भ में व्याख्यायित करने को प्रेरित करती हैं।

'कड़वी हवा' भी किसी अकाल की भयावता से जरा भी कमतर कहाँ दिखती है। फिल्म देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि। हरियाली विहीन परिवेश। उजड़े खेत, खाली खलिहान, धूल उड़ाती सड़कें। दौड़ते-भागते, जीते-मरते किसान। यहाँ तक कि दूब भी नजर नहीं आती है। यह फिल्म सिनेमा के कई प्रतिमान दृष्टिपटल से धूमिल लगती है। हिंदी सिनेमा में कथा, पटकथा, संवाद, अभिनय, अदायगी आदि सबके प्रतिमान सुरक्षित स्थान पर हैं। 'दो बीघा जमीन' में बलराज साहनी और 'प्यासा' में गुरुदत्त का अभिनय प्रतिमान है। 'कागज के फूल' की पटकथा और 'गरम हवा' तथा अभिनय के दृष्टिकोण से सिनेमा का सामयिक प्रतिमान है।

'कड़वी हवा' की कहानी और पटकथा नितिन दीक्षित ने लिखी है और निर्देशक हैं नील माधव पांडा। कहानी की पृष्ठभूमि सूखाग्रस्त बुंदेलखंड-चंबल-धौलपुर की हैं। जहाँ गुलजार के शब्दों में मौसम बेघर हो गया है। लोग केवल दो ही मौसम जानते हैं, सर्दी और गर्मी। बच्चे किताबों में बरसात के मौसम के बारे में पढ़ते हैं लेकिन गाँव में इस मौसम को कभी देखा नहीं। बारिश नहीं होने से खेती, किसानी सब मारी गई है। लोग पेट भरने को मोहताज हो गये हैं। मजबूरन बैंक से कर्ज लिया। लेकिन कर्ज नहीं चुका पाने से धीरे-धीरे काल के गाल में समा रहे हैं। 1953 की फिल्म 'दो बीघा जमीन' की याद आती है। उस फिल्म में कर्ज नहीं चुकाने पर किसान की जमीन पर मिल मालिक जमींदार का कब्जा हो जाता है और यहाँ कर्ज नहीं चुकाने पर किसान मौत की नींद सो रहे हैं। ये ही देश के भाग्यविधाता किसानों का विकास। जो हालत आजादी के पाँच साल बाद थी सत्तर साल बाद वह और भी भयावह हो गई।

जोकि यह फिल्म केवल किसानों के ज़ख्म को सामने नहीं रखती। बदलती आबोहवा के संकट को उजागर करती है। सूखाग्रस्त इलाकों से लेकर समुद्रतटीय क्षेत्रों तक इस बदलते पर्यावरण का दुष्प्रभाव देखा जा रहा है। विकास की होड़ इसके मूल में तो है लेकिन जन-जीवन फिर भी विकास से दूर। क्लाइमेट चेंज वस्तुत: अकाल ही तो है जिसे केदारनाथ सिंह ने अपनी कविता में मारक शैली में अभिव्यक्त किया था।

परिवर्तित होते सिनेमाई परिवेश की दूसरी फिल्म का जिक्र करें तो हिंदी के कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु की चर्चित कहानी 'पंचलैट' पर बनी फिल्म सामने आती है। हिंदी सिनेमा हिंदी साहित्य से तनिक दूर हो चला है। हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर अनेक फिल्में बनी हैं और सफल भी हुई है। शतरंज के खिलाड़ी, चित्रलेखा, धर्मपुत्र, रजनीगंधा, सारा आकाश, आँधी, मौसम आदि ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर आधारित 'तीसरी कसम' आई तो वह भी बाद में एक क्लासिक फिल्म बन गई। लेकिन हिंदी सिनेमा में महानायकत्व की प्रवृत्ति के उभार के बाद साहित्यिक कृतियों से मुख्यधारा के फिल्मकारों को अरुचि होने लगी। व्यावसायिक सफलता के नये मानदंड बनने लगे। फलस्वरूप बांग्ला उपन्यास 'देवदास' जैसी सुपरहिट क्लासिक कहानी में भी बाजारोन्मुख मोड़ दिया जाने लगा। देव कोलकाता के बजाय लंदन से लौटने लगा! पारो-चंद्रमुखी का मिलन हो गया! यह बाजार के सिद्धांतों के साथ प्रयोग ही

तो था। 'परिणीता' के प्रतिरूप परिवर्तित हो गये। राजस्थान के अप्रतिम कथाकार देथा की कृति पर अमोल पालेकर ने 'पहेली' बनाई लेकिन शाहरूख खान अभिनीत यह फिल्म ना तो बाजार को पसंद आई ना तो साहित्यप्रेमियों को। यहाँ निर्माण, निर्देशन तथा अभिनयता में शायद उस संवेदना के सथावी भाव की कमी थी जिसकी वजह से अमर साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्में कालांतर में क्लासिक महत्व के उदाहरण के तौर पर गिनी जाती हैं। संजय लीला भंसाली की 'देवदास' केवल बाजार को रास आई, साहित्य अनुरागियों ने इसके स्वरूप को खारिज कर दिया था।

बात हिंदी सिनेमा और हिंदी साहित्य की करें तो अरसे बाद फणीश्वरनाथ रेणु की किसी दूसरी रचना पर फीचर फिल्म बन कर आई। सन् 1966 में गीतकार शैलेंद्र के बाद किसी फिल्मकार ने रेणु साहित्य पर फिल्म बनाने का साहस ही नहीं किया। यद्यपि रेणु की अत्यंत चर्चित कृति 'मैला आँचल' पर दूरदर्शन पर धारावाहिक का सफलतापूर्वक प्रसारण जरूर हो चुका था। लेकिन फीचर फिल्म का जोखिम किसी ने भी उठाने का माद्दा नहीं दिखाया। हालाँकि सत्तर के दशक में हिंदी की अनेक कृतियों पर सफल फिल्में बनी जिनका नामोल्लेख पहले ही कर दिया गया है।

प्रेमप्रकाश मोदी द्वारा निर्देशित 'पंचलैट' फिल्म इस दृष्टिकोण को आगे बढ़ाती है कि सिनेमा को आज भी साहित्य से संपृक्त रखा जा सकता है। यह असंभव नहीं है। 'पंचलैट' का निर्माण नितांत गैर-व्यावसायिक नजरिये से हुआ है। रेणु की कहानी की आत्मा ही नहीं शरीर को भी अमली जामा पहनाया गया है। रेणु जिस तरह की भाषा और परिवेश रचते थे फिल्म में उसी शब्दावली और वातावरण का उपयोग आज के सिनेमा की रीति के बीच जैसे 'अकाल में दूब' की तरह है। ग्राम्य-जीवन के हर रंग में प्रेम। खेत में कटनी, रोपनी करते हुये प्रेम। धान का बोझा उठाते हुए प्रेम। मेला, ठेला के भीड़ भाड़, शोर शराबा में प्रेम। खेत की मिट्टी काटते हुए प्रेम। कीचड़, गोबर में गिरते, सनते हुए प्रेम। माटी के घर, खपरैल छत के नीचे ढिबरी, लालटेन की रोशनी में प्रेम। खलिहान में दौनी, मजदूरी करते हुये प्रेम। दुख और पीड़ा के कठोर क्षण में प्रेम और रूढ़िवाद से विद्रोह तथा बदलाव की बयार की बुनियाद में भी प्रेम। रेणु साहित्य का ये सार सिल्वर स्क्रीन पर भी सालों बाद देखना अत्यंत सुखकर प्रतीत लेकर आया। कहानी में ग्राम्य-जीवन की टोले-मोहल्ले में बँटी जिस जातीयता को चित्रित किया गया है, विकासवादी हल्लाबोल के दौर में आज भी देश उससे बदला नहीं है।

इनके इतर बात करें तो हाल के वर्षों में श्याम बेनेगल और प्रकाश झा की बाद की पीढ़ी में अनुराग कश्यप, विशाल भारद्वाज, मनीष मुंदड़ा जैसे फिल्मकार हमारे सामने आते हैं जिन्होंने सार्थक सिनेमा की नई राह प्रशस्त की है। 'मिर्च-मसाला' और 'माया मेमसाहब' जैसी फिल्में बनाने वाले केतन मेहता ने गोविन्द निहलानी की तरह ही सार्थक सिनेमा का रास्ता नहीं छोड़ा। गोकि 'दामुल' के चितेरे प्रकाश झा सिनेमा के बीच के रास्ते के पथिक बन चुके थे। केतन मेहता ने दशरथ मांझी की जिंदगी पर फिल्म बनाकर पहाड़ तोड़ने जैसा ही काम किया था। मांझी ने पहाड़ काट कर नया रास्ता बनाया तो केतन मेहता ने नये गंभीर फिल्मकारों को हौसला की नई राह दिखाई।

सिनेमा और भी अधिक सिनेमैटिक और तात्कालिक सामाजिक यथार्थ को क्लासिक साहित्य के पन्नों के संदर्भ में प्रस्तुत करने की कलात्मक शैली विशाल भारद्वाज की बखूबी पहचानी जाती है। विशाल भारद्वाज सिनेमा में ग्लैमर के साथ सोसायिटी के ग्रे पक्ष को इस प्रकार मिश्रित करते हैं और फिर कलाकारों को भिन्न कास्ट्यूम डिजाइन देकर उन्हें लोकप्रिय क्लासिक गीत-संगीत के साथ कुछ यूँ पेश करते हैं मानो हम फिल्म नहीं बल्कि कोई अत्याधुनिक थियेटर प्रस्तुति देख रहे हो। अंग्रेजी साहित्य से उनका विशेष मोह विख्यात है। विलियम शेक्सपीयर के नाटकों की आधारभूमि पर उन्होंने कई फिल्में बनाई है। मैकबेथ पर 'मकबूल', ओथेलो पर 'ओमकारा' तथा हैमलेट पर 'हैदर'। ये फिल्में केवल किताबों पर आधारित नहीं थीं बल्कि सामयिक परिवेश में इनका रूपांतरण किया गया था। ये फिल्में इन नाटकों की पुनर्रचना थी। 'मकबूल' मुंबई की भूमिगत माफिया की जालसाजी की कहानी कहती है तो 'ओमकारा' पश्चिमी उत्तर प्रदेश की धरती पर पल बढ़ रहे अपराध जगत की अंधाधुंध प्रवृति को उकेरती है जबकि 'हैदर' कश्मीर घाटी की पृष्ठभूमि में फैलती आतंक की आग की वास्तविकता को सामने रखती हैं। यही नहीं, विशाल भारद्वाज रस्किन बांड के 'ब्लू अंब्रेला' को भी इसी नाम से लेकर आते हैं तो 'सुसानाज सेवेन हसबैंड' पर आधारित 'सात खून माफ'। इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में 'हंटरवाली' के नाम से मशहूर अदाकारा की कहानी को जब वो पर्दे पर 'रंगून' नाम से चित्रित करते हैं तो जैसे सिल्वर स्क्रीन पर कोई नाट्य रचना प्रस्तुत कर रहे होते हैं। विशाल कभी भी बाजारू लोकप्रियता का सहारा

नहीं लेते। संजय लीला भंसाली की तरह उनकी फिल्मों में रुपांतरण का निकष बाजारवाद नहीं है। संजय लीला भंसाली जब भी साहित्यिक कृति अथवा इतिहास के अंश का रुपांतरण करते हैं तो उसका कोई सामयिक संदर्भ नहीं होता बल्कि दो परस्पर विपरीत किरदारों के आमना-सामना की कल्पनाशीलता का ताना-बाना बुनना उनका अभीष्ट होता है जैसे कि भंसाली की 'देवदास' में पारो और चंद्रमुखी का मिलन और नृत्य। विशाल की फिल्मों में नायिका अगर बिपाशा बसु 'बीड़ी जलइले...' (फिल्म ओमकारा) गाती हैं तो वह बाजारवाद के सिद्धांतों से सीधा समझौता नहीं कर रहे होते हैं बल्कि लोक संस्कृति के देसी रंग को वास्तविक प्रतिबिम्ब दे रहे होते हैं। इसीलिये वह प्रस्तुति कला जगत में जितनी सराही जाती है उतनी ही देशज परिवेश में भी लोकप्रिय होती हैं। सार्थक सिनेमा के संभावित भविष्य को लेकर इस बात से उम्मीद बँधती है कि विशाल अपने इस विशेष सिनेपथ से डिगे नहीं हैं। अपने सिनेमा में गुलजार की रचनाशीलता सी ऊष्मा का संस्पर्श हमेशा बनाये रखा।

आधुनिक सिनेमा में लीक से हटकर कुछ फिल्में देने वालों में एक नाम अनुराग कश्यप का भी है जिन्होंने अंग्रेजी के लेखक हुसैन जैदी की पुस्तक '1993 बॉम्बे बॉम्बिंग' पर आधारित 'ब्लैक फ्राइडे' बनाकर ग्रे शेड्स की फिल्म की एक नई परिभाषा तैयार कर दी। हालाँकि वह अपने गुरु सरीखे रामगोपाल वर्मा की फिल्म शैली से अलग नहीं थे। लेकिन अनुराग की फिल्मों में मुख्यधारा की फिल्मों से पृथक और समानांतर सिनेमा के करीब जाने की ललक साफ दिखाई दी थी। अनुराग ने भी भंसाली की तरह 'देवदास' की कहानी पर फिल्म बनाई। लेकिन अनुराग ने इसे सर्वथा आधुनिक फ्लेवर दे दिया। अनुराग का रुपांतरण शहरी परिवेश के देवदास का रूपक था; नाम रखा-'देव डी'। फिल्म का नवीन प्रयाग शहरी घरानों की शिक्षित और बौद्धिक पीढ़ी को विशेष पसंद आया। लेकिन इसके बाद अनुराग ने जब मनोज वाजपेयी के साथ मिलकर 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' की रचना की और अपराध कथा की पेंचीदगियों और मृत संवेदना को जैसा यथार्थवादी रूप दे दिया उसने अनुराग कश्यप को सबसे अलग फिल्मकार की पंक्ति में खड़ा कर दिया।

गौरतलब है कि सत्तर और अस्सी के दशक का सार्थक सिनेमा आंदोलन की उपज था। फिल्मकार सिल्वर स्क्रीन पर नई कहानी लिख रहे थे। इन्हें हिंदी साहित्य नई कहानियाँ भी कह सकते हैं। सह-अस्तित्व की तलाश करतीं तथा एकांतिक संवेदना व यौन उत्कंठा के पारिवारिक दायरे से निकलकर सामाजिक फलक पर विस्तार लेती कहानियाँ। 'स्पर्श', 'मंथन', 'मंडी', आदि फिल्में देखें तो वो केवल यथार्थवादी प्रतीत नहीं होती बल्कि तत्कालीन व्यावसायिक सिनेमा का विद्रोह करती भी दिखती हैं लेकिन सचाई यह भी है कि बाजार में भावनात्मक आवेग के बदले व्यावसायिक तंत्र ही हमेशा जीतता है। लिहाजा विशाल भारद्वाज, अनुराग कश्यप, अनुराग बासु, मनीष मुंदड़ा आदि जैसे फिल्मकार अपने अग्रज मसलन सत्यजीत रे, श्याम बेनेगल, मृणाल सेन, गोविंद निहलानी, केतन मेहता, प्रकाश झा आदि से सीखते हुए सार्थक सिनेमा को एक नई राह देने का प्रयास कर रहे हैं।

मनीष मुंदड़ा की फिल्में 'आँखों देखी', 'मसान', 'धनक', 'रुख', 'कड़वी हवा', और 'न्यूटॉन' आदि ने आज के सैकड़ों करोड़ क्लब के होड़वादी व्यावसायिक सिनेमा को जैसे आईना दिखाने का काम किया है। 'मसान' में वाराणसी की जिस बदलती सामाजिक संरचना का चित्रण किया गया है वह वास्तविकता से इतर बिल्कुल नहीं है। 'कड़वी हवा' का जिक्र हम कर चुके हैं लेकिन 'न्यूटॉन' की चर्चा किये बगैर यह लेख पूरा नहीं होता। राजकुमार राव, पंकज त्रिपाठी और संजय मिश्रा द्वारा अभिनीत यह फिल्म जिस नक्सलवादी परिवेश की कहानी का चित्रण करती हैं वहाँ लोकतांत्रिक चुनाव कराना संभव नहीं, फिर भी एक सरकारी अधिकारी की जिद्दी कोशिश जारी रहती है। यह फिल्म प्रकाश झा की फिल्म 'चक्रव्यूह' की तरह नक्सलवादी समस्या का ज्यों का त्यों चित्रण करके नहीं रह जाती है। इसमें नक्सलवाद प्रभावित क्षेत्र में सुधार और विकास की पहल करने का प्रयास दिखाया गया है।

यानी सिनेमा मूलतः जन-रंजन का विषय होकर भी केवल रंजकता की चहारदीवारी में ही कैद रखने लायक विधा नहीं है, ये फिल्में और ये फिल्मकार इस प्रवृत्ति को पुरजोर तरीके से साबित करते हैं और हमें इन पर नाज है कि ये फिल्कार सामाजिकों को समाज का वास्तविक चेहरा भी दिखा रहे हैं। भले ही इतनी-सी फिल्में 'अकाल में दूब' की तरह नजरों में कौंध पैदा करती हैं लेकिन हरी-भरी वसुंधरा की बुनियाद महज एक दूब ही तो होती है:

''है अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब...।''

❍❍❍

गाँव के रंग हाइकु के संग

पूर्वा शर्मा

हाइकु जैसी नन्हीं-सी विधा में हाइकुकारों ने गाँवों का सजीव चित्रण बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। सिर्फ तीन पंक्तियों के हाइकु में हाइकुकारों ने गाँवों की अप्रतिम छवि अंकित की है। कुछ हाइकुकारों ने अपने बचपन की यादों और अनुभवों को अपने हाइकु के द्वारा प्रस्तुत कर गाँवों को सजीवता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। गाँवों की बात ही निराली है। वहाँ के बड़े-बड़े आँगन में लकड़ी की खाट पर बैठकर किस्से-कहानी सुनना, यही है गाँवों की ज़िंदगी। गाँवों में कच्चे-पक्के घर की साज सज्जा भी बड़े ही चाव से की जाती हैं। गेरू से अलग-अलग आकृतियाँ बनायीं जाती हैं और अपने घरों को सजाया जाता है।

भारत भूमि प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर है। कहीं पहाड़, नदी, झरने हैं, तो कहीं घने जंगल, कहीं पठार तो कहीं मैदान और कहीं पर मरूस्थल, कहीं घाटियाँ है। अपनी इसी भौगोलिक विविधिता के कारण यहाँ पर विविध प्रजाति के पेड़-पौधे, फूल, पशु-पक्षी पाये जाते हैं। भारत की खूबसूरती तो इसके गाँवों में बसी है या यूँ कहिए भारत की आत्मा इसके गाँवों में बसी है। ग्रामीण लोगों का रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा सभी कुछ शहरी सभ्यता से थोड़ा अलग है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, गाँवों की सबसे खास बात है इसके खेत-खलिहान। लहलहाते खेतों को देख तो इंसान अपने सारे दु:ख भूल जाता है और उसका दिल फूल-सा खिल उठता है, अब ये हरियाली भला कहाँ शहर में देखने को मिलेगी?

''भारत देश/गाँवों से भरा-पूरा/अनूठा देश।''

-डॉ. अर्पिता अग्रवाल

हिंदी के कई उपन्यासों एवं कहानियों में ग्रामीण जीवन का चित्रण देखने को मिलता है, साथ ही काव्य में भी ग्रामीण जीवन का चित्रण हमें प्राप्त होता है। प्रेमचंद, भीष्म साहनी आदि जैसे कई दिग्गज रचनाकारों ने गाँवों का सजीव और यथार्थ चित्रण अपने साहित्य के द्वारा किया और आम जनता तक उसे पहुँचाया, लेकिन आज के इस आधुनिक युग में शहरीकरण और तीव्रगति से हो रहे विकास के कारण ग्राम्य जीवन को चित्रित करना कोई आसान कार्य नहीं है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण ग्रामीण संस्कृति पर बहुत गहरा असर पड़ा है और धीरे-धीरे ग्राम्य-संस्कृति लुप्त होने की कगार पर जा पहुँची है।

ग्रामीण या गाँव शब्द को सुनते ही खेत-खलिहान, गाय-बैल, सरसों और गन्ने के खेतों, कच्ची सड़क और छोटी-छोटी झोंपड़ी आदि की छवि हमारे मस्तिष्क में अंकित होने लगती है। आज बैलों की जगह ट्रैक्टर ने ले ली है। हर जगह पर पक्के घर एवं बिजली की व्यवस्था भी दिखाई देती है, अब वे मिट्टी एवं गोबर से लीपे घर दिखाई नहीं देते। शायद आने वाली पीढ़ियाँ तो गाँव के इस प्रकार के स्वरूप को देख भी ना पाए, तब शायद ग्रामीण जीवन को सिर्फ साहित्य के द्वारा पढ़कर ही अनुभव किया जा सकेगा, यथा-

सम्पर्क: 201, एरीज-3, 42 यूनाइटेड कॉलोनी, नवरचना स्कूल के पास समा, वडोदरा, गुजरात-390008, फोन: 09428174255
ई-मेल: purvac@yahoo.com

होलों के गुच्छे/ भून-भून के खाना/ बीता ज़माना।
गाँव की छत/ नर्म धूप-बिछौना/ खेतों में सोना।
-डॉ. भावना कुँअर

गाँव में ज़िंदगी बहुत ही रंगीन है क्योंकि गाँव के लोग सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को बहुत महत्व देते हैं। अपनी संस्कृति से ये बहुत प्यार करते हैं और इनके सभी कार्यों में अपनी मिट्टी से जुड़े होने का भाव नज़र आता है। गाँव के लोगों के अपने संस्कार और रीति-रिवाज होते हैं। सुबह-सुबह के समय गाँव में अलग-अलग क्रिया-कलाप होते रहते हैं-गाँव में कहीं पर सुबह में पूजा-आरती हो रही है, तो कहीं कोई तुलसी में जल चढ़ा रहा या दीपक लगा रहा, कहीं पर शंखनाद हो रहा, तो कहीं पर गाँव की औरतें गीत गा रहीं, तो कहीं पनघट से या कुएँ से स्त्रियाँ पानी भर रही हैं। इस प्रकार के विविध क्रियाकलाप गाँच की दिनचर्या हैं जो कि शहर में देखने को नहीं मिलती है। गाँव के इन रंगों की एक झलक देखिए-

''साँझ-सकारे/ शिवाले बजे शंख/ गाँव किनारे।''
-डॉ. सुधा गुप्ता

''बड़े भोर में/ गा-गा जाँत पीसतीं/ दोनों बहनें।
-डॉ. रमेश कुमार त्रिपाठी

''चाकी की मूठ/ सास-बहू के हाथ/ गीत गूँजते।
-डॉ. सुधा गुप्ता

''फुलैरा दूज/ मेरी देहरी डाले/ बच्ची ने फूल।''
-डॉ. सुधा गुप्ता

''भला-सा लगे/ तुलसी का बिरवा/ चौबारे सजा।''
-डॉ. ज्योत्सना शर्मा

''सोहर बन्ने/ सावन, होली गीत/ आल्हा गूँजते।''
-डॉ. ज्योत्सना शर्मा

''उड़े आँचल/ पनघट पे भीड़/ हँसी-ठिठोली।''

-डॉ. शैल रस्तोगी

गाँव का जीवन अपने आप में एक अनूठा अनुभव है। यहाँ पर लोग सिनेमा देखने की जगह नौटंकी देखना पसंद करते हैं। यहाँ पर प्रकृति के प्रति प्रेम लोगों की बातों में और कार्यों में नज़र आता है। गाँव में बारात में जाते हुए लोगों का परिधान सफ़ेद पगड़ी, सफ़ेद धोती-कुर्ता होता है और जब सभी एक कतार में चलते हैं तो ऐसा प्रतीत होते हैं कि जैसे बगुलों की पंक्तियाँ जा रही हो, यह दृश्य मनोरम लगता है।

''बजते ढोल/ दूर कहीं गाँव में/ होती नौटंकी।''
-डॉ. शैल रस्तोगी

''गाँव बारात/ सफ़ेद पगड़ियाँ/ बगुला-पाँत।''
-डॉ. भावना कुँअर

''बैलों के सींग/ रँगे, 'साफ़े' बँधे हैं/ मेला-तैयारी।''
-डॉ. सुधा गुप्ता

''निज धुन में/ गाता जाए रहट/ खेत सींचता।''
-डॉ. उर्मिला अग्रवाल

खेती करना गाँव में प्रमुख कर्म या व्यवसाय है। सुबह-सवेरे किसान हल लेकर खेतों की ओर चल पड़ते हैं। किसान कड़ी मेहनत से खेतों को सींचते हैं और तब जाकर हमारी थाली विविध प्रकार के अन्न, फल और सब्जियों से सजती है। सिर्फ किसान ही नहीं, उनके बच्चे एवं स्त्रियाँ भी खेतों में काम करते हुए नज़र आते हैं। खेतों को लहलहाता देखने से पहले फसल की बुवाई और सिंचाई भी बहुत महत्वपूर्ण होती है। खेतों एवं किसानों के क्रिया-कलापों का वर्णन हाइकु काव्य में दिखाई देता है। इन सभी कार्यों को हाइकुकारों ने अपने हाइकु में बहुत ही सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। यथा-

''किसान-बेटा/ बोता पसीना लोना/ उगाता सोना।''
-डॉ. सुधा गुप्ता

''लहँगा धोती/ खेत की ओर चले/ हल-हँसिया।''
-आदित्य प्रताप सिंह

''गाँव की गोरी/ कीच में धँसकर/ रोपती धान।''
-डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव

''मेड़ ही मेड़/ झूमें साँवरी-गोरी/ श्रमिक छोरी।''
-डॉ. नीलमेंदु सागर

गाँव में फसल बोने पर औरतों द्वारा गीत गाये जाते हैं, फसलों की बुवाई से लेकर कटाई तक सभी चरणों में गीत गाने की रस्में और पूजन की परम्परा गाँवों में देखी जा सकती हैं, यथा-

''हवा में तैरी/ फ़सल-बोवाई के/ गीतों की गूँज।''
-डॉ. सुधा गुप्ता

''धान-गेहूँ से/ मह-मह धरती/ पूजन करो।''
-नलिनीकांत

खेतों में सरसों, चना, गेहूँ, मटर, तुरई आदि की फसल भी हर तरफ दिखाई दे रही है। अलग-अलग तरह के अनाज एवं सब्जियों से धरती पूरी ढकी हुई दिखाई दे रही हैं। यथा—

''पके गेहूँ की/ खुशबू से बोझिल/ बैसाखी हवा।''

-डॉ. सुधा गुप्ता

''हरी बालियाँ/ झूम रही खेतों में/ चहकें पंखी।''

-डॉ. भगवतशरण अग्रवाल

''सोने की झील/ मेड़ों तक उमड़ी/ सरसों फूली।''

-नीलमेंदु सागर

''बज रहे हैं/ खेत-खेत, चने के/ सौ झुनझुने।''

-नलिनीकांत

''भुट्टों के खेत/ मोतियों से भरे-से/ दूल्हे-से सजे।''

-डॉ. भावना कुँअर

''खिली कपास/ दूर तक खेतों में/ बिखरा हास।''

-रामेश्वर काम्बोज हिमांशु

सरसों रानी की तरह घाघरा फैलाए बैठी है और सरसों हँस रही हैं, मटर की फली झूम रही है और तुरई फूल रही है। मानवीकरण की छटा तो देखिये—

''ठसक कर बैठी/ पीला घाघरा फैला/ रानी सरसों।''

''सरसों हँसी/ मटर-फली झूमी/ तुरई फूली।''

-डॉ. सुधा गुप्ता

''खेत-लड़की/ हरी-भरी करती/ हवा की कंघी।''

-आदित्य प्रताप सिंह

किसान कड़ी मेहनत करके थक जाते हैं और दोपहर को घर का बना खाना खाकर (प्याज, छाछ, मक्के की रोटी आदि) अपना पेट भरते हैं। इस खाने का स्वाद एवं ऊर्जा उनमें स्फूर्ति का संचार करता हैं एवं उनकी थकान दूर करने में सहायक होता है, यथा—

''मटकी छाछ/ चल पड़ी खेतों में/ रोटी और प्याज।''

-डॉ भावना कुँअर

''मक्के की रोटी/ खेतों की ओर चली। चुन्नी में बँधी।''

-ऋता शेखर मधु

''ऐसे थे स्वाद/ थकान जाए भाग/ शक्ति अपार।''

-डॉ. भावना कुँअर

खेतों में जब यह फसल लहलहाने लगती हैं तो किसान बहुत प्रसन्नता का अनुभव करता है और वह चैन की साँस लेता है और मस्ती से हुक्का पीता नजर आता है, यथा—

''फसल देख/ मस्ती से हुक्का पीता/ बैठ किसान।''

-डॉ. भगवत शरण अग्रवाल

फसलों को पका देख किसान खुश होता है लेकिन इसी के साथ जब फसलों की कटाई की जाती है तब किसान और अधिक खुश होता है। इसी पकी फसल को काटकर साफ करके कुठलों और कछालों में भरकर रख जो प्रसन्नता का अनुभव किसानों को होता है उसका चित्रण हाइकु में देखा जा सकता है, इसके पश्चात् जब धान को एकत्रकर कूँदड़े के रूप में स्तूप की तरह रखा जाता है तब ये कूँदड़े बहुत ही सुंदर दिखाई देते हैं, यथा—

''खुश किसान/ कुठलों, कछालों में/ भर के धान।''

-डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

''राजा-से खड़े/ पुआल के कूँदड़े/ हाथी-से लगे।''

-रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

गाँव में हम प्रकृति के बहुत करीब होते हैं इसलिए सब कुछ बहुत ही सुंदर लगता है, लेकिन कभी-कभी प्रकृति के भयानक रूप का भी सामना करना पड़ता है। अतिवृष्टि या अनावृष्टि दोनों के ही कारण किसानों को बहुत परेशानी होती है। उनके घर भी पक्के नहीं होते हैं इसलिए पानी भी छप्पर से टपकता है। किसान का पूरी जायदाद या जमा पूँजी उनकी फसल होती है, यदि अकाल या भारी बारिश या किसी आपदा के कारण इसकी हानि हो तो किसानों के साथ गाँव के लोग भी व्याकुल हो जाते हैं। यथा—

''ठंडे है चूल्हे/ टपके झुपड़िया/ रोए बंसरी।''

-डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

''बरसे ओले/ फसलों हैं चौपट/ रोएँ किसान।''

-रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

''फूस के घर/ ठंड नाचती नंगी/ हवा की शह।''

-नीलमेंदु सागर

''किससे कहूँ/ झोपड़ियों का दर्द/ खेत की व्यथा।''

-डॉ. भगवतशरण अग्रवाल

हाइकु जैसी नन्ही-सी विधा में हाइकुकारों ने गाँवों का सजीव चित्रण बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। सिर्फ तीन पंक्तियों के

हाइकु में हाइकुकारों ने गाँवों की अप्रतिम छवि अंकित की है। कुछ हाइकुकारों ने अपने बचपन की यादों और अनुभवों को अपने हाइकु के द्वारा प्रस्तुतकर गाँवों को सजीवता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। गाँवों की बात ही निराली है। वहाँ के बड़े-बड़े आँगन में लकड़ी की खाट पर बैठकर किस्से कहानी सुनना, यही है गाँवों की जिंदगी। गाँवों में कच्चे-पक्के घर की साज सज्जा भी बड़े ही चाव से की जाती हैं। गेरू से अलग-अलग आकृतियाँ बनायी जाती हैं और अपने घरों को सजाया जाता है। गाँव में सभी सुबह बहुत जल्दी उठ जाते हैं, इनकी दिनचर्या जल्दी शुरू हो जाती है। गाँव के विविध रंग हाइकु में देखिए–

''घरौंदे सजे/ तोते मोर चिरैया/ गेरू से बने।''

–डॉ. सुधा गुप्ता

''खड़िया, गेरू/ उकेरते चित्र/ बड़े विचित्र।''

–डॉ. भावना कुँअर

''गोबर-पुती/ हर मौसम सहे/ झोपड़ी तनि।''

–डॉ. जेन्नी शबनाम

''चौपाल बैठे/ हुक्का गुड़गुड़ाते/ मुखिया दादा।''

–डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

''भोर से जागे/ ये गाँव की गलियाँ/ संझा से ऊँघे''

–अनिता ललित

लहलहाते खेतों के साथ पशुजन का भी गाँवों में बहुत महत्व है। इनके बिना खेतों में काम करना संभव नहीं है। खेत और पशु कृषक की अनमोल धरोहर हैं। इनके बिना गाँव, गाँव नहीं लगता। गाँव में गाय को गौ-माता माना जाता है। कहीं पर बैल के गले की घंटी की गूँज सुनाई देती है तो कहीं पर गायों का रम्भाना। कहीं पर गाय खेतों में चरती हुई नज़र आती है, तो कहीं पर खूँटे में बँधे बैल नज़र आते हैं, यथा–

''खिलखिलाए/ बैलों की घंटी सुन/ मासूम बच्चे।''

–डॉ. उर्मिला अग्रवाल

''गोधूलि बेला/ घर की ओर गैयाँ/ पुकारे माँ-माँ''

–डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

बैलों को जुताई के लिए उपयोग किया जाता है, इन बैलों को बड़े सुंदर तरीके से सजाकर किसान ले जाते हैं और बैल भी अब खुद ही सरेह (खेत) जाने के लिए सर हिला रहा है।

''हुआ विहान/ बैलों की जोड़ी/ सरेह जाओ।''

–डॉ. जेन्नी शबनम

''चली रहट/ बैलों की जोड़ी चली/ चली ज़िंदगी।''

–ऋता शेखर 'मधु'

''बैलों की जोड़ी/ छम-छम करती/ खेतों में दौड़ी।''

–डॉ. भावना कुँअर

''चर्रक चूँ-सी/ बैलगाड़ी चलती/ कच्ची सड़क।''

–शांति पुरोहित

इन पशुओं के अलावा भी कई सारे पशु-पक्षी गाँवों की शोभा बढ़ाते हैं। कुछ जीव-जंतु वर्षा होने के बाद नज़र आते हैं, तो कुछ फसल पकने का इंतजार करते हैं। ये सभी जीव-जंतु गाँवों में विचरण करते दिखाई देते हैं। जहाँ पर इंसान अपना पेट भरने के लिए इतनी मेहनत करता है तो भला ये जीव-जंतु कैसे पीछे रह सकते हैं। इन सभी जीव जंतुओं को अपना भोजन खोजते हुए सुधा जी ने बहुत बारीकी से देखा है। इसलिए उन्होंने इसे बहुत ही सुंदर काव्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया है, यथा–

''खोज ही लेती/ खेतों में छिपे चूहे/ 'ब्राह्मणी' चील।''

–डॉ. सुधा गुप्ता

''खुटक बढ़ई/ लंबी चोंच मारता/ कच्ची मकई।''

–डॉ. सुधा गुप्ता

बगुला तो गाय, भैंस और बैल की पीठ पर सवारी कर अपना पेट भर लेता है। उनके घावों पर और चमड़ी पर जो कीड़े होते हैं वो उन्हीं को खाता है। भले ही फिर इसमें दूसरे प्राणी को कष्ट हो यथा–

''गाय-बगुला/ बैल पर सवार/ कुरेदे जख्म।''

–डॉ. सुधा गुप्ता

फलों के राजा आम को पाल लगाकर पकाना या धान की कोठियों में पकाना और बागों में जब गर्मियों में आम लदे होते हैं तब उन आमों को चुराकर खाना, इन सभी गाँव की बातों का सजीव चित्रण हाइकु में देखा जा सकता है, यथा–

''दुपहरियाँ/ तोड़ के लाए छुपके/ कच्ची केरियाँ।''

–डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

''धान की कोठी/ गजब करामती/ पकाए आम।''

–भावना सक्सेना

''कच्चे आमों की/ पाल लगाना, अब/ स्वाद दबाना।''

-डॉ. भावना कुँअर

महुआ वृक्ष और उसके फल दोनों का ही गाँवों में बहुत महत्व है। ये फल बहुत ही मीठे और स्वादिष्ट लगते हैं। इसके पकने पर इसकी खुशबू पूरे वातावरण में फैल जाती है।

''महुआ खड़ा/ बिछा श्वेत चादर/ किसे जोहता।''

-डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव

''गंध की छुरी/ भाँजे मत्त महुआ/ घायल हुआ।''

-नीलमेंदु सागर

''आदिवासी का/ मिज़ाजी रसगुल्ला/ सोंधा महुआ।''

-नलिनीकांत

गाँव में गोबर के उपले जिसे 'गोयठे' भी कहा जाता है, उसको ही चूल्हे में डाल कर खाना पकाया जाता है गाँवों में इसे एक महत्वपूर्ण ईंधन माना जाता है। बहुत से स्थानों पर इसका उपयोग किया जाता है, पूजन में, तो कहीं पर इन उपलों को आग लगाने के काम में लिया जा रहा है। इन उपलों को जब बनाया जाता है तो साधारण सी बात है बनाते समय बनाने वाले की अँगुलियों के निशान उस पर आ जाते हैं तो उस का वर्णन बड़े ही सुंदर तरीके से किया है, यथा—

''गोयठे पर/ चित्रित अँगुलियाँ/ अजन्ता शैली।''

-नलिनीकांत

''तोड़े-उपले/ दादी हारे में डाले/ आग सुलगे।''

-डॉ. हरदीप कौर संधु

बच्चे अपनी धमा-चौकड़ी कर रहे और मस्ती में खेल रहे हैं—

''धप्पम-धप्पा/ लंगड़ी-टाँग खेले/ नीम तले।''

-वीर बाला काम्बोज

''छोटी-सी छोरी/ नीम-सींक झाड़ू से/ कूड़ा सकेरे।''

-डॉ. उर्मिला अग्रवाल

गाँव में चरखे से सूत कातना और रुई धुनना यह सब भी नजर आता है। 'त्रिंजण' एक सामूहिक क्रिया है जिसमें कुमारी लड़कियाँ एकत्र होकर गीत गाती है और चरखा काता करती है। पंजाबी संस्कृति में चरखे का विशेष महत्व है। डॉ. हरदीप इससे बहुत प्रभावित हैं और उन्होंने इसे प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया है। उन्होंने विदेश में रहकर गाँव की याद को ताजा करने की कोशिश की है। गाँव में बिताये क्षण याद आते हैं और गाँव की छोटी-छोटी बात हाइकुकारों के हाइकु में दिखाई देती है। यथा—

''पीपल नीचे/ खींच चक्र खेलते/ वे 'डंडा-डुक'।''

''वे मुलाकातें/ मन-त्रिंजण मेले/ संदली रातें।''

-डॉ. हरदीप कौर संधु

('त्रिंजण' जैसे सांस्कृतिक शब्द के अर्थ और मूल्य को हम शहरीकण में खोकर भूलते जा रहे हैं।)

''तकली चली/ गड़रिया गाँव का/ ऊन कातता।''

-डॉ. नूतन डिमरी गैरोला

''तुनतुन गाए/ पुम्बे की धुनकी ने/ रूई है धुनी।''

-रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

सभी को अपना गाँव प्यारा लगता है, जब आपने किसी गाँव में कुछ दिन या महीने या साल बिताया हो तो उसकी यादें आप को हमेशा अपनी ओर खींचती हैं। इन मधुर स्मृतियों का वर्णन कुछ हाइकुकारों ने अपने हाइकु में किया है, यथा—

''चूल्हे का धुआँ/ साँझी की रोटी का स्वाद/ गाँव की खुशबू''

-अनिता ललित

''नीम की छाँव/ मीठे कुएँ का पानी। वो मेरा गाँव।''

-डॉ. भावना कुँअर

''फूली सरसों/ खेतों को देखे बिन/ बीते बरसों।''

-डॉ. गोपाल बाबू शर्मा

आज के इस कम्प्यूटर युग में सब कुछ इतनी जल्दी-जल्दी बदल रहा है, तो फिर गाँव में भी कुछ वर्षों में बदलाव अपेक्षित है। गाँव में, कुछ वर्ष पहले जो अनुभव किया, आज वो अनुभव नहीं किया जा सकता। कुएँ के पानी की जगह अब बोरवेल ने ले ली है। मटकी की जगह फ्रिज ने ले ली है। चूल्हों पर तो खाना पकता नहीं क्योंकि अब गैस आ गयी है। इस तरह के बहुत सारे बदलाव गाँव में आए हैं। कुछ तो बहुत ही अच्छे सकारात्मक बदलाव हैं, लेकिन कुछ हमें अपनी संस्कृति से दूर कर रहे हैं। गाँव में विकास की आवश्यकता है लेकिन इससे गाँव की आत्मा को क्षति न पहुँचे तो अच्छा है। हम भले ही चाँद को छू लें लेकिन अपनी मिट्टी से नाता नहीं टूटना चाहिए और दिलों में गाँव की मिट्टी की खुशबू महकती रहे—

''गाँव मुझको/ ढूँढता, मैं गाँव को/ खो गए दोनों।''

-डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव

नर्मदा घाटी का राबिन हुड टंट्या भील

डॉ. हीरालाल बाछोतिया

टंट्या भील की खूबी यह थी कि यूरोप के प्रसिद्ध डाकू राबिन हुड की तरह वह चंट चालाक, प्रति उत्पन्न मति और स्फूर्ति से भरा हुआ था। उसने अपने दल में कई अपने हमशक्ल भी रखे हुए थे इसलिए वह कई जगह एक साथ दिखाई दे जाता था। यह आम धारणा बन गई कि उसके पास दैवीय शक्तियाँ भी हैं। उसने अपने दल में महिलाओं को भी शामिल किया हुआ था। वे महिलाएँ-पेमिली के नेतृत्व में उसके अभियानों में शामिल होती थीं।

नर्मदा घाटी क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में टंट्या भील छाया रहा। एक तरह से वह इस क्षेत्र के साथ-साथ आसपास के क्षेत्रों में गरीबों का मसीहा के रूप में जाना जाता था। वह गरीबों की उदारता से मदद करता था। उससे संबंधित बच्चों और महिलाओं के प्रति दया दिखाने की अनेकानेक कहानियाँ घर-घर में आज भी प्रचलित हैं। उसने बहुत सी लड़कियों की शादी में आर्थिक मदद भी दी थी। लड़कियों की शादियों में वह भेष बदलकर आता और ढेर सारी चीजें और नगद दे जाता। लोग उसे ' टंट्या मामा' भी कहने लगे थे। उसकी वीरता और अदम्य साहस की बदौलत तात्या टोपे ने प्रभावित होकर टंट्या भील को गुरिल्ला युद्ध में पारंगत बनाया। टंट्या भील अंग्रेजों के शोषण तथा विदेशी हस्तक्षेप के खिलाफ उठ खड़ा हुआ, देखते ही देखते वह गरीब आदिवासियों का मसीहा बनकर उभरा। वह अंग्रेजों को लूटकर गरीबों की भूख मिटाता था।

हम बात कर रहे इंडियन रॉबिनहुड के नाम से पहचाने जाने वाले टंट्या भील की। देश की आजादी के जननायक और आदिवासियों के हीरो टंट्या भील की। मामा संबोधन इतना लोकप्रिय हो गया कि प्रत्येक भील आज भी अपने आपको मामा कहलाने में गौरव का अनुभव करता है।

टंट्या भील का जन्म पूर्व निमाड़ (खंडवा) जिले की पंधाना तहसील के गाँव बड़दा में सन् 1842 में हुआ था। तीस वर्ष की आयु में टंट्या भील की अनबन गाँव के पटेल से हुई। ये पटेल ब्याज पर रुपये देने वाले या सूदखोर थे। उन दिनों अकाल पड़ने की घटना बार-बार हो रही थी। किसानों से अंग्रेजों द्वारा ऊँची दर पर नगद लगान वसूल किया जाता था। अकाल पड़ने पर सरकार द्वारा काश्तकार को कोई मोहलत नहीं दी जाती थी। लगान न देने पर उसका खेत-खलिहान सब नीलाम कर दिया जाता था। उसे ही पटेल सस्ते दामों पर खरीद लेते और जमीन के मालिक बन जाते। अकाल में कुछ भी पैदा न होने पर किसान, जो लगभग सभी भील, कोरकू आदि थे मनीलैंडर के पास जाते थे ताकि खाने के लिए अनाज और बुआई के लिए बीज का इंतजाम कर सकें। मनीलैंडर मनमानी दर पर जमीन गिरवी रख लेता था। समय पर ऋण न चुकाने पर किसान

सम्पर्क: पूर्व अध्यक्ष हिंदी प्रकोष्ठ, एनसीईआरटी, के-40 एफ, साकेत, नई दिल्ली-110017, मो. 9810680305

(आदिवासी) पटेलों के शोषण का शिकार होता था। अदालती कार्यवाही में किसान को जमीन से बेदखल कर दिया जाता था। टंट्या भील पटेलों की इस बेईमानी और शोषण के बेहद खिलाफ था। अदालत द्वारा बेदखल करने की प्रक्रिया में भी पक्षपात से वह अंग्रेजों के खिलाफ हो गया था। वह वास्तव में आदिवासियों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाना चाहता था, सबको संगठित करना चाहता था लेकिन पटेलों ने अंग्रेजों से साँठ-गाँठ कर उसे अपराधी घोषित करवा दिया। जैसा कि कहा गया कि वह खंडवा में तात्या टोपे से मिला था। तात्या टोपे से टंट्या भील ने गुरिल्ला युद्ध भी सीखा था। टंट्या भील वास्तव में सूदखोरों के शोषण के खिलाफ था जबकि अंग्रेज अधिकारी सूदखोरों के समर्थक थे। इसी कारण वह अंग्रेजों के भी खिलाफ हो गया था। तीस साल की आयु में वह कतिपय अपराधों के लिए बंदी बनाया गया और एक साल तक जेल में रहा। उसके बाद वह छोटी-मोटी चोरियाँ करता रहा। एक बार उसने एक पटेल के भाई को पकड़ा और तभी छोड़ा जब उसे 100 रुपये मिल गए। उस समय 100 रुपये एक बहुत बड़ी राशि थी। वह पकड़ा गया और 1878 में खंडवा जेल में रखा गया। परंतु तीन दिन बाद ही वह जेल से भाग निकला। यह डाकू दल के नेता के रूप में उसके जीवन का दूसरा मोड़ था। दस वर्ष से अधिक समय तक डाकू दल के मुखिया के रूप में पूरे देश में मशहूर हो गया। सन् 1880 में उसके दल के 200 अनुयायियों को पकड़ लिया गया और जबलपुर जेल में बंद कर दिया गया। लेकिन उनमें से कई जबलपुर जेल से भाग निकले और निमाड़ वापस पहुँच गए। इसका असर यह हुआ कि जेल के बाहर बचे हुए उसके नए अनुयायियों में नया जोश आ गया।

टंट्या भील की खूबी यह थी कि यूरोप के प्रसिद्ध डाकू राबिन हुड की तरह वह चंट चालाक, प्रति उत्पन्न मति और स्फूर्ति से भरा हुआ था। उसने अपने दल में कई अपने हमशक्ल भी रखे हुए थे इसलिए वह कई जगह एक साथ दिखाई दे जाता था। यह आम धारणा बन गई कि उसके पास दैवीय शक्तियाँ भी हैं। उसने अपने दल में महिलाओं को भी शामिल किया हुआ था। वे महिलाएँ-पेमिली के नेतृत्व में उसके अभियानों में शामिल होती थी। कहा जाता है, पुलिस के द्वारा घिर जाने पर टंट्या भील पेमिली की सहायता से सबकी आँखों में धूल झोंककर निकल भागता था।

अब टंट्या भील का आतंक और ख्याति इंदौर सहित पूरी रियासत, इल्लीचपुर, होशंगाबाद आदि क्षेत्रों में भी फैल गई। सेंट्रल के एजेंट सर लोपेल ग्रीफिन ने उसे पकड़ने की बड़ी कोशिश की लेकिन इसमें उन्हें असफलता ही हाथ लगी। उसका सर काट कर लाने के लिए पाँच हजार रुपये का इनाम घोषित किया गया लेकिन वह भी बेअसर रहा। टंट्या भील गरीबों की मदद करता था। लूट का धन गरीबों को खाना खिलाने के साथ खबर लाने वालों को बाँटता था। इसलिए भील, कोरकू तथा अन्य लोगों पर उसकी जबर्दस्त धाक बैठी हुई थी। घर-घर में उसकी उदारता की कहानियाँ प्रचलित थीं। उसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि उसे टंट्या मामा कहने लगे थे। इसका मुख्य कारण उसका अनेकानेक लड़कियों की शादी में आर्थिक सहायता देना ही माना जा सकता है।

उधर पुलिस निरंतर उसका पीछा करती रहती थी। वह लगातार भागता रहता था या जगह बदलता रहता था। इससे वह थक गया। कहा जाता है कि उसने खुद सरकारी अधिकारियों को पैसा खिलाया ताकि वे लोग उसके लिए क्षमा दान आदेश प्राप्त करें। अंत में इंदौर सेना के एक अधिकारी ने क्षमा दान मिलने का आश्वासन दिया। इस आश्वासन के भरोसे रहने पर उसे धोखे से पकड़ लिया गया। उसे बंदी बना लिया गया और जबलपुर ले जाया गया। जब उसे जबलपुर ले जाया जा रहा था तब रास्ते के हर रेलवे स्टेशन पर इतनी बड़ी संख्या में लोग उसे देखने पहुँचने लगे कि उन्हें सँभालना मुश्किल होने लगा। उसके प्रति लोगों की अपार सहानुभूति को देखकर नागपुर बार एसोसिएशन ने चीफ कमिश्नर से उसे छोड़ देने की अपील की। लेकिन अंग्रेज कहाँ मानने वाले थे। टंट्या भील पर मुकदमा चलाया गया और 4 दिसंबर 1889 में उसे फाँसी दे दी गई।

नर्मदा घाटी में टंट्या भील के दुस्साहस की कहानियाँ राबिनहुड की किंवदंतियों को भी पीछे छोड़ देती है। निमाड़ में घर-घर में गाए जाने वाले लोकगीतों में '' टंट्या मामा'' आज भी जीवित है। खंडवा-इंदौर के बीचों बीच उसके दाह संस्कार के स्थान पातालपानी और कलाकुंड के बीच पर उसकी समाधि बनी हुई है जहाँ कुछ सेकंड के लिए रेलगाड़ी रोक दी जाती है। जहाँ उसकी समाधि है, वहाँ छोटी-छोटी काष्ठ प्रतिमाएँ प्रदर्शित हैं जिनके सामने लोग श्रद्धा नहीं तो आदर देने के लिए सर झुका देते हैं। यह चमत्कारिक प्रभाव उस गरीब आदिवासियों के मसीहा ''टंट्या मामा'' का जिसे आज भी अपनी सही पहचान नहीं मिली है, सिवाय इसके कि निमाड़ में जहाँ उसका जन्म हुआ था, उसकी शहादत के दिन अर्थात् 4 दिसंबर को स्थानीय अवकाश घोषित कर दिया जाता है।

❍❍❍

एक और इरोस्ट्रेटस

मूल लेखक: ज्याँ पाल सार्त्र
अनुवाद: सुशांत सुप्रिय

मुझे लगता है, आप यह जानने का उत्सुक होंगे कि वह व्यक्ति कैसा होगा जो मनुष्य से प्यार नहीं करता। ठीक है, मैं वैसा ही आदमी हूँ और मैं उनसे इतना कम प्यार करता हूँ कि जल्दी ही बाहर जाकर उनमें से आधा दर्जन की हत्या कर दूँगा। शायद आप हैरान होंगे कि केवल आधा दर्जन ही क्यों? क्योंकि मेरे रिवॉल्वर में केवल छह गोलियाँ हैं। अमानवीयता है न? और एकदम असभ्य कृत्य? लेकिन मैं आप को बताता हूँ कि मैं उनसे प्यार नहीं करता। मैं समझता हूँ, आप क्या महसूस करते हैं। किंतु जो कुछ आपको अपनी ओर खींचता है, वही मुझमें घृणा उत्पन्न करता है।

सम्पर्क: ए-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभवखंड, इंदिरापुरम,
गाजियाबाद-201014 (उ.प्र.) मो. 8512070086,
ई-मेल: sushant1968@gmail.com

लोगों को ऊँचाई से देखना चाहिए। बत्तियाँ बुझाकर कमरे की खिड़की के पास खड़े हो जाइए। किसी को एक पल के लिए भी शक नहीं होगा कि आप उन्हें वहाँ ऊपर से देख सकते हैं। लोग अपने सामने की चीजों के बारे में सचेत होते हैं। कभी-कभार पीठ पीछे की चीजों के बारे में भी, किंतु उनका सारा ध्यान पाँच फुट आठ इंच की ऊँचाई तक के दर्शकों तक ही सीमित होता है। आठवीं मंजिल से डर्बी टोपी कैसी दिखाई देती है, इस पर कब किसने ध्यान दिया है? चटकीले रंगों और भड़कीली पोशाकों का इस्तेमाल करके अपने सिरों और कंधों को सुरक्षित रखने के बारे में वे सावधान नहीं होते। उन्हें नहीं पता कि मानवता के इस बड़े शत्रु —'नीचे के दृश्य' का सामना कैसे किया जाए। मैं अक्सर खिड़की की चौखट पर झुककर हँसने लगता। वह सीधी मुद्रा कहाँ है जिस पर उन्हें इतना गर्व है—वे पटरियों से चिपके होते थे और उनके कंधों के नीचे से दो लंबी टाँगें निकल आती थीं।

आठवीं मंजिल की बाल्कनी—यही वह जगह है, जहाँ मुझे अपना सारा जीवन बिता देना चाहिए था। आपको भौतिक प्रतीकों के साथ-साथ नैतिक श्रेष्ठताओं को थामना होता है, नहीं तो वे ढह जाती हैं। पर दूसरे लोगों की तुलना में मुझमें क्या श्रेष्ठता है? स्थिति की श्रेष्ठता, और कुछ नहीं। मैंने खुद को अपने भीतर के मनुष्य से ऊपर स्थापित कर लिया है और मैं इसका अध्ययन करता हूँ। यही कारण है कि नौत्रेदेम की मीनारें, आइफिल टावर के दज्जे, साक्रेकोऊर और रूए दे लांबे पर स्थित आठवीं मंजिल—ये सब मुझे हमेशा पसंद रहे हैं। ये बहुत बढ़िया प्रतीक हैं।

कभी-कभी मुझे सड़क पर जाना पड़ता, जैसे दफ्तर जाने के लिए, तो मेरा दम घुटने लगता। यदि आप उनके बराबर खड़े हो तो लोगों को चींटी मानना बहुत मुश्किल होता है। वे आपसे टकराते हैं। एक बार मैंने सड़क पर एक मरा हुआ आदमी देखा था। वह मुँह के बल गिरा हुआ था लोगों ने उसे सीधा किया। उससे खून बह रहा था। मैंने उसकी खुली आँखें और चौकन्नी निगाह देखी। उसका ढेर-सा खून देखा। मैंने खुद से

कहा, ''यह कुछ भी नहीं है यह गीले रोगन जैसा लगता है, गोया उन्होंने उसकी नाक पर लाल रोगन फेर दिया हो। बस।'' पर मुझे अपने पैरों और गर्दन में एक घिनौनी शिथिलता महसूस हुई। मैं बेहोश हो गया। लोग मुझे दवाइयों की एक दुकान पर ले गए। उन्होंने मेरे मुँह पर कुछ थप्पड़ लगाए और पीने के लिए कुछ दिया। मैं उनकी हत्या भी कर सकता था।

मुझे मालूम था कि वे मेरे शत्रु हैं, पर वे यह नहीं जानते थे। वे एक-दूसरे को पसंद करते थे। वे कोहनियाँ रगड़ते थे। वे यहाँ-वहाँ मेरी मदद भी कर देते थे क्योंकि वे सोचते थे कि मैं भी उन जैसा हूँ। पर यदि वे सच का जरा-सा भी अंदाजा लगा पाते तो वे मुझे पीट देते। बाद में उन्होंने ऐसा किया भी। जब उन्हें पता चल गया कि मैं कौन हूँ तो उन्होंने मुझे पकड़ लिया और मेरी खूब पिटाई की। उन्होंने दो घंटे तक स्टेशन-हाउस में मुझे मारा। मुझे थप्पड़ रसीद किए, घूँसे चलाए और मेरे हाथ मरोड़े। उन्होंने मेरी पतलून फाड़ दिया और अंत में मेरा चश्मा जमीन पर फेंक दिया। जब मैं घुटनों और कोहनियाँ के बल झुककर उसे ढूँढ रहा था तो वे हँसे और उन्होंने मुझे ठोकरें मारीं। शुरू से ही मैं जानता था कि वे मेरी धुनाई करेंगे। मैं हट्टा-कट्टा नहीं हूँ और अपना बचाव नहीं कर सकता। उनमें से जो बड़ी डील-डौल वाले थे, वे लंबे अरसे से मेरी तलाश में थे। यह देखने के लिए कि मैं क्या करूँगा, सड़क पर चलते हुए वे जानबूझकर मुझसे टकरा जाते। मैं उन्हें कुछ नहीं कहता। मैं ऐसा जताता जैसे मैं कुछ भी समझा ही नहीं। लेकिन उन्होंने मुझे फिर भी पकड़ लिया। मैं उनसे डरता था, पर ऐसा नहीं हैं कि उनसे नफरत करने के लिए मेरे पास और गंभीर कारण नहीं थे।

जहाँ तक इस सबका संबंध है, उस दिन से सब कुछ बेहतर हो गया, जिस दिन मैंने रिवॉल्वर खरीद लिया। जब आप अपने पास विस्फोट और जोरदार आवाज करने वाली कोई चीज रख लेते हैं तो आप खुद को मजबूत महसूस करते हैं। मैं हर रविवार को रिवॉल्वर साथ लेकर बाहर निकलता। मैं उसे अपनी पतलून की जेब में रख लेता और घूमने निकल जाता। मैं उसे अपनी पैंट पर केकड़े की तरह रेंगता महसूस करता। वह मेरी जाँघ पर ठंडी लगती, लेकिन धीरे-धीरे शरीर के सपर्श से वह गरम होने लगती। मैं कुछ दृढ़ता के साथ चलता। मैं जेब में हाथ डाल लेता और उस चीज को महसूस करता। हर थोड़ी देर बाद मैं पेशाब करने के बहाने शौचालय जाता। वहाँ भी मुझे सावधान रहना पड़ता, क्योंकि मेरे अगल-बगल लोग होते। वहाँ मैं सावधानी से रिवॉल्वर बाहर निकालता। उसका भार महसूस करता। उसके चारखानेदार काले हत्थे और ट्रिगर को निहारता, जो अधखिली पलक की तरह दिखाई देता था।

एक रात मुझे लोगों को गोली से उड़ा देने का विचार सूझा। वह शनिवार की शाम थी। मैं ली से मिलने गया था। वह रूप मोत पार नास्से पर स्थित एक होटल में धंधा करती थी। मैं कभी किसी औरत के साथ सोया नहीं था। इस क्रिया में मैं खुद को लुटा हुआ महसूस करता। किंतु जो कुछ मैंने सुना है, उससे स्पष्ट है कि इस व्यापार में कुल मिलाकर वे ही फायदे में रहती हैं। मैं किसी से कुछ माँगता नहीं, पर मैं किसी को कुछ देता भी नहीं। अन्यथा मेरे पल्ले भी कोई ठंडी, पवित्र स्त्री पड़ती, जो मेरे सामने घृणा से आत्म-समर्पण करती।

मैं हर शनिवार को ली के साथ इकेंसे होटल में जाता और वहाँ एक कमरा लेता। वहाँ मैं बिना छुए उसे देखता रहता। उस रात वह मुझे नहीं मिली। मैंने कुछ देर इंतजार किया। चूँकि वह आती हुई नहीं दिखाई दी, मैंने अंदाजा लगाया कि उसे जुकाम हो गया है। वह जनवरी की शुरुआत थी और बेहद ठंड पड़ रही थी। मैं कल्पनाशील व्यक्ति हूँ और मैंने उस सारे आनंद को अपने सामने चित्रित किर लिया जो मुझे उस शाम मिलता। रूए ओडिसा पर काले बालों वाली एक गठीली और मोटी औरत मौजूद थी। मैं उसे अक्सर वहाँ देखता। मैं प्रौढ़ स्त्रियों से घृणा तो नहीं करता, पसंद नहीं करता। दरअसल वह मोटी औरत मेरी जरूरतों के बारे में कुछ नहीं जानती, और मैं एकदम से उससे वह सब कहते हुए डर रहा था। हालाँकि मैं नए परिचितों के बारे में ज्यादा फिक्र नहीं करता, लेकिन यह भी तो हो सकता है कि ऐसी औरत ने दरवाजे पर पीछे किसी उचक्के को छिपा रखा हो, जो अचानक ही झपट पड़े और मुझसे मेरे रुपए-पैसे छीन ले। फिर भी, उस शाम मुझमें साहस था। मैंने तय किया कि मैं वापस घर जाऊँगा, रिवॉल्वर उठाऊँगा और फिर वहाँ जाकर अपनी किस्मत आजमाऊँगा।

पंद्रह मिनट बाद जब मैं इस औरत के पास पहुँचा तो मेरा रिवॉल्वर मेरी जेब में था और मैं किसी चीज से भयभीत नहीं था। करीब से देखने पर वह बेचारी लगी। वह सड़क पार वाली मेरी पड़ोसन, पुलिस सार्जेंट की बीवी जैसी लग रही थी। मैं बेहद खुश था क्योंकि मैं लंबे अर्से से उसे देखना

चाहता था। जब सार्जेंट घर में नहीं होता था तो वह खिड़की खोलकर रखती थी और मैं अकसर उसे एक नजर देखने के लिए परदे के पीछे खड़ा रहता था। पर वह हमेशा कमरे के कोने में कपड़े बदलती थी।

होटल स्तेला में छठी मंजिल पर केवल एक कमरा खाली था। हम ऊपर गए। वह औरत काफी भारी थी और हर सीढ़ी पर साँस लेने के लिए रुकती थी। मुझे अच्छा लगा। तोंद के बावजूद मेरी देह हल्की-फुल्की है और मुझे थकाने के लिए छह से ज्यादा मंजिलों की जरूरत है। छठी मंजिल पर पहुँचकर वह रुकी और अपने दिल पर दायाँ हाथ रखकर उसने गहरी साँस ली। उसके बाएँ हाथ में कमरे की चाबी थी।

मेरी ओर देखकर मुस्कराने का प्रयास करते हुए उसने कहा, ''बहुत ऊपर है।'' मैंने बिना कोई जवाब दिए उसके हाथ से चाबी ले ली और दरवाजा खोल दिया। जेब में डाले अपने बाएँ हाथ में मैंने रिवॉल्वर पकड़ रखा था। मैंने उसे तब तक नहीं छोड़ा जब तक मैंने बत्ती नहीं जला दी। उन्होंने वाश-बेसिन पर हरे साबुन की एक टिकिया रख दी थी, जो एक ग्राहक के लिए काफी थी। मैं मुस्कराया। नहाने के पीढ़ों और साबुन के टुकड़ों की मुझे ज्यादा जरूरत नहीं पड़ती। वह औरत अब भी मेरी पीठ के पीछे गहरी साँसें ले रही थी। और यह सब मुझे उत्तेजित कर रहा था। मैं घूमा और उसने अपने होंठ मेरी ओर बढ़ा दिए, लेकिन मैंने उसे दूर धकेल दिया।

''तुम्हारा नाम क्या है?''

''रेनी।''

''अच्छी बात है रेनी, जल्दी करो। मैं इंतजार कर रहा हूँ।''

''तुम कपड़े नहीं उतारोगे?''

मैंने कहा, ''मेरी फिक्र मत करो।''

उसने अपने अधोवस्त्र उतार दिए और उन्हें कपड़ों के ढेर पर सावधानी से डाल दिया।

''तुम थोड़े सुस्त हो, प्रिये। क्या तुम अपनी प्रेमिका से ही सब कुछ करवाना चाहते हो?''

यह कहते हुए वह एकदम मेरी ओर बढ़ी और अपने हाथों के सहारे कुर्सी के हत्थे पर झुकते हुए उसने मेरे सामने घुटनों के बल बैठने की कोशिश की। मैं झटके से उठ खड़ा हुआ।

''ऐसा कुछ नहीं है।'' मैंने कहा।

''तो तुम मुझसे क्या चाहते हो?''

''कुछ नहीं। केवल चहलकदमी। आस-पास घूमो। इससे ज्यादा मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता।

वह भद्दी चाल से कमरे में इधर-उधर घूमने लगी। औरतों को इस हालत में चहलकदमी करने से ज्यादा कोई बात नहीं क्रोधित करती। एड़ियाँ जमीन पर सीधी रखने की उनकी आदत नहीं होती। उस वेश्या ने अपनी कमर धनुषाकार कर ली और अपनी बाँहें लटका ली। मैं जैसे स्वर्ग में था—गले तक कपड़े पहने मैं आरामकुर्सी पर शांत बैठा था। मैं अपने दस्ताने तक पहने हुए था, जबकि वह औरत मेरी आज्ञा से निर्वस्त्र मेरे सामने इधर-उधर घूम रही थी। उसने अपना सिर मेरी ओर घुमाया और दिखावे के लिए कुटिलता से मुस्कराई।

अचानक मैंने उससे कुछ कहा।

''हरामी कहीं के।'' वह शर्माते हुए होठों में बुदबुदाई।

लेकिन मैं जोर से हँसा। तब वह उछली और कुर्सी से अपने अधोवस्त्र उठाने लगी।

''ठहरो!'' मैंने कहा, ''अभी समय नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद ही मुझे तुम्हें पचास फ्रैंक देने हैं लेकिन मुझे अपने पैसों की कीमत चाहिए।''

अपने अधोवस्त्र पकड़कर घबराए स्वर में वह बोली, ''बहुत हो गया, समझे? मुझे नहीं पता, तुम क्या चाहते हो? अगर तुम मुझे बेवकूफ बनाने के लिए यहाँ लाए हो, तो...''

तब मैंने अपना रिवॉल्वर निकाल कर उसे दिखा दिया। उसने गंभीरता से मुझे देखा और बिना एक भी शब्द बोले अपने वस्त्र वापस नीचे डाल दिए।

मैंने उससे कहा, ''कमरे में टहलती रहो।''

वह उसी हालत में ही और पाँच मिनट तक कमरे में घूमती रही। फिर मैंने उसे अपनी छड़ी दी। वह चुपचाप वह सब करती रही

जो मैंने उससे कहा। उसके बाद मैं उठा और मैंने उसे पचास फ्रैंक का नोट थमा दिया। उसने वह नोट ले लिया।

''फिर मिलेंगे'', मैंने कहा, ''उम्मीद है, इन पैसों के बदले मैंने तुम्हें ज्यादा नहीं थकाया।''

पर उस रात मैं अचानक ही उठ बैठा। उसका चेहरा, उसे रिवॉल्वर दिखाते समय उसकी आँखों का भाव और हर सीढ़ी पर हिलता हुआ उसका थुलथुल पेट मुझे बीच रात में याद आने लगे।

क्या बेवकूफी है, मैंने सोचा। मुझे बेहद अफसोस हुआ। जब मैं उसके साथ था, मुझे तब उसे गोली मार देनी चाहिए थी। उसके पेट में अनेक छेद कर देने चाहिए थे। उस रात और अगली तीन रातें अपने सपने में मैंने उसकी नाभि के चारों ओर छह गोल छोटे-छोटे लाल छेद देखे।

*** *** ***

इस सबका नतीजा यह हुआ कि मैं रिवॉल्वर लिए बिना कहीं बाहर नहीं निकलता। मैं लोगों की पीठ देखता रहा और उनकी चाल से यह कल्पना करता कि यदि मैं इन्हें गोली मार दूँ तो ये कैसे लगेंगे। मेरी आदत थी कि हर रविवार को शास्त्रीय संगीत सभा खत्म होने के बाद मैं शातेले के आस-पास घूमता था। शुरुआत थी। धीरे-धीरे भीड़ बाहर निकली। लोग मानो तैरते हुए कदमों से चल रहे थे। आँखों में अभी भी सपने सँजोए, दिलों में सुंदर भावनाएँ लिए वे जैसे एक दुनिया से दूसरी दुनिया में आ रहे थे। मैंने अपना दाहिना हाथ जेब में डालकर पूरी ताकत से रिवॉल्वर का हत्था पकड़ लिया। कुछ पल बाद मैंने खुद को उन पर गोलियाँ चलाते देखा। मैंने उन्हें मिट्टी के मटकों की तरह तोड़ दिया। गोली से उड़ा दिया। वे एक-एक करके उड़ते गए और बचे हुए भयभीत लोग दरवाजों पर लगे शीशे को तोड़कर वापस थिएटर में भागने लगे। यह बहुत उत्तेजक खेल था। जब खेल खत्म हुआ तो मेरे हाथ काँप रहे थे। मुझे अपना होश सँभालने के लिए त्रेहेर के शराबखाने में जाकर कोन्याक पीनी पड़ी।

मैं स्त्रियों को जान से नहीं मारता। मैं या तो उनके गुर्दे में गोली मारता या उनकी पिंडलियों में, ताकि वे नाचने लगें।

मैंने अभी तक कोई फैसला नहीं किया था। पर मैंने हर काम ध्यान से किया। मैंने छोटे-छोटे ब्यौरों से शुरुआत की। मैं डेन्फर्ट-रोशेरो की 'शूटिंग-गैलरी' में अभ्यास करने गया। मेरा निशाना ज्यादा सधा हुआ नहीं था, लेकिन आदमी बड़ा लक्ष्य होता है। खास करके तब जब आप नली सटा कर गोली मारते हैं। फिर मैंने अपने विज्ञापन का प्रबंध किया। मैंने ऐसा दिन चुना जब मेरे सभी सहकर्मी दफ्तर में इकट्ठे हों। सोमवार की सुबह। मेरे उनके साथ हमेशा दोस्ताना संबंध रहे हैं, हालाँकि मैं उनसे हाथ मिलाते हुए डरता था। वे अभिवादन करते के लिए अपने दस्ताने उतार लेते। हाथों को नंगा करने, दस्तानों को फिर से पहनने और उँगलियों पर धीरे-धीरे सरकाने तथा झुर्रियों से भरी नग्नता को प्रदर्शित करने का उनका तरीका बेहद अश्लील था। मैं अपने दस्ताने हमेशा पहने रहता।

सोमवार को हम ज्यादा काम नहीं करते थे। व्यापारिक सेवा विभाग से टाइपिस्ट हमारे लिए पावतियाँ ले आती थी। लोमोर्सिस खुश होकर उससे मजाक करता और उसके चले जाने के बाद वे सब तृप्त भाव से उसकी सुंदरता की चर्चा करते। फिर वे लिंडबर्ग के बारे में बात करते। मैंने उनसे कहा, ''मुझे काले नायक पसंद है।''

''नीग्रो?'' मसी ने पूछा।

''नहीं, काले। जैसे काला जादू में। लिंडबर्ग श्वेत नायक है।मुझे उसमें कोई रुचि नहीं है।

''हाँ, अटलांटिक पार करना बहुत आसान है न।'' ''बूखसिन ने खट्टे मन से कहा।

''मैंने उन्हें काले नायक की अपनी संकल्पना से परिचित करवाया।

''अराजकतावादी?''

''नहीं, ''मैंने शांत भाव से कहा।'' देखा जाए तो अराजकतावादी मनुष्य से प्रेम करते हैं।''

''फिर वह कोई पागल होगा।''

मसी कुछ पढ़ा-लिखा था। उसने हस्तक्षेप किया। ''मैं तुम्हारे पात्र को जानती हूँ।'' उसने मुझसे कहा, ''उसका नाम इरोस्ट्रेटस है। वह प्रसिद्ध होना चाहता था और उसे दुनिया के आश्चर्यों में से एक इफीसस के मंदिर को जलाने से बेहतर कोई काम नहीं सूझा।''

''और उस मंदिर को बनवाने वाले व्यक्ति का क्या नाम था?''

''मुझे याद नहीं, उसने स्वीकार किया। ''शायद कोई भी उसका नाम नहीं जानता है।''

''सच? लेकिन तुम्हें इरोस्ट्रेटस का नाम याद है। क्या तुम जानते हो, चीजों के बारे में उसकी कल्पना ज्यादा बुरी नहीं थी।''

इन्हीं शब्दों के साथ बातचीत खत्म हो गई, पर मैं एकदम शांत था।

समय आने पर उन्हें ये बातें याद आएँगी। मैंने इससे पहले इरोस्ट्रेटस का नाम नहीं सुना था। पर मेरे लिए उसकी कथा प्रेरणा का स्रोत थी। वह दो हजार साल से भी पहले मर चुका था, पर उसका कृत्य अब भी काले हीरे-सा चमक रहा था। मैंने सोचना शुरू किया कि मेरी नियति लघु और त्रासद होगी। पहले मुझे डर लगा, किंतु फिर मैं इसका आदी हो गया। यदि आप इस बारे में विशेष दृष्टिकोण से सोचें तो यह भयानक लग सकता है, पर दूसरी ओर यह बीत रहे पल को काफी शक्ति और सुंदरता प्रदान करता है। सड़क पर चलते हुए मुझे अपने भीतर एक अजीब-सी ताकत का अहसास होता। रिवॉल्वर मेरे पास था—वह चीज जो, जो विस्फोट और आवाज करती है। लेकिन अब मुझे वह चीज शक्ति नहीं देती थी। दरअसल शक्ति और विश्वास मेरे भीतर से उत्पन्न हो रहा था। जैसे मैं खुद किसी रिवॉल्वर की तरह था, तारपीडो की तरह था, बम की तरह था। मैं भी अपने शांत जीवन के अंत में एक दिन फट जाऊँगा और मैग्नीशियम की तरह लघु और तेज चमक से विश्व को प्रकाशमय कर दूँगा। उस समय मुझे कई रातों तक एक ही सपना आया। मैं अराजकतावादी था। मैंने खुद को जार के रास्ते में डाल दिया था और मेरे पास आग उगलने वाला एक यंत्र था। निश्चित समय पर जुलूस निकला, बम फटा और हम भीड़ के सामने हवा में उछाल दिए गए—मैं, जार और सुनहरे फीते वाले तीन अधिकारी।

इसके बाद मैंने कई हफ्तों तक दफ्तर में अपनी शक्ल नहीं दिखाई। मैं मुख्य मार्गों पर अपने भावी शिकारी के बीच घूमता या कमरे में बंद होकर अपनी योजनाएँ बनाता। अक्टूबर के शुरू में ही उन्होंने मुझे नौकरी से निकाल दिया। तब मैंने आराम से यह पत्र लिखा, जिसकी मैंने एक सौ दो प्रतियाँ बनाई—

''श्रीमन्

आप प्रसिद्ध व्यक्ति हैं और आपकी रचनाएँ हजारों की संख्या में बिकी हैं। मैं आपको बताता हूँ, क्यों—क्योंकि आप मनुष्य से प्यार करते हैं। आपके लहू में मानवतावाद है। आप भाग्यशाली हैं। जब आप लोगों के साथ होते हैं तो अपना विस्तार कर लेते हैं। जब भी आप अपने जैसा कोई इंसान देखते हैं, आपमें उसके लिए सहानुभूति उमड़ आती है, भले ही आप उसे जानते भी न हो। आपमें उसके शरीर के प्रति, उसकी टाँगों के प्रति, और इन सबसे ज्यादा उसके हाथों के प्रति रुचि है—इससे आपको खुशी होती है, क्योंकि उसके हर हाथ में पाँच उँगलियाँ हैं और वह बाकी उँगलियों के साथ अपना अँगूठा भिड़ा सकता है। जब आपका पड़ोसी मेज से कलम उठाता है तो आप खिल उठते हैं, क्योंकि उसे उठाने का एक तरीका है जो बेहद मानवीय है और जिसका वर्णन अक्सर आपने अपनी रचनाओं में किया है। यह किसी बंदर के तरीके से कम लचीला और कम तेज है, लेकिन उससे कहीं ज्यादा समझदार तरीका है। आप भी आदमी की गहरे जख्म खाई मुद्रा से और उसकी प्रसिद्ध दृष्टि से प्यार करते हैं। यह जंगली पशु के तौर-तरीकों से अलग है। इसलिए आपके लिए इंसान से उसी के बारे में बात करने के लिए सही लहजा ढूँढ़ना आसान है—मर्यादित, किंतु उन्माद से भरा हुआ। लोग आपकी किताबों पर लालचियों की तरह टूट पड़ते हैं। उन्हें खूबसूरत आरामकुर्सियों पर बैठकर पढ़ते हैं। वे महान प्रेम के बारे में सोचते हैं—शांत और त्रासद प्रेम, जो आप उनके सामने प्रस्तुत करते हैं। वह उनकी अनेक कमियों, जैसे बदसूरत होने, रिश्तों में धोखेबाजी और पहली जनवरी को वेतन वृद्धि न होने की भरपाई कर देता है। तब वे खुशी से आपकी नई पुस्तक के बारे में कहते हैं—अच्छी रचना है।

मुझे लगता है, आप यह जानने का उत्सुक होंगे कि वह व्यक्ति कैसा होगा जो मनुष्य से प्यार नहीं करता। ठीक है, मैं वैसा ही आदमी हूँ और मैं उनसे इतना कम प्यार करता हूँ कि जल्दी ही बाहर जाकर उनमें से आधा दर्जन की हत्या कर दूँगा। शायद आप हैरान होंगे कि

केवल आधा दर्जन ही क्यों? क्योंकि मेरे रिवॉल्वर में केवल छह गोलियाँ है। अमानवीयता है न? और एकदम असभ्य कृत्य? लेकिन मैं आप को बताता हूँ कि मैं उनसे प्यार नहीं करता। मैं समझता हूँ, आप क्या महसूस करते हैं। किंतु जो कुछ आपको अपनी ओर खींचता है, वही मुझमें घृणा उत्पन्न करता है। मैंने आप ही की तरह लोगों को हर वस्तु पर निगाह रखे, बाएँ हाथ से इकोनॉमिक रिव्यू के पन्ने धीरे-धीरे पलटते हुए देखा है। क्या यह मेरी गलती है कि मैं समुद्री सिंहों को भोजन करते हुए देखना अधिक पसंद करता हूँ? इंसान अपने चेहरे को शरीर-विज्ञान के खेल में बदले बिना उससे कोई काम नहीं ले सकता। जब वह मुँह बंद करके कुछ चबाता है तो उसके जबड़े के कोने ऊपर-नीचे होते रहते हैं। मैं जानता हूँ, आप इस दुख भरे आश्चर्य को पसंद करते हैं। पर मुझे इससे परेशानी होती है, न जाने क्यों; मैं शुरू से ही ऐसा हूँ।

यदि हम लोगों में केवल रुचियों का ही अंतर होता तो मैं आपको कष्ट नहीं देता। पर यह सब कुछ ऐसे घटित होता है जैसे सारी सज्जनता आपमें ही है, मुझमें कुछ नहीं मैं न्यूबर्ग झींगे को पसंद या नापसंद करने के लिए तो स्वतंत्र हूँ, किंतु यदि मैं मनुष्यों को नापसंद करता हूँ तो मैं कमीना हूँ और सूरज की रोशनी तले मेरे लिए कोई जगह नहीं। उन्होंने जीवन की संचेतना पर जैसे एकाधिकार कर लिया है। मेरा ख्याल है कि आप मेरा मतलब समझ जाएँगे। पिछले तैंतीस सालों से मैं ऐसे बंद दरवाजे खटखटा रहा हूँ जिन पर लिखा है—''यदि आप मानवतावादी नहीं है तो आपके लिए प्रवेश निषिद्ध है।' मुझे सब कुछ त्यागना पड़ा है। मुझे चुनाव करना पड़ा—वह या तो असंगत और दुर्भाग्यपूर्ण प्रयत्न रहा या देर-सवेरे वह उनके फायदे में बदल गया। मैं खुद को उन विचारों से अलग नहीं कर सका, जिन्हें बनाते समय मैंने उनका स्थान साफ-साफ नियत नहीं किया था। वे मेरे भीतर संघटित जातियों की तरह बने रहे। मेरे प्रयोग किए हथियार तक उनके थे। उदाहरण के लिए, शब्द—मैं अपने शब्द चाहता था, किंतु जिन शब्दों का मैं इस्तेमाल करता था, वे पता नहीं कितनी चेतनाओं से घिसटकर निकले हैं। उन आदतों के कारण जो मैंने दूसरों से पाई है, वे खुद-ब-खुद मेरे जहन में क्रमबद्ध हो जाते हैं। और यह भी असंगतिहीन नहीं है कि मैं लिखते समय उनका प्रयोग कर रहा हूँ। हालाँकि यह अंतिम बार है।

मैं आपको बताता हूँ, लोगों से प्रेम कीजिए वरना उन्हें हक है कि आपको बाहर खदेड़ दें। खैर, मैं खदेड़ा जाना नहीं चाहता। जल्दी ही मैं अपना रिवॉल्वर लूँगा, नीचे सड़क पर जाऊँगा और यह सुनिश्चित करूँगा कि कोई उन लोगों का कुछ बिगाड़ न सके। अलविदा। शायद आप ही वह हो जिससे मैं मिलूँगा। आप इस बात का अंदाजा बिलकुल नहीं लगा पाएँगे कि आपको हैरान करने में मुझे कितनी खुशी होगी। यदि ऐसा नहीं होता—और इसकी संभावना ज्यादा है—तो कल का अखबार पढ़िएगा। उसमें आप पाएँगे कि पॉल हिल्बेयर नाम के शख्स ने उन्माद के पल में छह राहगीरों की हत्या कर दी। समाचारपत्रों के गद्य के महत्व को आप औरों से अधिक समझते हैं। आप समझते हैं कि मैं 'उन्मादी' नहीं हूँ। इसके ठीक उलट मैं एकदम शांतिचित्त हूँ और महोदय, मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप इन विशिष्ट भावनाओं में मेरे विश्वास को स्वीकार करें।

—पॉल हिल्बेयर

मैंने वे एक सौ दो पत्र एक सौ दो लिफाफों में डाले और उन पर फ्रांस के एक सौ दो लेखकों के पते लिख दिए। उसके बाद मैंने डाक टिकटों की छह गड्डियों के साथ सब कुछ अपनी मेज की दराज में डाल दिया।

अगले दो सप्ताह मैं बहुत कम बाहर निकला। मैंने खुद को धीरे-धीरे अपने अपराध में जज्ब होने दिया। अकसर मैं शीशे में देखता कि मेरे चेहरे में खुशी से बदलाव हो रहा है। मेरी आँखें बड़ी हो गयी थी। ऐसा लगता था जैसे वे मेरे सारे चेहरे को खा रही हो। वे चश्मे के पीछे काली और कोमल लगती थीं और मैं उन्हें नक्षत्रों की तरह घुमाता था। वे आँखें किसी कलाकार या हत्यारें की आँखों की तरह तेज थीं, पर मैंने अंदाजा लगाया कि सामूहिक हत्याओं के बाद उनमें और भी गहरा परिवर्तन होगा। मैंने दो खूबसूरत लड़कियों की फोटो

देखी है—नौकरानियों की, जिन्होंने अपनी मालकिनों की हत्या करके उन्हें लूट लिया था। मैंने उनके पहले के और बाद के चित्र देखे हैं। पहले के चित्रों में उनके चेहरे किसी बदसूरत भूत के कॉलरों पर जमे शर्मीले फूलों-से दिखाई देते थे। किसी सतर्क घूँघट बनाने वाली कंघी ने उनके बालों को बिल्कुल एक जैसा आकार दिया था। उनके घुँघराले बालों से भी ज्यादा भरोसा दिलाने वाली चीज थी उनके कॉलर और फोटोग्राफर के सामने होने का उनका अहसास। उनमें बहनापे की समानता लगती थी—एक ऐसी समानता, जो फौरन खून के रिश्तों और प्राकृतिक-पारिवारिक संबंधों को उजागर कर देती है। बाद की फोटों में उनके चेहरे आग जैसे दैदीप्यमान थे। उनकी गर्दनें उन कैदियों की तरह नंगी थी जिनके सिर अभी-अभी उड़ाए जाने हों। हर जगह झुर्रियाँ थीं। डर और घृणा की डरावनी झुर्रियाँ, जैसे कोई हिंसक पशु उनके चेहरों पर चला हो और अपनी छाप छोड़ गया हो। और वे आँखें—वे काली, उथली आँखें मेरी आँखों की तरह थीं।

''यदि यह अपराध, जो अधिकांश में केवल अवसर था, ''मैंने खुद से कहा, ''लड़कियों के चेहरों को बदलने के लिए पर्याप्त है, तो मैं उस अपराध से क्या अपेक्षा नहीं कर सकता, जिसकी कल्पना मैंने स्वयं की है और जिसे मैं खुद शक्ल दूँगा।'' वह मुझ पर अधिकार पा लेगा और मेरे सारे मानवीय भद्देपन को दूर कर देगा... अपराध, जो उसे दोहरे रूप में करने वाले आदमी के जीवन को काट देता है। ऐसा समय आ सकता है जब कोई पीछे लौटना चाहे, पर यह चमकदार चीज उस समय आपके पीछे होती है, आपका रास्ता रोकती हुई। मेरी माँग केवल एक घंटे की थी ताकि मैं अपने कृत्य का आनंद ले सकूँ।

मैंने ज्यादा खर्चीली जिंदगी शुरू कर दी। मैंने रुए वेविन पर स्थित एक रेस्तराँ के मालिक से सुबह-शाम अपना खाना मँगवाने का प्रबंध कर लिया। वेटर ने घंटी बजाई पर मैंने दरवाजा नहीं खोला। मैंने कुछ मिनट इंतजार किया, फिर दरवाजा आधा खोला और फर्श पर रखी थाली में भाप छोड़ती बड़ी प्लेटें देखीं।

27 अक्टूबर को शाम छह बजे मेरे पास कुछ 17 फ्रैंक और 50 सेतीमे बचे थे। मैंने अपना रिवॉल्वर उठाया, चिट्ठियों का पुलिंदा लिया और नीचे चला गया। मैंने दरवाजा जानबूझकर बंद नहीं किया ताकि काम खत्म करके लौटते समय मैं ज्यादा तेजी से भीतर आ सकूँ। मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। मेरे हाथ ठंडे हो गए थे और खून जैसे मेरे सिर में जमा हो रहा था। मेरी आँखों में जलन हो रही थी।

मैंने होटल देस एकोलेस और स्टेशनरी वाली दुकान की ओर देखा, जहाँ से मैं पेंसिलें खरीदता था। वे जानी-पहचानी नहीं लगीं। मुझे हैरानी हुई। मैंने खुद से पूछा ''यह कौन-सी सड़क है?''

बुलेवा द्यूत मोंते पर्रनास्से लोगों से खचाखच भरा हुआ था। वे मुझे ठेल रहे थे। दबा रहे थे। अपनी कोहनियों या कंधों से मुझे धकेल रहे थे। मैंने खुद को धक्का लगाए जाने का विरोध नहीं किया। मुझमें उनके बीच घुसने की ताकत नहीं थी। किंतु अचानक मैंने खुद को उस भीड़ के बीचों-बीच पाया, भयावह रूप से लघु और अकेला। केवल चाहने भर से वे मुझे चोट पहुँचा सकते थे। मैं अपनी जेब में पड़े रिवॉल्वर के कारण डरा हुआ था। मुझे लगा कि लोग मेरे पास रिवॉल्वर होने का अनुमान लगा सकते हैं। वे अपनी तीखी निगाहों से मुझे घूरते और अपने पाशविक पंजों से मुझे बेधते हुए खुशी भरी घृणा से कहते, ''ऐ तुम... हाँ, तुम्हीं...!'' वे मेरे चिथड़े उड़ा सकते थे। वे मुझे अपने सिरों से भी ऊपर उछाल सकते थे और मैं उनकी बाजूओं में कठपुतली की तरह वापस आ गिरता। मैंने अपनी योजना को अगले दिन तक के लिए स्थगित कर देना बेहतर समझा। मैंने कूपोले में जाकर भोजन किया। वहाँ मैंने 16 फ्रैंक और 80 सेंतीमे खर्च कर दिए। अब मेरे पास 70 सेंतीमे बचे थे और मैंने उनको गटर में फेंक दिया।

*** *** ***

मैं तीन दिनों तक अपने कमरे में बिना कुछ खाए, बिना सोए पड़ा रहा। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा था और मुझमें इतना साहस भी न था कि मैं खिड़की के पास चला जाऊँ या बत्ती जला लूँ। सोमवार को किसी ने दरवाजे पर घंटी बजाई। मैंने अपनी साँस रोक ली और प्रतीक्षा करने लगा। फिर मैं पंजों के बल चलकर गया और अपनी आँख चाबी के देद पर लगा दी। पर मैं केवल काले कपड़े का टुकड़ा और एक बटन देख सका। उस आदमी ने दोबारा घंटी बजाई। फिर वह चला गया। मुझे नहीं पता, वह कौन था। रात में मुझे तरोताजा करने वाली चीजें दिखाई दी—तालवृक्ष, बहता हुआ पानी और गुंबद

के ऊपर नीला, लोहित आकाश। मैं प्यासा नहीं था, क्योंकि मैं हर घंटे नल पर जाकर पानी पी लेता था। पर मैं भूखा था।

मुझे वह वेश्या फिर दिखाई दी। या वह मेरी कल्पना थी। यह सब एक किले में था जो शहर से 60 मील दूर कॉसेस नॉएरस में था। वह अकेली थी। मेरे साथ। रिवॉल्वर से डराते हुए मैंने उसे घुटने के बल झुकने और हाथ-पैरों पर दौड़ने के लिए विवश कर दिया। फिर मैंने उसे एक खंभे से बाँध दिया और उसे अच्छी तरह से यह समझाने के बाद कि मैं क्या करने वाला हूँ, मैंने उसे गोलियों से भून दिया। इन वेश्याओं ने मुझे इतना परेशान कर दिया था कि मुझे इसी से संतोष करना पड़ा। बाद में मैं अँधेरे में बिना हिले-डुले पड़ा रहा। मेरा सिर एकदम खाली था। पुराना पलंग चरमराने लगा। सुबह के पाँच बज रहे थे। मैं कमरे से बाहर निकलने के लिए कुछ भी दे सकता था, पर मुश्किल यह थी कि सड़क पर लोगों के होने की वजह से मैं नीचे नहीं जा सकता था।

फिर दिन निकल आया। अब मुझे भूख महसूस नहीं हो रही थी, लेकिन मुझे बेइंतहा पसीना आ रहा था। मेरी कमीज पूरी तरह भीग चुकी थी। बाहर धूप निकली हुई थी। तब मैंने सोचा-''वह बंद कमरे में अँधेरे से घिरा हुआ है। उसने तीन दिनों से न कुछ खाया है, न ही वह सोया है। उन्होंने घंटी बजाई और उसने दरवाजा नहीं खोला। जल्दी ही वह सड़क पर जाएगा और हत्याएँ करेगा।''

मैंने खुद को डराया। शाम को छह बजे मुझे फिर से भूख सताने लगी। मैं गुस्से से पागल था। मैंने मेज-कुर्सियों से ठोकर खाई। फिर मैंने कमरों, रसोई और शौचालय की बत्तियाँ जला दीं, और बेहद ऊँची आवाज में गाने लगा। इसके बाद मैंने अपने हाथ धोए और बाहर चला गया। सारी चिट्ठियों को डाक के बक्से में डालने में मुझे पूरे दो मिनट लग गए। मैंने उन्हें दस-दस करके भीतर धकेला। कुछ लिफाफे तो मैंने मोड़ भी दिए होंगे। फिर मैं बुलेवा द्यू मोंते पार्नास्से पर रूए ओडीसा तक बढ़ गया। मैं एक बिसाती की खिड़की के आगे रुका और जब मैंने अपना चेहरा देखा तो सोचा, ''आज रात!''

मैं रूए ओडीसा के सिरे पर रुक गया। सड़क का खंभा मुझ से ज्यादा दूर नहीं था। मैं इंतजार करने लगा। दो औरतें एक-दूसरे की बाँहों में बाँहें डाले गुजरीं।

मुझे ठंडा पसीना आ रहा था। कुछ देर बाद मैंने तीन आदमियों को आते हुए देखा। मैंने उन्हें जाने दिया। मुझे छह लोगों की जरूरत थी। बायीं ओर वाले आदमी ने मुझे देखा और जीभ से चटकारा। मैंने अपनी आँखें घुमा लीं।

सात बज कर पाँच मिनट पर एडगर-क्विनेट मुख्य मार्ग पर लोगों के दो झुंड आए। उनमें दो बच्चे, एक पुरुष और एक महिला थी। उनके पीछे तीन वृद्धाएँ थीं। मैं एक कदम आगे बढ़ा। महिला गुस्से में लग रही थी और छोटे लड़के की बाँह खींच रही थी। पुरुष धीरे से बोला, ''कितना कमीना है।''

मेरा दिल इतनी तेजी से धड़क रहा था कि मेरी बाँह पर चोट कर रहा था। मैं आगे बढ़ा और उनके सामने खड़ा हो गया। जेब में मेरी उँगलियाँ रिवॉल्वर के ट्रिगर को घेरे हुए थीं।

''माफ कीजिए।'' पुरुष मुझसे टकराते हुए बोला। उसी समय मुझे याद आया कि मैंने अपने मकान का दरवाजा बंद कर दिया था और इससे मुझे गुस्सा आ गया। मैं जान गया कि मुझे उसे खोलने में अपना कीमती समय नष्ट करना पड़ेगा। इस बीच वे लोग मुझसे और दूर होते जा रहे थे। मैं घूमा और यांत्रिक ढंग से उनके पीछे चलने लगा, पर अब मुझमें उन पर गोली चलाने की इच्छा नहीं बची थी।

वे मुख्य सड़क पर भीड़ में खो गए। मैं दीवार के सहारे खड़ा हो गया। मैंने आठ और नौ बजे के घंटे सुने। मैंने खुद से दोहराया, ''मैं इन लोगों को क्यों मारूँ जो पहले से ही मरे हुए हैं।'' और मैंने हँसना चाहा। एक कुत्ता आया और मेरा पैर सूँघने लगा।

जब वह लंबा-तगड़ा आदमी मेरे पास से गुजरा तो मैं उछल कर उसे पीछे हो लिया। मैं उसके डर्बी हैट और ओवरकोट के कॉलर के बीच उसकी लाल गर्दन की झुर्री देख सकता था। वह चलते हुए थोड़ा उचक रहा था और गहरी साँसें ले रहा था। वह भारी-भरकम दिखाई देता था। मैंने जेब से अपना रिवॉल्वर निकाला। वह ठंडा और चमकदार था। उसने मेरे भीतर नफरत पैदा कर दी। मैं यह अच्छी तरह याद नहीं कर पा रहा था कि आखिर मुझे उससे क्या काम लेना है। कभी मैं रिवॉल्वर को देखता, कभी उस आदमी की गर्दन को। मुझे लगा जैसे उसकी गर्दन की झुर्री मुझ पर कड़वी मुस्कान फेंक रही थी। मुझे हैरानी हुई कि कहीं मैं अपना रिवॉल्वर नाले में न डाल दूँ।

अचानक वह आदमी मुड़ा और मुझे घूरने लगा। वह चिढ़ा हुआ था। मैं पीछे हटा।

''मैं आपसे पूछना चाहता था।...''

लगता था जैसे वह सुन ही नहीं रहा था। वह केवल मेरे हाथों की ओर देख रहा था। मुझे बात आगे बढ़ाने में मुश्किल हुई, ''... कि रूए दे लागाइते को कौन-सा रास्ता जाता है?''

उसका चेहरा भारी था। उसके होठ काँप रहे थे। वह कुछ नहीं बोला। उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। मैं और पीछे हटा और बोला, ''मैं चाहता...''

तब मैं जानता था कि मैं चीखना शुरू कर दूँगा। मैं यह नहीं चाहता था। मैंने उसके पेट पर तीन गोली चलाई। वह बेवकूफाना भाव लिए घुटनों के बल गिरा और उसका हाथ बाएँ कंधे पर लुढ़क गया।

''हरामी कहीं का, ''मैंने कहा, ''सड़ा हुआ आदमी।''

फिर मैं भागा। मैंने उसे खाँसते हुए सुना। मैंने शोर की आवाज और अपने पीछे भागते हुए कदमों की चरमराहट भी सुनी। किसी ने पूछा, ''झगड़ा हुआ था क्या?'' उसके ठीक बाद कोई चिल्लाया, ''खून! खून!'' मैंने सोचा, इस शोर का मुझसे कोई लेना-देना नहीं है।

मैंने केवल एक बहुत बड़ी गलती कर दी थी—रूए ओडीसा पर एड्गर क्विनेट की ओर भागने के बजाए मैं बुलेवा द्यू मौंते पार्नास्से की ओर भाग रहा था। जब मुझे इसका अहसास हुआ तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मैं भीड़ से घिर चुका था। हैरानी से भरे हुए चेहरे मुझे घूर रहे थे, (मुझे एक महिला का भारी और खुरदरा चेहरा याद है जो पंखों के गुच्छे वाली एक टोपी लगाए थी) और मैंने अपने पीछे रूए ओडीसा से आने वाली चिल्लाहटें सुनीं—''खून, खून!''

एक हाथ ने मुझे कंधे से पकड़ लिया। मैं अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। मैं इस भीड़ के हाथों पिटकर मरना नहीं चाहता था। मैंने दो बार गोली चला दी। लोगों ने चीखना और इधर-उधर भागना शुरू कर दिया। मैं एक कैफे में घुस गया। मैं जब खाने-पीने वालों के बीच से होकर भागा तो वे सब चौंके, पर किसी ने मुझे रोकने की कोशिश नहीं की। मैंने कैफे के अंत में स्थित शौचालय में खुद को बंद कर लिया। अभी मेरे पास रिवॉल्वर में एक गोली बाकी थी।

कुछ पल बीत गए। मैं बुरी तरह हाँफ रहा था और मेरी साँसें फूल गई थीं। सब कुछ असामान्य रूप से मौन था, जैसे लोग जानबूझकर शांत हों।

मैंने रिवॉल्वर को अपनी आँखों के सामने किया और उसका छोटा-सा छेद देखा, गोल और काला—मैंने फर्श पर पैरों की आहट से अनुमान लगाया। वे कुछ फुसफुसाए और फिर शांत हो गए। मैं अभी जोर-जोर से साँस ले रहा था और सोच रहा था कि दरवाजे के दूसरी ओर वे मेरी साँसों की आवाज सुन रहे होंगे। उनमें से कोई आगे बढ़ा और उसने दरवाजे की कुंडी घुमाई। वह मेरी गोली से बचने के लिए जरूर दरवाजे से चिपका खड़ा होगा। मैं अभी गोली चलाना चाहता था, लेकिन अंतिम गोली मेरे लिए थी।

वे किसलिए प्रतीक्षा कर रहे हैं? मुझे आश्चर्य हुआ। अगर उन्होंने अचानक झटके से दरवाजा तोड़ दिया तो मेरे पास इतना भी समय नहीं होगा कि मैं खुद को गोली मार सकूँ और वे मुझे जिंदा पकड़ लेंगे। पर उन्हें कोई जल्दी नहीं थी। वे मुझे मरने के लिए बहुत समय दे रहे थे। हरामजादे, सब-के-सब डरे हुए थे।

कुछ देर बाद एक आवाज ने कहा, ''ऐ... दरवाजा खोल दे। हम तुझे मारेंगे नहीं।'' फिर खामोशी छा गई और उसी आवाज ने दोबारा कहा, ''तू बचकर नहीं निकल सकता।''

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। मैं अभी भी हाँफ रहा था। गोली चलाने लायक हिम्मत जुटाने के लिए मैंने खुद से कहा, ''अगर उन्होंने मुझे पकड़ लिया तो वे मुझे पीटेंगे, मेरे दाँत तोड़ देंगे। हो सकता है, मेरी आँख ही निकाल लें।''

क्या वह विशालकाय आदमी मर गया था? या मैंने उसे सिर्फ घायल किया था? शायद दूसरी दोनों गोलियाँ भी किसी को न लगी हों...। वे लोग कुछ तैयारी कर रहे थे। वे फर्श पर कोई भारी चीज घसीट रहे थे। मैंने तेजी से रिवॉल्वर की नली अपने मुँह से लगाई। पर मैं गोली नहीं चला पाया, यहाँ तक कि मैं अपनी उँगली भी ट्रिगर पर नहीं रख पाया। चारों ओर गहरा सन्नाटा था।

मैंने रिवॉल्वर फेंककर दरवाजा खोल दिया। ❍❍❍

चेरापूँजी

मूल: संयुक्ता महान्ति
भाषांतर: सुरभि बेहेरा

"तुम्हारी उम्र से तो मैं परिचित हूँ। तुम अठाईस साल की हो पर, तुम देखने में कैसी हो? तुमको देखने की इच्छा है, तुम्हारे साथ बहुत सारी बातें करनी है। तुम मुझसे मिलने कहीं आ सकती हो? वैसे यह शहर तो बहुत छोटा है, तुम्हारे घर से नदी का तट भी दूर ही होगा। तुम्हीं सोचकर बताओ कि कहाँ पर मिलना ठीक होगा। मैं ठीक चार बजे तुम्हें फोन करूँगा, तुम हमारे मिलन का समय और स्थान फोन पर ही बता देना।"

यहाँ पहुँचकर समय का अनुमान लगा पाना बहुत ही मुश्किल हो गया था। यहाँ रात के साढ़े तीन बजे ही सुबह हो जाती। प्राय: हर वक्त पूरा शहर काले बादल और मूसलाधार बारिश से अंधकार में डूबा रहता। इतनी बारिश कि घरों की खिड़कियाँ भी कई दिनों तक खोली नहीं जाती। कभी-कभी जब इंद्रदेव की कृपा होती तो कुछ देर के लिए बारिश थम जाती। शिलोंग की राजधानी मेघालय को मेघ का आलय भी कहा जाता है। यहाँ बादल को घुमड़-घुमड़ कर आने से मना नहीं किया सकता। फिर जून महीने की पहली तारीख को तो मौसम यहाँ खुद-ब-खुद झूमते हुए उल्लसित रूप में आ जाता है। ऐसा लगता मानो पहाड़ी राजा खुशी से झूम रहे हो।

''जल्दी उठिए। सुबह के आठ बजे गए हैं।''

उनके बोलने के अंदाज से स्पष्ट हो रहा था कि उनके पति सुरंजन जी को बाहर निकलते वक्त कितनी हड़बड़ी रहती है। ऐसे में उसके बहुमूल्य समय की परवाह किसे है? कौन-सा समय निकालकर वह अपने काम में ध्यान लगा पायेगी। उसके लिए तो उसका समय स्थिर और अचंचल है। अनुराधा इतनी ठंड में दो-तीन कंबल ओढ़कर तथा इस बंद कमरे में बैठकर भी पृथ्वी के निरंतर घूमने की प्रक्रिया को महसूस नहीं कर पाती। यहाँ आने के दूसरे दिन से ही उसकी इच्छाएँ ठंडी पड़ गयी हैं। वह थोड़ी उष्णता पाने के लिए इंतजार कर रही है। लेकिन मौसम की पहली बारिश ने जैसे उसके अंतर्मन को छिन्न-भिन्न कर दिया हो और यह सुंदर शहर मानो उसका उपहास कर रहा हो। ऐसा लग रहा है जैसे इस मौसमी प्रवाह में भी वह एक शुष्क कठोर पहाड़ बन गयी है।

''उठो! बाहर घूमने नहीं जाओगी। ठीक दस बजे ट्यूरिज़्मि की गाड़ी सभी को लेकर चली जाएगी। हमें छोड़कर चली गयी तो टिकट हाथ में लेकर बैठी रहना।''

अनुराधा समझ नहीं पाती कि सुरंजन इस तरह के हिसाबी मंतव्य क्यों देते है। बाहर घूमने नहीं जाने पर टिकट बर्बाद होने की चिंता उन्हें बहुत खलती है। इंसान के मन की भावना, उसकी खुशी, आनंद, उल्लास उनके लिए कोई मायने नहीं रखती। वे किसी नयी जगह आकर उस जगह के प्रति भाव-विभोर

सम्पर्क: 'स्वरांजलि', गड़ासाही, पोस्ट-जाँला, खोरधा (ओड़िशा), पिन-725054, मो. 9438621510

नहीं होते, न ही उसकी नवीनता का अनुभव ही कर पाते। यह शहर तो हमेशा से स्वर्ग के समान है। चंद्रहीन मेघों की माला, बड़े-बड़े पहाड़, अनवरत वर्षा, पूरे शहर में घास से बिछी हुई कालीन, छोटे छोटे डलिया जैसे फूल। ओफ! इस अद्‌भुत छटा को देखकर ही मन मुग्ध हो जाता है। पूरा भारतवर्ष घूमने के बाद भी ऐसा प्रतीत होता है मानो यह शहर ही सबसे ज्यादा सुंदर है। लेकिन सुरंजन यहाँ के जीवन प्रवाह तथा उसके स्पंदन को समझने की कोशिश ही नहीं करते हैं।

यहाँ आये हुए उसे दो दिन हो गये, फिर भी अब तक वह सिर्फ होटल के बंद कमरे में ही कैद है। कभी-कभी बॉलकनी में खड़ी होकर इस छोटे से हिल स्टेशन वाले शहर की अनुपम सुंदरता को वह अपनी आँखों में कैद करने की कोशिश करती है। सुरंजन सुबह नौ बजे से ऑफिस के लिए निकल पड़ते है। वे चार दिन के लिए इंटरनल ऑडिटर बैंक से मिडियम ब्रांच में ऑडिट के लिए आए हैं इसलिए उन्हें सुबह से शाम तक फुरसत ही नहीं है। आँख खुलते ही बैंक के काम को लेकर वे चिंतित हो जाते हैं। ऐसा लगता है मानो उनके सिर के ऊपर हिमालय का भार लदा हुआ हो। उनके पास खुलकर हँसने-बोलने की भी आजादी नहीं है। वह समझ नहीं पाती कि उनके स्टॉफ में सुरंजन की तरह तो कई लोग हैं। क्या वे सभी मिलकर इस बोझ को नहीं सँभाल लेंगे? वे कभी भी किसी एक जगह बेझिझक शांतिपूर्वक खड़े भी नहीं हो पाते। हमेशा काम के बोझ तले दबे होने के कारण उनका चेहरा मुर्झाया हुआ तथा अन्यमनस्क कैदी की तरह दिखाई देता। अनुराधा की ओर देखकर सिर्फ मंद-मंद मुस्करा देता। इसी चिंता के कारण वे ज्यादातर रात को ठीक तरह से सो भी नहीं पाते।

''इतनी आलसी क्यों बन रही हो? ठंड अधिक होने की वजह से क्या सुबह के आठ बजे तक सोती रहोगी? तुम्हें बस में बिठा देने के बाद मेरा दायित्व खत्म हो जाएगा। उसके बाद मैं आजाद हो जाऊँगा। उसके बाद मेरे ऑफिस जाने का समय भी हो जाएगा।'' सुरंजन अपने-आप बड़बड़ाते जा रहे थे।

दरवाजे के बाहर से कॉलिंग बेल बजने की आवाज सुनकर सुरंजन ने दरवाजा खोला।

होटल बॉय दो कप चाय रखकर वापस चला गया।

अनुराधा ने बिस्तर से उठते हुए दोनों कंबलों को निकाला और शॉल ओढ़कर चाय की चुस्कियाँ लेने लगी। कुछ सेकेंड बाद बाथरूम जाकर उसने जल्दी से अपना काम निपटाना चाहा। गरम पानी से नहाकर बाहर जाने के लिए तैयार भी हो गयी। उसे साढ़े नौ बजे तक ट्यूरिज़्मि ऑफिस पहुँच जाना था। वहीं से बस में बैठकर वे चेरापूँजी घूमने के लिए निकल जाएगी।

सुरंजन भी ऑफिस के सारे फाइल पकड़कर काम में जाने के लिए उतावले हुए जा रहे थे। उनकी आँखों की पुतलियों को देखकर पहचाना जा सकता है कि उनका ध्यान ऑफिस के फाइल के अलावा और कहीं नहीं है। उनके लिए यह पहाड़, झरना, बादल तथा पाइन वन की खुबसूरत छटा सब कुछ बेकार हैं। ऑफिस के काम की चिंता के कारण यहाँ की सुंदर मनोरम छटा उन्हें नजर ही नहीं आती।

सुरंजन ऑफिस जाने के लिए जल्दबाजी कर रहे थे तथा अनुराधा जी अपने दैनिक काम से निपटकर बाहर निकलते हुए थके स्वर में कहने लगी, ''चलो! अब और देरी क्यों? मुझे किसी तरह चौक तक छोड़कर आप तो ऑफिस के फाइल में रम ही जाएँगे न।'' उसने व्यंग्यबाण छोड़ते हुए कहा।

अनुराधा की कड़वी बातें सुरंजन को अंदर तक भेद गयी। जो रोटी कपड़े देती है उसका काम तो पहले देखना होगा। अपने कर्तव्य से पीछा छुड़ाया भी तो नहीं जा सकता। वर्ना बापूना और लीना के भविष्य को कैसे सँवार पाऊँगा।

अनुराधा बेकार की बहस में पड़ना नहीं चाहती थी इसलिए उसने बात आगे बढ़ने ही नहीं दिया। कुछ देर तक पैदल चल-चलकर वे लोग ट्यूरिजिम ऑफिस तक पहुँच गये। यहाँ चलने का मतलब या तो पहाड़ पर चढ़ना या फिर नीचे ढलान में नीचे उतरते जाना। अनुराधा को पैदल चलने की आदत नहीं थी इसलिए उसके घुटने में दर्द होने शुरू हो गये थे। वैसे तैंतालिस की उम्र में पहाड़ चढ़ना और उतरना कोई बड़ी बात नहीं है।

ट्यूरिजिम ऑफिस के नजदीक बस खड़ी थी। अन्य यात्री भी बस में चढ़ने के लिए आ गये थे। काउंटर पर बैठा हुआ लड़का टिकट देखकर लोगों को बस में बैठने दे रहा था। सिर पर टोपी, फूल पैंट-शर्ट पहना हुआ वह लड़का बड़ा ही सरल स्वभाव का था। मुझे देखते ही पूछने लगा, 'बाबूजी, आप नहीं जाएँगे क्या?'

'नहीं', मैंने हँसते हुए कहा, 'मैं ऑफिस जाऊँगा।'

'ठीक है मैडम, आप चलिए। देखिएगा हमारे इस बादल मिश्रित राज्य को।' उस लड़के के सहज सरल आत्मीय शब्दों ने अनुराधा के अंतर्मन को भिगो दिया था।

अपना सीट नंबर देखकर दाहिनी तरफ वाले किनारे में वह बैठ गयी। सीट पर बैठते ही उसे लीना बापूना की याद आने लगी।

इस गर्मी छुट्टी में वे दोनों नानी के घर जाएँगे। बापूना नौंवी क्लास में और लीना सातवीं क्लास में पढ़ रही है। अनुराधा को अचानक कलकत्ता आना पड़ा इसलिए वे लोग साथ नहीं आ पाये। पूरे साल ऑडिट के कारण बाहर घूम-घूमकर तथा बाहर का खाना खाकर सुरंजन की तबीयत खराब हो गयी थी। इसलिए कलकत्ता हेड ऑफिस का काम खत्म कर उसे सुरंजन के पास ही जाना पड़ा। उनके स्वस्थ होने के बाद ही वे लोग शिलोंग ब्रांच ऑडिट के लिए आ गये। सुरंजन के मना करने पर भी वह जिद कर यहाँ आ गयी थी। उन्होंने कहा भी था कि ऑफिस के काम में उलझकर वे उसे बिल्कुल भी समय नहीं दे पायेंगे। उनके मना करने के बावजूद इस नयी जगह को देखने के लिए वह उनके साथ यहाँ पहुँच ही गयी थी। वापस घर चले जाने पर यह सुनहरा मौका फिर कभी मिल भी पायेगा या नहीं?

सभी यात्री बस पर बैठ गये थे। उसके पीछे वाली सीट के बायीं ओर एक सरल स्वभाव के व्यक्ति बैठे हुए थे लेकिन अनुराधा की नजर पड़ते ही वे थोड़े सकुचा से गये। इस उम्र में भी ऐसी सोच। अनुराधा ने कुछ सोचकर अपनी नजर फेर ली। ड्राइवर सही समय पर आकर गाड़ी स्टार्ट कर चुका था। सभी यात्री अपने-अपने परिवार के साथ मौसम का स्वागत करने के लिए तैयार हो गये थे।

गाइड ने हम सभी को अभिनंदन जताया और सरल अंग्रेजी भाषा में समझाया। गाड़ी धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़ती चली गयी। गाड़ी पहाड़ पर चढ़ती जा रही थी और पाइन वन हाथों के इशारों से हमें अपने पास बुलाते जा रहे थे। यहाँ की प्रकृति इतनी मनमोहक लग रही थी मानो स्वर्ग स्वयं उठकर धरती पर आ गया हो। स्मृति पटल में अतीत की पुरानी यादें पंख फैलाकर हिचकोले खाने लगी थी। वह पंद्रह वर्ष पहले अनुराधा के साथ बीते हुए पलों को याद करने लगा। इसी पाइन वन में किसी ने उसके अंतर्मन में स्वप्न संजो दिया था। आखिर वह कौन था? एक अनजान, अदृष्ट आततायी, प्रेमी या फिर कोई कापुरुष। कौन था वह? क्यों आज रह-रहकर उस अदृष्ट बात की याद सता रही है।

जिस दिन पहली बार उसकी नौकरी बैंक में हुई थी। उस दिन उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वह बिल्कुल नीरव, शांत और किसी से भी बात नहीं करता था। ऑफिस में किसी के साथ खुलकर मिल भी नहीं पाता। उसकी जिंदगी उदासीन हो गयी थी। ऐसा लगता मानो किसी अनजान वीरान द्वीप में वह बंदी बनकर रह रहा हो। उसका व्याकुल मन वहाँ से निकलने के लिए छटपटाने लगा था। अपने सपनों को साकार करने के लिए अंजुलियों को जोड़कर ईश्वर से विनती करता। हे ईश्वर, मेरे जीवन को उल्लसित करो, मुझे शुष्क मरूभूमि नहीं, खजूर पेड़ की छाँव नहीं, अनिश्चित अनवरत पहाड़ की तरह नहीं। बल्कि, मुझे विकसित करो, पुष्पित करो। किसी की अंजुलि का फूल बनकर मैं चारों ओर बिछ जाना चाहता हूँ। लेकिन, तुम इतने निर्दयी, इतने निष्ठुर कैसे बन गये हो? क्या तुम मेरी अंर्तात्मा की बातें समझ नहीं पा रहे हो।

इन्हीं सब विचारों के कारण मेरा मन बड़ा बेचैन रहने लगा था। ऑफिस के किसी भी काम में मन नहीं लग रहा था। मन इतना अशांत हो गया था कि कहीं भी स्थिर होकर टिक पाना मुश्किल लग रहा था। अचानक एक दिन उसके पास एक चिट्ठी आई। प्रत्येक शब्द मोतियों की लड़ी की तरह सुंदर अक्षर में सजा हुआ था।

''उस दिन जब मैं तुम्हारे ऑफिस गई, तुम किसी सुनहरे सपनों की गहराई में खोये हुए थे। ऐसा लग रहा था मानो तुम्हारी आँखों अनंत शून्यता में किसी खास को ढूँढ रही हो। उस वक्त किसी बहानेवश मैं सौ रुपये के नोट को भुनाने के लिए तुम्हारे ऑफिस तक पहुँच गयी थी। तुमने भी सारे ग्राहक को एटेंड करने के बाद मुझे सौ रुपये का छुट्टा थमा दिया था।'' उस दिन हम दोनों के बीच केवल इतनी ही बातचीत हो पायी थी।

उस चिट्ठी में ऐसी कौन-सी बात थी? उसमें ऐसी कौन-सी भावना छिपी हुई थी कि चिट्ठी को पढ़ते ही वह भाव-विभोर हो गया था। उस उम्र में प्रेम की ऐसी कौन-सी बीज प्रस्फुटित हो जाती है कि इंसान एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होने लगता है। यही सोचकर अनुराधा मन ही मन मुस्कुराने लगी। वैसे आकर्षित होने के लिए उसे कोई सीमित आयु तो नहीं बनाई गयी है। क्या बढ़ती उम्र के साथ इंसान की सोच में कोई परिवर्तन होते हैं? क्या मन की इच्छा, कामना, वासना धूमिल हो जाती है? आज उस व्यक्ति ने क्यों उसकी ओर देख-देखकर वशीभूत कर दिया है। उसके सरल, निश्छल झलक में क्यों इतना सम्मोहन है। उसके हृदय का स्पंदन क्या इतना कमजोर है जो हमेशा शुष्क मरूभूमि की तरह एक बूँद पानी के लिए तरसती रहती है? लेकिन इस शुष्क मरूभूमि में कभी भी प्रेम रूपी बारिश का आगमन नहीं हो पाया। वर्ना इस उम्र में किसी के प्रति आकर्षित होना क्या लाजमी है? आज ऐसी परिस्थिति में वह इस सच्चाई को कैसे अस्वीकार कर सकती है?

उस व्यक्ति ने चिट्ठी में किसी के नाम को संबोधित नहीं किया था।

तुम्हारी उम्र से तो मैं परिचित हूँ। तुम अठाईस साल की हो पर, तुम देखने में कैसी हो? तुमको देखने की इच्छा है, तुम्हारे साथ बहुत सारी बातें करनी है। तुम मुझसे मिलने कहीं आ सकती हो? वैसे यह शहर तो बहुत छोटा है, तुम्हारे घर से नदी का तट भी दूर ही होगा। तुम्हीं सोचकर बताओ कि कहाँ पर मिलना ठीक होगा। मैं ठीक चार बजे तुम्हें फोन करूँगा, तुम हमारे मिलन का समय और स्थान फोन पर ही बता देना।

उस दिन उसका फोन नहीं आया। लेकिन उसका मन टूटे हुए बाँध के नदी की तरह उसके सम्मोहन में चंचल हुए जा रहा था। उसके अट्ठाईस साल का यौवन सभी के जीवन में एक बोझ बनकर रह गया था। लगभग चार साल पहले से ऑफिस से घर तक, रिश्तेदारों से सहेलियों तक सभी की शादी हो गयी थी। अब तो सभी बाल-बच्चे वाली भी कहलाने लगी थी। लेकिन यह सुबह दस बजे से पाँच बजे तक ऑफिस में बैठकर सिर्फ पैसे ही गिने जा रही है। वैनिटी बैग कंधे में पकड़कर किसी पुराने ऐतिहासिक शहर की तरह समय पर पहुँच जाती है और समय पर चली जाती है। ऐसा लगता है मानो किसी ने उसके अंतर से हँसी-खुशी, आनंद-उल्लास सभी को निचोड़ लिया हो। जैसे जीवन के इस उबड़-खाबड़ रास्ते में अनिश्चितकाल तक चलते रहना ही उसकी नियति बन गई हो।

उसकी आत्मा उससे प्रश्न करने लगी थी - क्यों? आखिर क्यों वह इस अजीबोगरीब रास्ते में बेवजह आगे बढ़ते रहेगी? क्या उसे अधिकार नहीं है कि खुशबुओं से महकते हुए उपवन में उसका संसार भी विकसित हो? क्यों उसके साथ ही ऐसा क्यों होता है?

उसे इसका जवाब नहीं मिलता, बल्कि ईश्वर का खेल मानकर ही आगे बढ़ते जाना है। ऐसे में इस लिफाफे ने उसकी बढ़ती उम्र की रेखा पार करने से पहले आशा और आश्वासन दिखाते हुए उसे कुछ दिनों के लिए धैर्य रखने की चेतावनी देती है। अब उस चिट्ठी की भाषा, घनिष्टता के रंग किसी अनजान शिल्पी की तूलिका की तरह दिन-ब-दिन बदलने लगे हैं। अब उसका अंतर्मन किसी करीबी के दर्शन, किसी के निकटता के सान्निध्य के लिए तरसने लगा है। कौन है? उसका स्वप्न पुरुष।

लेकिन उसके सपनों का पुरुष उसके नजदीक नहीं आता। बल्कि उसकी जगह डाक द्वारा उसकी चिट्ठी आ जाती है, उसके फोन आ जाते हैं।

वह राम मंदिर या फिर रानीहाट में शाम के पाँच बजे उससे मिलने आएगा। जहाँ सभी का आना-जाना होता हो, भीड़-भाड़ हो। ऐसी जगह किसी को संदेह भी नहीं होता।

ठीक पाँच बजे हड़बड़ाते हुए उसने सीट छोड़ा। अपने स्वप्न पुरुष से मिलने के लिए उसका मन स्वप्नलोक में उड़ने लगा। इतने लंबी इंतजारी के बाद उसका स्वप्न पुरुष किस मौसमी पंख में बैठकर आ रहा है?

मंदिर पहुँचकर उसने चारों ओर देखा। कहीं कोई तो नहीं दिख रहा था? उदास और दुखी मन से थक-थककर वह रिक्शा पर बैठ गयी। सबकी नजरों से खुद को छुपाते हुए दुखी मन से घर पहुँच गयी। केवल माँ ही उसके अंतर्मन की पीड़ा को समझ पाती थी। वह अवाक् होकर माँ की ओर ताकती रहती। न जाने उनके स्वर में कहाँ से इतना दर्द भरा होता। समय के साथ-साथ एक दिन और बढ़ गया। कल का सूर्योदय भी क्या इसी तरह हताशा एवं व्यर्थता बोध के साथ उदय होगा।

लगातार कुछ दिन तक फोन और चिट्ठी नहीं आने पर वह बिल्कुल चुपचाप रहने लगी थी। फोन की ट्रिंक-ट्रिक ध्वनि से छाती धड़धड़ाने लगती। आखिर किसके इंतजार में वह इतनी व्यग्र हो उठती?

कुछ दिनों बाद दोबारा चिट्ठी आई। इस बार एक छोटे से संबोधन के साथ।

''राधा! इस बीच अचानक मुझे कोरापुट आना पड़ा। मैं यहाँ के हॉस्पिटल में पेडियाट्रिशियन हूँ। कुछ दिनों की छुट्टी लेकर गाँव गया था। जरूरी काम होने की वजह से अचानक वापस आना पड़ा।

तुम्हारे गाँव के डॉ. बराक बाबू से मेरी अच्छी जान-पहचान है। उनसे ही तुम्हारे बारे में जानकारी मिली। मुझे यह जानकर बहुत बुरा लगा कि तुम्हें उस दिन पाँच बजे शाम में मंदिर आकर वापस लौटना पड़ा। क्या करूँ। बहुत जरूरी काम था इसलिए तुमसे मिले बिना लौटना पड़ा। पत्र के नीचे नाम और पता भी लिखा हुआ था।''

पत्र पढ़कर उसके हृदय की धड़कन तेज हो गयी थी। शायद, अब पहली बार वह पत्र के माध्यम से अपनी दिल की बातें उस तक पहुँचा सकती थी। उस दिन बदलते मौसम की तरह उसका मन भी हिचकौले खाने लगा था। घर के बाहर गुलमोहर का पेड़ भी उसके सपने की तरह ही रंगीन पंखुड़ियों से भर गया था। हवा के हल्के झोकों से उसके कोमल पत्ते डोलने लगे थे।

एक मुग्ध स्वप्नमय शहर एवं पाइन वन चारों ओर से बादल से ढका हुआ था। आज उसकी स्मृति में यह धूमिल हो गया था कि उस चिट्ठी का उसने क्या जवाब दिया था। शायद, अट्ठाईस वर्ष के मौन वसंत की यातनाओं के विषय में लिखा था।

लेकिन ठीक पंद्रह दिनों बाद वह चिट्ठी वापस उसके पास लौट आयी थी। शायद उस पते पर कोई रहता ही नहीं था। भाग्यवश चिट्ठी वापस उसके पास ही पहुँच गयी थी। लेकिन, फिर भी उसके मन में एक भरोसा और उम्मीद थी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि चिट्ठी सही पते तक कैसे नहीं पहुँच पायी।

घने काले बादलों के कारण बस का कोई अस्तित्व ही नहीं दिखाई दे रहा था। बस की हल्की रोशनी से ड्राइवर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था। वाइपर द्वारा बार-बार काँच पोछते हुए इतनी ऊँचाई से बस चलाकर लक्ष्य तक पहुँचना ही उसके लिए दृढ़ संकल्प बन गया था।

''राधा! आज मैंने तुम्हें दूर से देखा। पर, न जाने क्यों नजदीक जाकर तुम्हारे साथ बात ही नहीं कर पाया। भुवनेश्वर में अपना नया मकान बनवा रहा हूँ इसलिए मुझे बिल्कुल समय नहीं मिल पा रहा है। तुम्हारे साथ फिर कभी फुरसत में बात करूँगा।'' चिट्ठी के नीचे घर का पता स्पष्ट रूप से लिखा हुआ था। उसने एक कागज में पता लिखकर पिऊन के हाथ में थमाते हुए कहा, ''तुम रविवार के दिन तो भुवनेश्वर जाओगे ही। वहाँ जाकर इस पते पर भी चले जाना है।''

पिऊन ने लौटकर बताया कि इस नाम की कोई जगह ही नहीं है। इतना सुनते ही उसके स्वप्न रूपी उपवन प्रताड़ना के तीखे बाण से मुर्झाने लगे थे। लेकिन दोबारा उसकी चिट्ठी पढ़कर आशा और आकांक्षा की मिट्टी फिर से पल्लवित होने लगी थी।

इस बीच मेरा तबादला केंद्रापड़ा के अस्पताल में हो गया। इतना नजदीक कि अब कभी भी एक-दूसरे से दूर होने का प्रश्न ही नहीं उठा। अतीत के रंगीन सपनों में उसे सुरंजन की याद सताने लगी। अत्यंत सज्जन एवं दायित्ववान व्यक्ति। तबादले की वजह से अनुराधा और उन्हें हमेशा अलग-अलग ही रहना होता। दोनों बच्चों की पढ़ाई में कोई बाधा न आने पाए यही सोचकर वह बच्चों के साथ भुवनेश्वर में रहने लगी थी। सुबह से शाम तक उसे अकेले ही सब कुछ सँभालना होता। बाजार जाना, इलेक्ट्रिक बिल देना, फोन बिल पेमेंट करना, बच्चों को स्कूल बस में बिठाना, घर भाड़ा लेने जाना, गाड़ी खराब होने पर गैरेज ले जाना सारा कुछ उसे अकेले ही देखना पड़ता। नौकरानी सुबह एक बार काम करके चली जाती है। कुछ अच्छा काम तो करती नहीं पर हमेशा काम छोड़ देने की धमकी देती रहती है। सुरंजन को भी कलकत्ता में रहते हुए बारह वर्ष बीत गये, अब तक उसके तबादले की कोई खबर भी नहीं आई है। उन्हें घर लौटने में न जाने और कितने दिन लगेंगे? महीने में दो दिन के लिए घर आकर वे उसकी परेशानियों को कैसे समझ पायेंगे? सुरंजन के साथ के लिए उसने जितने भी सपने बुने थे वे सारे स्वप्न मरीचिका की तरह धूमिल होने लगे थे। केवल सुरंजन की सहधर्मिणी होने के अलावे उसका अस्तित्व ही क्या था? गृहस्थ जीवन के अट्ठाईस वर्ष पूरे होने के बाद भी उसके जीवन में खुशी निमित्त मात्र ही थी। कभी-कभी उसका मन जिद पकड़ लेता कि इस बार प्रमोशन की खबर मिलते ही सुरंजन को मना कर देना ही उचित होगा। कम से कम इसी बहाने वे भुवनेश्वर वापस तो आ जाते। भले ही उसके सपने पूरे नहीं होते लेकिन काम का बोझ तो कुछ कम हो गया होगा। इसके विपरीत सुरंजन को उन्नति के शिखर पर आगे बढ़ते रहने का नशा सवार हो गया था। हर रोज सुबह आँख खुलते ही ऑफिस के फाइलों में ही अपना सिर खपाते रहते। दिन-रात गधे की तरह काम कर-करके रात के नौ बजे घर वापस आते। चाल-ढाल से वे हमेशा थके हुए दिखाई देते।

सुरंजन जब भी घर आते, सिर नीचे कर एक ही बात कहते-और क्या होगा, इस बार भी ट्रांसफर होना संभव नहीं है। यूनियन वालों के पास दौड़-दौड़कर मेरे चप्पल घिस गये, लेकिन मेरे जैसे ही कई लोगों के साथ यही परेशानी है। शायद इस बार मुझे अहमदाबाद जाना पड़ सकता है। हमेशा आगे बढ़ने की इसी नशा में वे भारत के चारों दिशाओं की सैर करते रहते हैं। आज भी अतीत की घटनाओं को याद कर उसका मन प्रसन्न हो उठता।

अचानक गाइड की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी, शिलिंग पिक आ गया है जाकर जल्दी देख आईये। पाईन वन के इस मनमोहक दृश्य को अकेले-अकेले देखने की इच्छा कदापि नहीं थी। उनके हम साथी भी साथ होते तो वह आज इतना असहाय महसूस नहीं करती। अचानक उस चिट्ठी की एक पंक्ति याद आ गयी।

'राधा! यदि तुम एक मनमोहक स्वप्न जगत की वास्तविकता को पाना चाहती हो तो मैंने हनीमून मनाने के लिए शिलोंग जाने का तय किया है। सचमुच यहाँ आकर तुम पाइन वन में गुम हो जाओगी। चेरापूँजी के घने बादल के साथ तुम और मैं यहाँ के होटल में एक साथ समय बितायेंगे।'

कुछ ही देर में बस चेरापूँजी के घने बादल के साथ दौड़ने लगी। नजरें नीचे करने पर गहरी खाई में बादल गोल-गोल रूप धारण कर विलीन होते जा रहे थे। जिस तरह भूगोल के पृष्ठों में चेरापूँजी के विषय में बताया गया है उसी तरह मशीनराम गाँव भी बादलों से भरा हुआ था, यहाँ हमेशा ही बारिश होती है। शिलांग के इस एकांत होटल में वर्षा के साथ-साथ पाइन वन की हवा भी अनवरत बहती रहती है। झरना भी छंद के साथ बहता रहता है। कल रात भी सब कुछ वैसा ही हुआ। एक तरह से देखा जाए तो वे उसके जीवन के ऑफिसियल पुरुष के समान थे। कल रात दस बजे भी अत्यंत क्लांत और थके हुए घर लौटे। बाजार में भी उनसे मुलाकात हुई थी। उन्हें कोई ऑडिट रिपोर्ट प्रस्तुत करना था, समय के अनुसार उसे हेड ऑफिस में दाखिल करना था। लॉन सेंकशन होने में परेशानी हो रही है इसलिए मैनेजर को चार्जसिट देना पड़ रहा था। इन्हीं सभी कारणों से वे बहुत परेशान लग रहे थे। इसी वजह से कलकुलेटर में हिसाब-किताब कर रहे थे। अभी भी उनकी बचत करने की आदत नहीं गयी है। सुरंजन के पास पैसे की तो कोई कमी नहीं है फिर भी न जाने क्यों इतना हिसाब करते है। प्रमोशन न होकर भी वे सीनियर हैं। मासिक वेतन भी दोनों का एक समान ही है। उनके घर के रहन-सहन को देखकर उनके प्रति लोगों की इज्जत, मान-मर्यादा बढ़ जाती है।

इस एक सपने के लिए सुरंजन ने कितनी रातें तथा अपनी नीदें खोई थीं। आज से पंद्रह वर्ष पहले शिलोंग शहर की तस्वीर उसके जीवन रूपी कैनवास में स्पष्ट झलकने लगी थी। कुछ ही देर में गाईड ने बस रोकते हुए कहा, चेरापूँजी आ गया। यहाँ से बंगलादेश दिखाई देता है। पद्मा नदी की धारा बहती हुई दिखाई दे रही थी। दूर पहाड़ से झरने की पतली धारा गिर रही थी। तो क्या यही उसके सपने का चेरापूँजी था? बारिश का मौसम बीत जाने के बाद भी यहाँ की बारिश कभी थमने का नाम नहीं लेती। फिर भी चेरापूँजी भ्रमण करने के लिए देश-विदेश से लोग आते रहते हैं। गाइड ने बताया, यहाँ से कुछ ही दूर में एक बड़ी-सी गुफा है लेकिन, वहाँ तक पहुँचने के लिए रास्ता बहुत कठिन है।

गुफा देखने की इच्छा सभी को होने लगी। लेकिन इतने संकीर्ण, अंधकार और प्रवेश के लिए एक ही रास्ता होने के कारण सभी भीतर जाने से हिचकिचाने लगे। लेकिन सबसे पहले उसी सभ्य व्यक्ति ने अकेले ही भीतर जाने को सोचा। उसे किसी बात की भी परवाह नहीं थी। वह भी उस रहस्य को जानने के उत्साह में उसके पीछे-पीछे आगे बढ़ने लगी। उस सभ्य व्यक्ति के हाथ में टार्च भी था। उसी टार्च की मद्धिम रोशनी में वे आगे बढ़ने लगे। रास्ता एक और घुप्प अंधकार। गुफा के अंदर आड़ा-तिरछा पत्थर होने के कारण सिर सीधा रख पाना भी मुश्किल हो रहा था। बारिश का पानी कहीं-कहीं से गुफा के अंदर भी झड़ते जा रहे थे। अपने-आप को फिसलन से बचाने के लिए उसने उस सभ्य व्यक्ति के बेल्ट को कसकर पकड़ लिया। गुफा के अंदर बहुत ठंडा और अँधेरा फैला हुआ था। फिर भी उस अनजान व्यक्ति के साथ बहुत रोमांचकारी लग रहा था। उस वक्त घने अंधकार वाली गुफा में समझदारी के साथ रास्ते को अतिक्रम करना ही हमारा मुख्य ध्येय बन गया था।

अचानक एक पत्थर से माथा टकराया। आह! शब्द के साथ पुनः नीरवता छा गयी।

'क्या हुआ!' अपरिचित ने विचलित होकर प्रश्न किया।

'नहीं-नहीं कुछ नहीं। आप आगे बढ़ते रहिए।'

सभ्य व्यक्ति ने अंग्रेजी में कहा, ''मेम! थोड़ा सँभलकर चलिए। आपको कोई परेशानी तो नहीं हो रही?''

मैं मन ही मन मुस्कुराने लगी। शायद उस अपरिचित को याद ही नहीं कि यह रास्ता कितना अंधकारमय और कठिन है। यहाँ देखकर कैसे चला जा सकता है? चेरापूँजी में तो दिन-रात अनवरत वर्षा होती ही रहती है। उस पर चेरापूँजी की यह स्वतंत्र गुफा जहाँ अँधकार और नीरवता ने अपना बसेरा ही बना लिया हो।

''नहीं, नहीं... दरअसल मेरे सिर पर पत्थर से चोट लग गयी।''

''क्या जोर से चोट लग गयी?'' सभ्य व्यक्ति ने टार्च की रोशनी से मेरी ओर देखा।

''इस्स! आपका माथा तो बिल्कुल फूल गया है।'' इतना कहते हुए उन्होंने मेरे माथे को फूँकते हुए बड़ी ही आत्मीयता के साथ मेरे सिर को सहलाया। मैंने महसूस किया कि उनका स्पर्श कितना मोह, ममता और शीतलता से भरा हुआ था। उसे घने अंधकार वाली गुफा में अतीत की कुछ यादें ताजी हो आयी। वहाँ न ही सुरंजन थे और न ही बापुना और लीना ही थी। कुछ पल के लिए वह सब कुछ भूल गयी थी। उसे महसूस होने लगा कि क्या उसके स्वप्न में इतनी निस्तब्धता थी? इतने दिनों बाद एक अनजान पुरुष के कोमल छुवन ने उसके दिल की धड़कन को तेज कर दिया। उस अजनबी पुरुष के साथ चेरापूँजी का यह सफर उसे स्वप्नलोक की तरह प्रतीत होने लगा।

❍❍❍

वह एक भला आदमी

मूल लेखक: ओ हेनरी
रूपांतर: तरसेम गुजराल

"कर्नल ने अपराधी नजरों से चारों ओर देखा और किसी को न पाकर झाड़ियों के बीच वाली पगडंडी पर चल दिये। जब बीचों-बीच पहुँच गये, जहाँ झाड़ियाँ सबसे अच्छी थीं, तो वे रुके और जेब से व्हिस्की की बोतल निकाली। उन्होंने एक पल उसे देखा, हल्के, उदास से मुस्करा दिये और जोर से कहा-''तुमने मुझे कितना परेशान किया है, उसके बारे में मेरे सिवा कोई नहीं जानता।''"

सम्पर्क: 444-बी, राजा गार्डन, जालंधर (पंजाब), मो. 9463632855

पिछले रविवार भी नियम के मुताबिक हयूस्टन के प्रसिद्ध कलाकार सपरिवार चर्च जाने के लिए निकल पड़े। कठोर और गंभीर दिखते कर्नल साहिब चर्च के उत्साही सदस्य भी थे। काले फ्राककोट और हल्की ग्रे पैंट में जँच रहे थे। वे लोग चर्च जाने के रास्ते की मुख्य गली से गुजरे ही थे कि कर्नल को याद आ गया कि उनके दफ़्तर की मेज़ पर एक चिट्ठी रह गई है। अपने परिवार को उन्होंने दरवाजे पर ही रुकने को कहा और खुद दफ़्तर उसे लेने के लिए चल दिये। भीतर जाने पर उन्हें चिट्ठी तो मिल गई साथ ही एक और चीज़ जिसने उन्हें अचरज से भर दिया—एक ------ की व्हिस्की की बोतल, जिसमें करीब एक औंस व्हिस्की अभी बची हुई थी, मौजूद थी, मेज़ पर पड़ी थी। कर्नल व्हिस्की से नफरत करते थे यहाँ तक कि किसी 'कठोर' पेय को छूते भी नहीं थे। उन्हें लगा कि किसी ने उनकी मेज़ के पास से गुजरते हुए मजाक के रूप में वह बोतल वहाँ रख दी होगी।

उसे फेंकने के लिए उन्होंने कोई जगह खोजनी चाही, परंतु पिछला दरवाजा बंद था और गलियारे की तरफ खुलने वाली खिड़की वह खोल ही नहीं पाये। ज़्यादा देर लगती देख कर्नल की पत्नी, उनकी खोज-खबर लेने के लिए खुद ही चली आई। कर्नल हैरान रह गये और बिना यह सोचे कि वह क्या कर रहे हैं उन्होंने अपनी जेब में बोतल को डाल लिया।

'आ क्यों नहीं रहे हो?' पत्नी ने पूछा-'चिट्ठी नहीं मिली क्या?'

वह उसके साथ चलने के अलावा कुछ नहीं कर पाये। वहीं बोतल दिखाकर सभी कुछ समझाया जा सकता था परंतु यह अवसर निकल गया लगा। मुख्य रास्ते पर परिवार के साथ चलते गये परंतु उस बोतल की वजह से अपनी जेब उन्हें काफी उठी हुई सी लग रही थी। कोई उनकी उठी हुई जेब को देख न ले इसलिए धीरे-धीरे सभी के पीछे-पीछे चल रहे थे। जब चर्च में पहुँचकर अपनी बेंच पर बैसे ही थे कि 'कड़ाक' की आवाज हुई और साथ ही दुष्ट व्हिस्की की तीखी महक अपना काम कर गई। कर्नल ने कुछ लोगों को नाक सरसराते हुए इधर उधर देखते हुए पाया और वह लाल पड़ गये। पिछले बेंच पर बैठी हुई एक महिला की तीखी फुसफुसाहट कानों में पड़ी-

'बूढ़ा कर्नल जे आज भी पिये हुए है। मेरे ये बता रहे थे कि वह शायद ही कभी सही दिमाग रहता हो। यह भी सुना है कि वह लगभग रोज अपनी बीवी को पीटता है।'

कर्नल ने ह्यूस्टन की प्रसिद्ध गप्प लगाने वाली महिला की आवाज को पहचान लिया और पीछे की तरफ घूम-घूमकर देखा। वह कुछ और ऊँची आवाज में फुसफुसायीं-देखो जरा उसे। कैसा खतरनाक दीख रहा है और इसी तरह चर्च पहुँच गया।'

कर्नल को पता था कि बोतल टूट गई इसलिए हिलने-डुलने से डर लग रहा था, आमतौर पर प्रार्थना के समय झुक जाया करते थे परंतु आज अपनी जगह पर सीधे ही बैठे रहे। उनकी पत्नी ने यह असामान्य व्यवहार देखा और उनसे धीमे स्वर में कहा-'जेम्स तुम्हें पता नहीं, तुम मुझे कितना दु:ख दे रहे हो। तुम अब प्रार्थना भी नहीं कर रहे हो। मुझे पता था कि तुम्हें इंगरसोल का भाषण सुनने जाने देने का यही फल होगा। तुम धर्म-विरुद्ध हो गये हो। और यह महक किस चीज़ की आ रही है? ओह जेम्स, तुमने पीना छोड़ा नहीं।'

'रविवार को भी।'

कर्नल की पत्नी ने आँखों पर रूमाल रख लिया। जबकि वह गुस्से में दाँत पीस रहे थे।

'सर्विस' खत्म होने के बाद वह घर लौटे। उनकी पत्नी ने पिछले बरामदे में बैठकर खाने के लिए स्ट्राबेरी छीलना शुरू कर दिया। अब कर्नल पीछे जाकर बोतल को जंगले के पार नहीं फेंक सकते थे, जैसा कि उन्होंने सोचा था। उनके दोनों बच्चे उनके आसपास मंडरा रहे थे। जैसा कि वह प्रत्येक रविवार को किया करते थे, कर्नल को लगा जैसे बोतल से छुटकारा पाना असंभव है। वह बच्चों को आगे यार्ड में घुमाने ले गये कि उन्हें किसी काम का बहाना बनाकर घर के अंदर भेज दिया और बोतल सड़क पर फेंक दी। इसमें पड़ी दरार महीन थी और चूँकि वह कूड़े के एक ढेर पर गिरी, वह टूटी भी नहीं।

कर्नल ने चैन की साँस ली। लेकिन जैसे ही बच्चे लौट रहे थे उन्होंने सड़क पर एक आवाज सुनी-

'देखिए सर, कानूनन सड़क पर शीशा फेंकना जुर्म है। मैंने आपको इसे फेंकते देखा, लेकिन यदि आप इसे अभी ही वापस ले लेते हैं तो मामला यहीं सुलझ जाएगा।'

कर्नल मुड़े और देखा कि एक लंबा-तगड़ा पुलिसवाला उस 'भयंकर' बोतल को जंगले के पार से उन्हें पकड़ा रहा है। उन्होंने इसे ले लिया और एक धीमे लेकिन सुनाई देने वाले रिमार्क के साथ उसे फिर से जेब में रख लिया। उनके बच्चे उनकी तरफ दौड़े और चिल्लाए-''पापा पुलिसवाले ने आपको क्या दिया? हमें भी देखने दीजिये न।''

उन्होंने उनका कोट पकड़ लिया और जेबों की तरफ झपट रहे थे। कर्नल ने अपनी पीठ जंगले की तरफ कर ली।

''भागो यहाँ से, शैतानों'' वह चिल्ला उठे, ''अंदर जाओ नहीं तो दोनों को पीट दूँगा।''

कर्नल घर के भीतर गये और अपना हैट पहन लिया। बोतल से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया था, भले ही इसके लिए कई मील तक चलना पड़े।

''कहाँ जा रहे हो?'' पत्नी ने हैरान होकर पूछा।

'खाना लगभग तैयार हो चुका है। तुम कोट उतारकर आराम क्यों नहीं करते जेम्स, हमेशा की तरह।'

'भाड़ में जाए खाना' उसने गुस्से में कहा।

'मुझे भूख नहीं है-मेरा मतलब तबियत ठीक नहीं है मेरी-खाना नहीं है मुझे-मैं घूमने जा रहा हूँ।'

'पापा दिखाइये न हमें वह चीज, जो पुलिस वाले ने आपको दी।' दोनों में से एक लड़के ने कहा।

'पुलिसवाला' कर्नल की पत्नी ने चीख कर कहा।

'ओह जेम्स, मुझे नहीं पता था तुम ऐसा करोगे। मालूम है मुझे तुम पीते नहीं, लेकिन बात क्या है तुम्हारे साथ, अंदर आओ और लेट जाओ। लाओ, तुम्हारा कोट उतार दूँ।'

उसने कर्नल का 'प्रिंस अल्बर्ट' उतारने की कोशिश की। आम तौर पर वह ऐसा ही करती थी लेकिन वह भारी गुस्से में हट गये। 'हाथ मुझसे दूर रखो' वह चिल्लाए, 'मेरे सर में दर्द है और मैं घूमने जा रहा हूँ।' मैं उसे फेंक दूँगा चाहे उसके लिए मुझे उत्तरी ध्रुव तक जाना पड़े? कर्नल की पत्नी ने उन्हें दरवाजे से निकलते देखा और सर हिलाया।

'आजकल काम ज्यादा है' उसने कहा, 'शायद थोड़ा घूमना अच्छा रहेगा उसके लिए।

कर्नल बोतल को फेंकने के लिए ठीक सी जगह ढूँढते कुछ ब्लॉक आगे चले गए।

सड़क पर लोग बहुत थे और हमेशा कोई-न-कोई उन्हें 'देख रहा' लगता था।

कर्नल के दो-तीन मित्र रास्ते में मिले, उन्होंने आश्चर्य से उन्हें देखा। उनका चेहरा लाल था, उनकी टोपी सिर के पिछले हिस्से पर टिकी थी। कुछ तो उन्हें बिना टोके गुजर गये और कर्नल कड़वाहट से हँसे। वह अब बेचैन हो चुके थे। जहाँ भी उन्हें कोई खाली-सी जगह दिखती, वह रुककर चारों तरफ खोजी नजरों से देखते कि रास्ता साफ है या नहीं। लोग उन्हें खिड़कियों से झाँक कर देख रहे थे और दो-तीन बच्चे उनके पीछे लग गये।

कर्नल मुड़े और उन्हें झिड़क दिया तो उन्होंने कहा 'देखा तो बुड्डे के पास क्या है? क्या कोई जगह नहीं मिल रही मिस्टर'?

कर्नल ने अपराधी नजरों से चारों ओर देखा और किसी को न पाकर झाड़ियों के बीच वाली पगडंडी पर चल दिये। जब बीचों-बीच पहुँच गये, जहाँ झाड़ियाँ सबसे अच्छी थी, तो वे रुके और जेब से व्हिस्की की बोतल निकाली। उन्होंने एक पल उसे देखा, हल्के, उदास से मुस्करा दिये और जोर से कहा-'तुमने मुझे कितना परेशान किया है, उसके बारे में मेरे सिवा कोई नहीं जानता।'

वह बोतल फेंकने ही वाले थे कि एक आवाज सुनाई दी। ऊपर देखा तो चर्च के पादरी को नजरों के सामने पाया। उनकी तरफ हैरानी से देखते हुए कहा-'आपने मुझे बहुत दु:ख पहुँचाया। मुझे नहीं पता था कि आप भी पीते है। मैं आपको यहाँ इस हालात में देखकर सचमुच बहुत दुखी हूँ।'

कर्नल का गुस्सा अब बेकाबू हो गया। 'मैं क्या करूँ अगर तुम दुखी हो तो।' वह चिल्लाये-'मैं उल्लू की तरह पिये हुए हूँ, पिये हुए ही रहता हूँ। मैं प्रत्येक रविवार इस समय तक बहुत बुरा आदमी हो जाता हूँ। और तो, यह गई बोतल अपनी किस्मत आजमाने।'

उसने बोतल पादरी पर दे मारी, जो उनके कान पर लगी और जमीन पर बीसियों टुकड़ों में बिखर गई। कर्नल ने पत्थरों का ढेर जमा किया और झाड़ियों के पीछे छिप गये। उन्होंने सोच लिया था पूरा शहर भी आ जाये, तो वह मुकाबला करेंगे। एक घंटे बाद तीन पुलिसवाले झाड़ियों में घुसे और कर्नल ने आत्मसमर्पण कर दिया। इतने समय तक उनका दिमाग सारी बातें समझने लायक शांत हो गया था और क्योंकि वह एक शांत और भले नागरिक के रूप में जाने जाते थे, उन्हें घर जाने दिया गया परंतु अब किसी कीमत पर आप उन्हें कोई भी बोतल उठा लेने के लिए राजी नहीं कर सकते-खाली या भरी हुई।

❍❍❍

बेटी

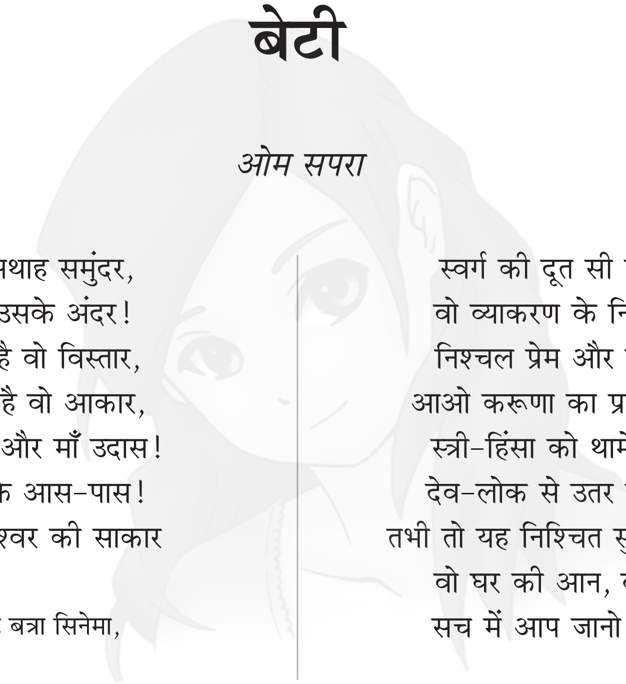

ओम सपरा

वो यादों का होती है अथाह समुंदर,
काव्यालोक का दृश्य उसके अंदर!
अलौकिक निबंधों का है वो विस्तार,
सपनों को अद्‌भुत देती है वो आकार,
जब होता है पिता निराश और माँ उदास!
होती है आप के दिल के आस-पास!
वो माँ का आधार और ईश्वर की साकार

स्वर्ग की दूत सी वो देती सब को प्यार,
वो व्याकरण के नियमों जैसी अटल धार,
निश्चल प्रेम और संबल की अजस्र नार!
आओ करूणा का प्रसार करें हर जन-मन में,
स्त्री-हिंसा को थामें, स्नेह विचरे गगन में,
देव-लोक से उतर यहाँ निडर घूमें अप्सरा,
तभी तो यह निश्चित सुंदर होगी ये स्वर्ग सी धरा!
वो घर की आन, बान और शान होती है,
सच में आप जानो कि बेटी क्या होती है!

❍❍❍

सम्पर्क: एन-22, डॉ. मुखर्जी नगर, निकट बत्रा सिनेमा,
दिल्ली-110009, मो: 9818180932

टाईगर हिल

निर्मला सिंह

शर्म एवं लज्जावश ग्रीवा को नीचे झुकाती हुई कृष्णा बोली-'सर, पश्चिमी सभ्यता का दौर पूरे जोश में है... स्कूलों, कालेजों में अपनी मर्जी से लड़के-लड़कियाँ मित्रता करते हैं और वह भी ऐसी मित्रता सर, जिसकी सीमाएँ ही नहीं है। मुझे तो घिन आता है दार्जिलिंग में बहती हुई नई धारा को देखकर... ' कहते हुए एकाएक शांत हो गई थी कृष्णा...

टाईगर हिल पर सूर्योदय का दृश्य देखने वाले लोग तो लगभग नए ही होते हैं, लेकिन चाय-कॉफी पिलाने वाले तो रोज-रोज नहीं बदलते। हो सकता है कोई उसे पागल समझे, कोई दीवाना, कोई सनकी। खैर! कोई कुछ भी समझे प्रवाल तो पंद्रह दिनों में लगभग दस दिन यहाँ आया है। नौ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित टाईगर हिल उसे बहुत भा गया। जब कंचनजंगा की हिमालय श्रेणी पर सुबह-सुबह सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब लगता है सोने की बरसात हो रही है। एक-एक चोटी श्वेत परी-सी सुनहरा आँचल ओढ़ लेती हैं जिसके चारों ओर गुलाबी आभा का घेरा-सा बन जाता है। इसी दृश्य को देखने हजारों की संख्या में लोग आते हैं, यही अपार लौकिक दृश्य कैमरे में कैद कर लेते हैं, न जाने कितने साहित्यकार कविताओं की रचना में लीन हो जाते हैं। यह दृश्य स्वर्गिक सौंदर्य का अहसास दिलाता है।

वैसे सूर्योदय के अलावा भी प्रवाल चारों ओर की पहाड़ियों को उन्मत-सा देखता ही रहता है। उसे लगता है जैसे-जैसे देवदार के वृक्षों से झूमती-गाती हवा प्रेम-संवाद कर रही है। सुनहरी किरणें हवा के ताल पर, पहाड़ियों के अंग-प्रत्यंग पर झूम-झूमकर थिरक रही हैं। दर्शकों के रूप में आए सभी पर्यटकों को एक नई चेतना, नया जीवन, नया उत्साह, जीने की उमंग देता है यह सूर्योदय का मनोरम, लुभावना दृश्य।

टाईगर हिल पर पहाड़ी के ठीक बीचों-बीच तीन मंजिली इमारत बनी है, जिसके चारों ओर पहाड़ी को घेरती हुई रेलिंग बनी है, इसी रेलिंग के ठीक बीच से ही ढलान सड़क की ओर जाती है। प्रवाल तीसरी मंजिल पर सुबह तीन या साढ़े तीन बजे आकर बैठ जाता है। चारों ओर से शीशे से बंद, ऊपर लकड़ी की छत वाली तीसरी मंजिल पर जाने के लिए दस रुपए का टिकट लगता है। जो पर्यटक सूर्योदय का दृश्य देखने के बाद कॉफी बेचने वालों को टिकट दे देते हैं उन्हें बदले में एक कप कॉफी मिलती है। कंचनजंगा की पर्वतीय श्रृंखला की ओर कमरे में

सम्पर्क: 'ए-31, सवाना हाईट्स, ग्रीन पार्क, बरेली, उ.प्र. पिन-243006, मो: 9258035247, 9412821608

कुर्सियाँ रखी हुई हैं और पश्चिम की ओर एक बड़ी सी मेज जिस पर कॉफी बेचने वाले थर्मस रखते हैं।

इन्हीं कुर्सियों में से एक कोने वाली कुर्सी पर प्रवाल आकर बैठता है, लिखता रहता है, कभी आँखें बंद करके सोचता रहता है, वह अब तक कई कविताएँ लिख चुका है। उस दिन भीड़ छँट गई थी, सब लोग कॉफी पीकर चले गए थे और लगभग सभी कॉफी पिलाने वाले भी चले गए थे, लेकिन वह लड़की नहीं गई थी, जिससे प्रवाल कॉफी लेकर पीता है। प्रवाल ने ध्यान से देखा—गोरा रंग, हिरनी-सी आँखें, नीचे खिंचा हुआ चिबुक, कपोलों पर हल्की लालिमा, बड़ी-बड़ी नुकीली पलकें, आँखों में एक विचित्र आभा—वेदना में रंगी हुई, कटे बाल, इकहरा बदन-सब कुछ मिलाकर उस लड़की का रूप प्रवाल को आकर्षणमय लगा। वह लड़की पहले से ही प्रवाल की ओर देख रही थी। खड़े-खड़े ही बोली-''सर, क्या आप लिखते हैं?'' चेहरे पर उत्सुकता और जिज्ञासा की रेखाएँ खिंची हुई थीं।

भोली-निश्चल मुस्कान प्रवाल के चेहरे पर बिखर गई। इधर-उधर देखते हुए बोला—''हाँ कहानी, कविता, लिखता हूँ।

''सर, क्या आपकी रचनाएँ छपती भी हैं?''

''हाँ, लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती है।''

लड़की चंचल बालिका की भाँति झूम उठी। हँसते हुए बोली—''सर, मैंने आज तक लेखक को नहीं देखा। दिल में विश था लेखक से मिलने का, देखने का। आपको देखकर मन बहुत खुश हो गया।''

प्रवाल को उसकी खनकती हँसी दार्जिलिंग के झर-झर झरते झरने-सी लगी।

''सर, आप दार्जिलिंग तो नहीं लाए होंगे अपना नोवल, स्टोरी बुक्स, कविता बुक्स वगरैरह...''

''नहीं, यहाँ एक भी किताब नहीं है।''

कुछ पल के लिए दोनों शांत हो गए। एक अद्‌भुत-सा आकर्षण, थोड़ी जिज्ञासा प्रवाल के हृदय में जन्मी। उसकी ओर देखकर मुस्कराया फिर कहने लगा—''तो बैठो कुर्सी पर, फिर अपना परिचय दो।''

''सर, मेरा परिचय लेकर आप क्या करेंगे?''

''कुछ भी नहीं... हाँ... हो सकता है तुम कुछ लिखो।'' वह हँसने लगा। लड़की की छाती धक् से हो गई। जी में आया कह दे, 'सर, अगर लिखना ही है तब मेरे ऊपर उपन्यास लिखो। इस सुंदर चाय के शहर में बहुत से आदमी औरत को नशे की चीज मानते हैं।

''अच्छा, तो तुम कुछ बताओ मुझे इस शहर के बारे में... अपने बारे में...''

कुछ क्षण लड़की एक जड़वत् मूर्ति-सी चित्रलिखित-सी बैठी रही, फिर अपना थर्मस मेज पर रखकर बोली—''सर, मेरा नाम कृष्णा है। मैंने इंटर तक पढ़ाई किया रैग्यूलर टुरूनवल स्कूल में अब बी.ए. प्राइवेट कर रही हूँ, यहीं माल रोड पर एक दुकान है, मदर बैठती है और बाबा तो...''

''हाँ... हाँ..., मुझे मालूम है यहाँ का आदमी तो पीता ही रहता है औरतें ही काम करती हैं... तुम्हारा बाबा भी ऐसा ही होगा।''

एक गहरी वेदना, गंभीर निराशा छोटी-छोटी कागज की चिंदियाँ-सी तैरने लगीं बड़ी-बड़ी आँखों के आप्लावित जल में।

जैसे हवा के झोंके से फूल नतमस्तक हो जाए, कृष्णा ने स्वीकृति में गर्दन झुकाकर 'हाँ' कर दी। उसे अपनी जिंदगी व्यर्थ, अस्तित्वहीन-सी लग रही थी। इतने वर्षों बाद कोई पुरुष मिला था जिसके आगे प्रथम भेंट में ही वह सब कुछ उगल देना चाहती थी, लेकिन समाज की मान-मर्यादा, सीमाओं ने कृष्णा के अधर बंद ही रखे। उसके दिल में आया सर से कह दे कि 'मुझे इस सुंदर चाय के शहर से, सुंदर बड़े-बड़े सिपाहियों जैसे देवदार के वृक्षों के शहर से, अप्सराओं जैसे युवतियों के शहर से... दूर मैदान में ले जाओ', लेकिन उसने कुछ नहीं कहा। धीमे से बोली—''सर, मेरी कहानी बड़ी लंबी है, आपको फिर बताऊँगी। अभी तो आप यह समझ लो इस स्वर्ग जैसे सुंदर दार्जिलिंग के अंदर एक घिनौना, बदसूरत दार्जिलिंग है जिसमें

औरतों के जिस्म को भी चाय की तरह बेचा जाता है। सुंदर, गोरी-चिट्टी हम सब नेपाली लड़कियाँ गंदे कूड़े-कचरे के ड्रम से भी बदबूदार ज़िंदगी जी रही हैं।'' हो सकता है वह आगे कुछ और बोलती, लेकिन मदर के आते ही उसके संग चल दी। जाती-जाती बस्ती का पता दे गई।

कृष्णा की बातें, उसकी नम आँखें, उसकी उदासी प्रवाल को भूडौल की भाँति अव्यवस्थित कर गई। उस दिन लौटते समय वह पतझड़-सा उजाड़-वीरान दिल लेकर दीपक के घर पहुँचा। दीपक नाश्ते के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा था परांठे का पहला कौर मुँह में डालते ही दीपक ने प्रवाल से पूछा—''क्या बात है, बड़ा दुखी दुखी से लग रहे हो इतने अच्छे रोमांटिक मौसम में? जब गये थे तो फूल-से खिल रहे थे अब काफी परेशानी चेहरे पर स्पष्ट झलक रही है।''

''नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं है।'' अन्यमनस्क-सा प्रवाल नाश्ता करने लगा जबकि हर रोज खूब हँसी-मजाक करता रहता है।

दीपक के काफी जोर डालने पर प्रवाल ने उस कृष्णा नाम की लड़की के साथ हुई सारी बातें बता दीं। अपनी आदत के अनुसार दीपक प्रवाल को छेड़ने लगा—''तुझे क्यों इतनी चिंता हो रही है अनजान कृष्णा की। शादीशुदा है, बच्चों वाला है, यहाँ की औरतों और लड़कियों के चक्रव्यूह से दूर रह। ये सब अपने आप बिकती हैं वह भी सौ रुपए से लेकर दस हजार तक। बस, दाना डालो, मुर्गियों की तरह चुगने आ जाती हैं। एक नहीं भीड़-की भीड़। उसमें से छाँट लो—गुलाब, बेला, चंपा, चमेली, रात की रानी फूलों की तरह।'' चाय की चुस्की लेते हुए दीपक ने हँसकर कहा।

''छिः-छिः, यह सब क्या है। दार्जिलिंग तो एक खूबसूरत स्वर्ग-सा सुंदर शहर है।'' प्रवाल के चेहरे पर अवहेलना, तिरस्कार, घृणा, वितृष्णा के दोटे-छोटे पौधे से अंकुरित हो गए।

परांठे, आमलेट खाकर चाय पीते हुए प्रवाल ने देखा कि बार-बार दीपक की निगाह रसोई में खड़ी हुई औरत पर टिक जाती, जम जाती अंगद के पाँव की तरह। उसने सोचा—हर रोज तो रसोइया खाना बनाता था तो यह कभी भी किचन की ओर झाँकता तक नहीं था, आज जरूर कोई खास बात है जो इसकी दृष्टि का पेंडुलम किचन में खड़ी औरत पर टिक रहा है। चाय का कप हाथ में लेकर वह दीपक से बोला—''चाय ड्राइंगरूम में बैठकर पिएँगे, वहाँ की खिड़की से हल्की-हल्की धूप भी आ रही है।'' दोनों मित्र चाय के कप हाथ में पकड़े हुए ड्राइंगरूम में चले गए।

प्रवाल सोच ही नहीं पा रहा था कि बात कहाँ से शुरू करें। काफी देर बाद वह संयत स्वरों में बोला—''यार, यह औरत कौन है जो मेनका-सी लग रही है क्या तू अब भी विद्यार्थी जीवन-सा उन्मुक्त, स्वच्छंद जीवन जीता है। यह सब छल है, प्रपंच है, छद्म है भाभी के साथ...। मुझे पता है, जवानी में जोश है, बल है, साहस है, आत्मविश्वास है, गौरव है और सब कुछ तो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है लेकिन इस समय तो तेरे लिए जवानी का नशा घमंड है, स्वार्थ है, काम-वासना है, विषय-वासना है, भोग-विलास है और वह सब कुछ है जो जीवन को विकार और पतन की ओर ले जाता है, तू नशा उतार दे, अब इस खौलती चाशनी में शीतल जल के छींटे डाल दे-फेन मिट जाएगा, मैल निकल जाएगा और निर्मल शुद्ध बस अवशेष रह जाएगा। समझा कि नहीं?'' एक ही साँस में प्रवाल बहुत कुछ कह गया।

''बस्स... बिना उत्तर सुने पूरा लंबा भाषण दे डाला मेरे आदर्श प्रोफेसर डॉ. प्रवाल ने। अरे, यह तो यार मेरी शादी से पहले की प्रेमिका उर्मिला है... मैं इसे प्यार करता था, लेकिन नेपाली होने के कारण माँ-बाप ने इसके साथ शादी नहीं होने दी, मैंने इसे अपने होटल में रख लिया है... आज तो रसोइया बीमार है तभी इसे बुला लिया था, वरन मेरे घर तो यह आती ही नहीं है। सुरभि को इसकी शक्ल फूटी आँख नहीं सुहाती। सुरभि इसकी परछाई से भी चिढ़ती है।''

संलाप के बीच में उर्मिला ने आकर पूछा—''सर, दोपहर का खाना बनेगा क्या?''

''नहीं... नहीं, हम होटल में ही खाएंगे। हाँ, रात का डिनर शाम को आकर तैयार कर देना।''

''ओ.के. सर।'' कहकर उर्मिला गई तो लगा जैसे कोई बासंती

हवा का झोंका आकर चला गया। श्वेत-शीतल चाँदनी का टुकड़ा खिड़की से झाँककर पेड़ों की ओट में छिप गया। कुछ पल प्रवाल भी उर्मिला के अनोखे रूप लावण्य की छटा को निहारता रहा। ओस की बूँद किसे नहीं अच्छी लगती, गुलाब का खिला फूल किसे पसंद नहीं आता, खिले बेला की खूशबू से कौन मुग्ध नहीं होता? उर्मिला के सौंदर्य को देखकर प्रवाल की वाणी रुक न सकी। भावों ने शब्दों का चोला पहन ही लिया—''यार, उर्मिला वास्तव में देवांगना से कम नहीं है, पूरी-की-पूरी देह एक स्वर, एक लय, एक साँचे में मूरत की तरह गढ़ी हुई है, लेकिन मेरे दोस्त, सौंदर्य को केवल भोगा ही नहीं पूजा भी जाता है... तू विवाहित है... अब यह सब चक्कर छोड़ दे... मुझे नहीं पता तेरे भोग-विलास की नदी अब भी कगार तोड़ती है या नहीं। बस्स, मैं इतना जानता हूँ कि तुझे अब एक म्यान में एक ही तलवार रखनी चाहिए कुछ चाहे दिनों के लिए म्यान रिक्त ही क्यों न पड़ी रहे।''

दीपक स्वभाव के अनुसार हँसने लगा। फिर प्रवाल के समीप आकर बोला—''यार, बहुत शरीफ, भोली-भाली, नेक औरत है यह। इसका पति तो शराबी है। बस जो कुछ यह कमाती है उसी से गुजारा चलता है। एक बात कहूँ, इतनी अच्छी औरत मैंने आज तक नहीं देखी। यार, किनारे तक आकर यह अपनी नाव को बीच धार में स्वयं ले गई और प्रेम का पर्याय है यह औरत...।''

''तब तो तूने बहुत अन्याय किया जो इसके साथ शादी नहीं की।''

गहरी श्वास खींचते हुए दीपक ने कहा—''क्या करता, मेरे जीवन को माता-पिता की रूढ़ियों, परंपराओं, मान-मर्यादाओं ने अपने पिंजरे में कैद कर रखा था। वंश की झूठी शान मेरे पिता जी के जीवन का मुकुट है।''

''खैर! जे हो गया वह हो गया। अब तो फिर तपती रेत पर मत चल। तू भूल जा उर्मिला को... वरना आज के साए तेरे बच्चों का भविष्य जलाकर राख कर देंगे। केवल अपनी बीवी के साथ ही रहना चाहिए।''

प्रवाल कुछ आगे बोलता, दीपक उठकर जाने लगा। घड़ी की ओर देखकर बोला—''अच्छा... अच्छा दोस्त तुम ठीक कह रहे हो। रात में खूब बातें करेंगे। सुन यार, अभी मैं होटल जा रहा हूँ, तू गाड़ी और ड्राइवर लेकर रॉक गॉर्डन, पीस पगोड़ा बतासा लूप, आवा आर्ट गैलरी जो कुछ भी देखना चाहे देख ले... हाँ, दोपहर में लंच खाने होटल आ जाना।''

''हाँ, यह ठीक है। मैं थोड़ी देर आराम करूँगा फिर घूमूँगा, वैसे मैंने मौनेस्ट्री, बौद्ध मंदिर, लाल कोठी, महाकाल मंदिर, तेनजिंग माउंनेनियरिंग इंस्टीट्यूट खुरशियांग के चाय के बागान तथा मिरिक का व्यू प्वाइंट एवं मिरिक झील आदि सब कुछ तो देख लिया है।''

''अच्छा तो मैं चलूँ'', कहकर दीपक चला गया।

दीपक के आते ही प्रवाल बिस्तर पर लेट गया। सोचा, थोड़ी देर आराम करने के बाद घूमने जाऊँगा लेकिन एक बार लेटकर बिस्तर छोड़ने को मन नहीं हुआ। बार-बार भोली-भाली कृष्णा का चेहरा आँखों के समक्ष आ जाता और उसके कहे शब्द कानों में खुसुर-फुसर-सी करने लगते—''सर, यहाँ की लड़कियाँ जितनी अधिक सुंदर हैं उतनी ही नारकीय जिंदगी है उनकी। क्या-क्या नहीं करना पड़ता है उन्हें...?''

रूआँसी-सी हो गई थी वह। 'हाँ... सर, उन्हें अपना शरीर विवश होकर बेचना पड़ता है... ड्रग्स बेचनी पड़ती है। सर, शादी से पहले गरीबी में जकड़े अम्मा-बाबा गंदे काम करवाते हैं और शादी के बाद शराबी पति... सर, बहुत कम नेपाली औरतें और लड़कियाँ शांतिपूर्वक, सुखमय जीवन जी रही हैं।'

'च्च-च्च-च्च यह तो अन्याय है यहाँ की खूबसूरती के साथ। मेरी राय में तो शायद यहाँ सब कुछ फ्री होगा।'

शर्म एवं लज्जावश ग्रीवा को नीचे झुकाती हुई कृष्णा बोली-'सर, पश्चिमी सभ्यता का दौर पूरे जोश में है... स्कूलों, कालेजों में अपनी मर्जी से लड़के-लड़कियाँ मित्रता करते हैं और वह भी ऐसी मित्रता सर, जिसकी सीमाएँ ही नहीं है। मुझे तो घिन आता है दार्जिलिंग में बहती हुई नई धारा को देखकर...' कहते हुए एकाएक शांत हो गई थी कृष्णा...

प्रवाल ने पूछा था—''कृष्णा, तुम्हारी क्या पोजीशन है?''

'सर, ठीक नहीं है, बताऊँगी फिर किसी दिन।'

प्रवाल ने दूसरी करवट बदली तो उर्मिला और दीपक के चेहरे आँखों के समक्ष खड़े हो गए। प्रेम, उन्माद से भरी उर्मिला की गहरी आँखों में तो दीपक क्या कोई भी पुरुष डूब जाए, आवाज भी न हो। कैसी सुंदर मनमोहनी देह है उसकी? कैसे मुस्कुराकर दीपक से बातें करती है, न लजाती है, न झिझकती है, न दबती है। बड़ा दबंग व्यक्तित्व है, अब दीपक की बीवी नहीं हैं तब लगता है इसी का राज। खैर! करें भी तो करे क्या? गरीबी, विवशताएँ आदमी से जो चाहें करा लें, अरे, इधर-उधर मुँह माकर तन बेचने से तो अच्छा है एक ही आदमी से मिलती है बिचारी। दीपक उसी बात की लाज निभा रहा है... सब कुछ दे रखा है दीपक ने उसे, सिवाय अपने नाम के...। बस्स इन्हीं सब विचारों में डूबा हुआ प्रवाल नींद के आगोश में चला गया...।

प्रवाल सोया खूब सोया, न तो वह घूमने गया और न ही होटल लंच लेने... लगभग तीन बजे उसकी आँख दीपक के फोन की घंटी से खुली। आँखें मलते हुए उठा, फोन पर दीपक से लंच पर आने को मना कर दिया। और कई घंटे तक अपना साहित्य सृजन करता रहा। एक नया उपन्यास उसके विचारों में घूम रहा था। अब उसमें दार्जिलिंग का समावेश हो गया। एक-दो बार चाय पीने की इच्छा हुई, किचन में गया, स्वयं चाय बनाई, इधर-उधर ढूँढकर बिस्किट वगैरह देखे और खा लिए। एक तो सुबह के तीन परांठे दूसरे उसकी सोच ने उसे जीने की आज्ञा नहीं दी।

प्रवाल की समाधि संध्यावतरण के समय टूटी। क्लांत-श्रांत सूर्य क्षितिज के अंक में छिप रहा था। चंद्रमा उदित होने के लिए धीरे-धीरे अपने चरण आसमान की सीढ़ियों पर रख रहा था और शीतल धवल चाँदनी के साथ द्वार पर उर्मिला ने कॉल बेल बजाई। प्रवाल ने दरवाजा खोला, आँखों को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इस धरती पर भी इतनी आकर्षक, लुभावनी, प्यारी, भोली-भाली फूल-सी कोमल गुरूत्वाकर्षण की शक्ति का केंद्र भी औरत हो सकती है-वैसे तो उसकी स्वयं की बीवी, दीपक की बीवी सभी सुंदर हैं लेकिन ऐसा रूप-लावण्य जिसको देखकर टिके बिना आँखें रह ही न सकें, उसने पहली बार देखा। दोनों में अभिवादन हुआ। उर्मिला चाय के लिए पूछकर किचन में चली गई और प्रवाल एक संन्यासी की भाँति अपनी साधना में लीन हो गया। अब उसे साहित्य सृजन के लिए दो-तीन नवीन रोचक पात्र मिल गए थे-एक उर्मिला, दूसरी कृष्णा और पुरुषों में दीपक...।

ऐसे ही कई दिनों तक प्रवाल कहीं नहीं गया बस खाता-पीता, आराम करता और लिखता।

एक रात सोने से पहले उसने अपने बाथरूम की खिड़की से देखा-खूब सजी-सँवरी उर्मिला मुस्कुराती हुई कोठी के पीछे वाले दरवाज़े की ओर आ रही थी। प्रवाल को जिज्ञासा ने घेर लिया। स्लीपिंग सूट पहनकर वह आँखें बंद करके लेट तो गया लेकिन उसे नींद नहीं आई। दिमाग में उर्मिला ही घूम रही थी। उसी समय उसे याद आया, दीपक ने कहा था—'यार, यहाँ की औरतें जैसी भोली लगती हैं होती नहीं है। यह बसंती हवा के ऐसे तीव्र झोंके हैं जो सब कुछ हिला-डुलाकर चली जाती हैं। ये रात में बिस्तर पर बिखर जाती हैं मोतियों की तरह, फिर हंस-सा चुगते रहो। कोई भी शर्म नहीं है, कोई लाज नहीं है ऐसी औरतों में, लड़कियों में...।'

प्रवाल ने हँसकर कहा था—'यार, तुझे तो बहुत अनुभव है।'

हो...हो...हो...हो... दीपक हँसने लगा था और बोला—'क्यों नहीं होगा अनुभव, होटल चलाता हूँ, घाट-घाट के पर्यटक आते हैं।'

प्रवाल खिड़की के पास गया। बाहर पहाड़ियों पर दृष्टि दौड़ाई। एक ओर पहाड़ी पर बने मकानों की बत्तियाँ सीढ़ियों पर रखे दीयों-सी लग रही थी तो दूसरी ओर ठंडी-ठंडी हवा के झोंके देवदार के लंबे-लंबे वृक्षों से लिपट-लिपटकर प्रेमालाप कर रहे थे और श्वेत चाँदनी पेड़-पौधों, पहाड़ियों को सहला-सहला कर अपनी कहानी कह रही थी। प्रवाल का मन नदी के जल की तरह बह रहा था, टिका नहीं, रुका नहीं। वह हल्के-हल्के कदमों से दीपक के कमरे की ओर चला गया। अंदर से उर्मिला के रोने की आवाजें आ रही थीं। प्रवाल ने देखा, गुलाबी पारदर्शी नाइटी में उर्मिला पलंग पर बिखरने के लिए तैयार बैठी थी। उसकी समूची लयात्मक देह नाइटी में स्पष्ट झलक रही थी। उसे लगा, मेनका विश्वामित्र की तपस्या भंग करने का प्रयास कर रही है। दीपक क्रोध में कह रहा था—'देखो उर्मिला, अब

तक जो हो रहा था अब वह नहीं होगा। मेरा लड़का सात वर्ष का हो गया है, लड़की पाँच वर्ष की। हमारी इस जिंदगी का प्रतिबिंब हमारे बच्चों की जिंदगी को बर्बाद कर देगा। तुम्हारी बेटी भी पाँच वर्ष की हो गई है, अब जैसा भी है तुम अपने पति के साथ ही संबंध रखो, अब मैं .....। जिस चीज का अभाव हो बता देना, माँग लेना लेकिन... मैं एक साथ दो नाव में तैर नहीं सकता। हाँ, जरूरत पड़े पर मदद कर दूँगा।'

उर्मिला खूब सिसक-सिसकर रो रही थी, चेहरे को देखने में लगता था मानो उसे किसी ने नीम की छाँव के नीचे से खींचकर तपती-जलती धूप में चलने के लिए खड़ा कर दिया है या वह समुद्र के किनारे ऐसी चट्टान पर खड़ी हो गई है जो डगमगा रही है, उसके आधे भाग में जल है और आधे में धरती। प्रवाल देखता रहा उर्मिला को तड़पते हुए, सिसकते हुए, फिर थोड़ी देर बाद वह अपने कमरे में आ गया।

ज्यों ही वह लेटने को तैयार हुआ उसने उर्मिला के वापस जाते हुए पदचाप सुने। वह बहुत खुश हुआ, चलो दोनों शरीरों का बम विस्फोट होते-होते तो बचा, वरना आज उर्मिला और दीपक की देहों की धज्जियां उड़ जातीं, उनके चिथड़े-चिथड़े हो जाते। वह सुबह चिथड़ों को जोड़ते फिरते।

दीपक और उर्मिला के बारे में सोचता हुआ ही प्रवाल सो गया।

सुबह आँख खुलते ही वह खुरशियांग जाने की तैयारी करने लगा। इससे पहले कि वह तैयार होकर बाहर निकलता नौकर ने आकर एक पर्चा दिया—उस पर लिखा था-'सर, आप जल्दी आ जाओ। मैं सरकारी अस्पताल में भर्ती हूँ, बहुत बीमार हूँ।'' नीचे कृष्णा का नाम लिखा था।'

दीपक के कहने पर प्रवाल सिर्फ बेड-टी लेकर अस्पताल चला गया। उसे गाड़ी में मौसम की तरह उबलता हुआ कृष्णा का चेहरा, कभी-कभी आँखों में भरे आँसू जैसी सीधी में मोती, अधरों पर थिरकती मुस्कुराहट और हँसी का ओक्टोपसी अवसाद का निगलना सब कुछ याद आ रहा था, जैसे अतीत एक चलचित्र-सा घूमने लगा हो। ठिठुरती शीत में भी पसीने की बूँदें माथे पर झलक रही थी। तेज-तेज कदमों से चलने के कारण कार से उतरकर जनरल वार्ड तक पहुँचने में उसे पाँच मिनट भी नहीं लगे... पलंगों को खोजा तो देखा एक पलंग पर कृष्णा हाड़-मांस के लोथड़े-सी पड़ी है... उसकी आँखों की गहराई में वेदना, पीड़ा का ही जल भरा था। वह कराह रही थी। चेहरे पर रौनक का स्थान खामोशी, वीरानगी ने ले लिया था। अंगूरी चेहरा पीला जर्द-सा हो गया था। मोटी गोल बाँहों की त्वचा सूखें छुआरों-सी हो गई थी। कुछ दिनों के साथ से ही एक बेनाम इंसानी रिश्ता बन गया था कृष्णा के साथ प्रवाल का। प्रवाल ने घबड़ाकर पूछा—''क्यों, क्या हो गया कृष्णा... इतनी जल्दी तुम्हारी यह दशा... टाईगर हिल पर तो तुम ठीक थीं। इन दिनों में ही यह हालत हो गई तुम्हारी, क्या बात है... बोलो?''

कृष्णा की आँखें अश्रुओं से भरी थी। अधरों से कँपकँपाते कुछ शब्द निकले—''सर आपने उस दिन मेरी पोजीशन पूछी थी तो सर मैं न विधवा हूँ, न सुहागिन और न कुँवारी। जब मैं बी.ए. कर रही थी उस समय यू.पी. के एक पुरुष का जो पेशे से जूनियर इंजीनियर था, मेरे साथ प्रेम-विवाह हो गया था। लगभग साल-भर बाद उसका तबादला हो गया। वह कलकत्ता चला गया अपना नाम, पता व फोन नंबर देकर। कई महीनों तक उसने कोई संपर्क नहीं किया। मैंने कई फोन किए उस पते पर, उसे खोजा लेकिन वह झूठा था... वह तब से अब तक नहीं आया है। सर, अब मैं बहुत बीमार रहने लगी थी, तब मैंने परीक्षण करवाए, पता चला-एच.आई.वी. पोजीटिव है। सर, मुझे एड्स हो गया है। यह उसी झूठे प्रेम का परिणाम है। सर, मेरी तरह न जाने कितनी लड़कियाँ और औरतें बाहर से आए हुए लोगों के जाल में फँस जाती हैं। सर, मेरे झूठे प्रेम की शुरुआत टाईगर हिल पर ही हुई थी। आप उस पर उपन्यास लिखिएगा।''

''अच्छा, कोशिश करूँगा।'' कहकर प्रवाल निर्निमेष दृष्टि से कुछ पल कृष्णा को देखता रहा, फिर अपनी उम्र के कंधे पर लटके जिंदगी के झोले में एक अनजान रिश्ते का दु:ख, दर्द, और पीड़ा, का रंग भरता हुआ अस्पताल से बाहर चला गया।

❍❍❍

तुम्हारे लिए

डॉ. प्रीति

‘‘आज वसुधा का पहला दिन था। ‘‘कामायनी’’ उसकी प्रिय पुस्तक है। खूब मनोयोग से वह पढ़ायेगी। इन्हीं विचारों के साथ वह स्टाफ रूम में प्रवेश कर गई। उसे डॉ. वर्धन की उपस्थिति की प्रतीक्षा थी। फिर याद आया, ‘‘आज तो डॉ. वर्धन की कोई क्लास नहीं है। कुछ ही देर बाद वसु ने डॉ. वर्धन को कमरे में प्रवेश करते हुए देखा।

‘‘सर आप, आज तो आपकी... बीच में ही डॉ. वर्धन बोल पड़े। ‘‘मुझे कुछ जरूरी काम था, इसीलिए आना पड़ा।’’

वसुधा को हर रोज डाकिए का इंतजार रहता है। घड़ी की सुई एक पर पहुँचते ही वह बाहर बरामदे आकर बैठ जाती। पिछले दो माह से वह ऐसा ही कर रही है।

नौकरी के लिए उसने कई जगह आवेदन पत्र दिए हैं, उसे पूरी उम्मीद है कि उसे इस सेशन में ही नौकरी मिल जाएगी।

डाकिए ने साइकिल रोकी। वह गेट तक गई। ढेर सारी चिट्ठियों में से उसने अपने नाम की चिट्ठी निकाल ली। ‘दिल्ली वेदांत कालेज’ से चिट्ठी आई है। उसका हृदय उछल पड़ा। शायद...। शीघ्रता से उसने लिफाफा खोला। पत्र पढ़ते ही वह खुश हो गई। हिंदी प्रवक्ता के लिए उसका चयन हो गया था। एक औपचारिक साक्षात्कार हेतु उसे बीस जून को दिल्ली पहुँचना होगा। वह शीघ्रता से दादू के कमरे में गई।

‘‘बहुत खुश लग रही है बेटा? क्या तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई है। तुम्हारे हाथ में नौकरी का एपाइंटमेंट लेटर लग रहा हैं।’’

‘‘हाँ, दादू आपका आशीर्वाद जो मेरे साथ।’’ वसुधा ने पत्र दादू को थमा दिया। माँ भी आ गई। ‘‘क्या लिखा है बाबूजी इस पत्र में? बहू इस पत्र में खुशखबरी है, वसुधा को दिल्ली के एक डिग्री कॉलेज में जॉब मिल गई है।’’ माँ ठिठकी। ‘‘दिल्ली में? वसुधा दिल्ली में कैसे नौकरी कर सकती है। इतना बड़ा शहर। वहाँ अपना कोई रिश्तेदार भी तो नहीं है।’’

‘‘माँ, तुम बहुत जल्दी परेशान हो जाती हो। दिल्ली में पूजा है न, मेरे बचपन की सहेली लाजपत नगर में रहती है।’’

‘‘मुझे नहीं रास आ रहा है बसु; तेरी सभी सहेलियों की तो शादी हो चुकी है। एक तू ही है जो मेरा कहा नहीं मानती। तुझे हर रिश्ते में कोई न कोई कमी लगती है। क्या तू किसी सुरख्वाबों के परों से बनी है। कितने अच्छे रिश्ते आए मगर तूने एक को भी नहीं चुना। तुझे तेरे पापा बेटा समझते हैं और इकलौती होने का फायदा उठाती है तू। अब तू बच्ची नहीं है। पूरे छब्बीस वसंत देख लिए है तूने। बस तू मुझे ही परेशान करती है।’’

माँ अपनी वही पुरानी बातें बोल-बोलकर थक चुकी है, वह अपने काम में लग गई, उधर बसु का मन पंख लगाए उड़ने लगा। उसे पापा के दफ्तर से आने की प्रतीक्षा है।

सम्पर्क: 4/151, विशालखंड, गोमती नगर, लखनऊ
मो: 9838661663, 9415788320

पापा हर रोज की तरह सबसे पहले अपनी दुलारी बिटिया को ही आवाज लगाते हैं। वो गाड़ी पार्क कर बाहरी बरामदे में आ चुके थे। बसु तीव्रता से पापा के पास जाने लगी। ''बेटे, आज तू बहुत खुश है क्या बात है?''

''पापा मुझे कॉलेज में जॉब मिली है दिल्ली जाना हैं।''

''यह तो बेहद खुशखबर है बेटे।''

शारदा ने बीच में ही टोका, ''मुझे मालूम था, आप भी अपनी लाड़ली का ही साथ देंगे।''

तो इसमें गलत क्या है शारदा? बसु हमारी होनहार बेटी है वह अपने फैसले ले सकती है। दिल्ली ही नहीं आजकल बेटियाँ पूरी दुनिया के देशों में अपना करियर चुन रही हैं। मेरी बिटिया बसु भी दिल्ली जाएगी। वह अपनी देखभाल स्वयं कर सकती है। मुझे बसु पर पूरा विश्वास है। अब अपने पुराने ख्यालों को छोड़कर बसु की दिल्ली जाने की तैयारी करो।''

''कितने अच्छे हैं पापा।''

बसु बेटे तुम्हारा रिजर्वेशन हैं शनिवार के लिए करवा देता हूँ। रविवार सुबह तुम दिल्ली पहुँच जाओगी। दिल्ली में तुम्हारे रायपुर वाले मामा जी भी तो हैं। मैं उन्हें फोन कर दूँगा। वो स्टेशन आ जाएँगे।''

''पापा मैंने अपनी सहेली पूजा को फोन कर दिया है। वह स्टेशन आ जाएगी। आप बिल्कुल परेशान न हों।''

वसुधा ने अटैची और हैंडबैग में सामान लगा लिया। माँ, पापा स्टेशन तक आए। वसुधा बर्थ पर लेटी उन्हीं के बारे में सोचती रही। माँ का चेहरा बार-बार आँखों के सामने आ जाता। उनकी कातर दृष्टि में न जाने कितने सवाल थे। दिल्ली में उसे कोई समस्या तो नहीं परेशान करेगी? भोर हो रही थी। दिल्ली स्टेशन आ रहा था। ट्रेन मंथर गति से रुकी। बसु ने खिड़की से बाहर देखा, पूजा सामने खड़ी, हाथ हिला रही थी। बसु के चेहरे पर खुशी तैर गई। वह शीघ्रता से अटैची हैंडबैंग उठाकर गाड़ी से नीचे उतर आई।

पूजा ने दुलार से वसुधा को गले लगा लिया। ''कितने समय बाद हम मिले हैं पूजा। तू इतनी सुंदर हो गई है, लगता है जीजा जी सारा प्यार तुझ पर ही उड़ेल देते हैं। ''यह सब तुझे कैसे पता?'' ''तेरे मुखड़े की ताजगी, गालों की सुर्खियाँ सब बता रहे हैं।''

रास्ते भर दोनों सहेलियों की चटर-पटर चलती रही। अब वे अपने फ्लैट के सामने थी। ऑटो रिक्शा के पैसे देकर पूजा ने बसु से बैग ले लिया। वे लिफ्ट की तरफ बढ़ गई। फ्लोर नं. 8 आ चुका था। पूजा ने ताला खोलते हुए कहा ''वसु, तू फ्रेश हो ले। मैं तब तक चाय बनाती हूँ।''

चाय की चुस्कियाँ लेते वक्त पूजा ने बताया उसके पति डेप्यूटेशन पर लंदन गये हैं पूरे एक माह के लिए। ''ओह, तो तू यहाँ अकेली ही रहती हैं।'' ''हाँ, नो प्रॉब्लम हमारे सभी पड़ोसी बेहद अच्छे और सहयोगी हैं। और अब तो तू भी आ गई है, वसु। ढेर सारी बातें करेंगे। वो दिन अब कहाँ लौटकर आने वाले हैं।''

''सच पूजा कॉलेज के दिनों की ढेर सारी यादें। चल अब किचन में ही कुछ बातें करेंगे और कुछ खाने के लिए बना लेंगे।'' पूजा ने वसु से कहा, ''तू आराम कर ले न, कल ही तेरा इंटरव्यू है वैसे मैं भी तो चलूँगी तेरे साथ।''

''हाँ, तेरे बगैर मैं अकेली थोड़े ही जाऊँगी। यहाँ से काफी दूर है तेरा कॉलेज।''

सुबह दोनों सहेलियाँ समय से कॉलेज कैम्पस पहुँच चुकी थीं चपरासी ने बताया ''मैडम, आप एक स्लिप लगा दें। मैडम आने वाली हैं।'' कुछ देर बाद चपरासी ने वसुधा से कहा ''मैडम आपको अंदर बुला रही हैं।''

वसुधा प्रिंसिपल के सामने थी। नमस्ते करते हुए वह कुर्सी पर बैठ गई।

''वसुधा जी आपकी सेवाओं के लिए कमेटी ने निर्णय ले लिया है बस एक औपचारिक साक्षात्कार लेना होगा।''

मैडम ने घंटी बजाई, ''वसुधा जी को डॉ. आनंदवर्धन के पास पहुँचा दो।'' वसुधा ने नमस्कार किया और पूजा के साथ कमरे से बाहर आ गई।

वसुधा ने डॉ. वर्धन को नमस्कार किया। बैठिए वसुधा जी। आप यहाँ कहाँ ठहरी हैं?''

''जी ये हमारी सहेली है पूजा, इन्हीं के घर। लाजपत नगर में।''

डॉ. वर्धन ने कहा, ''कॉलेज से तो लाजपत नगर काफी दूर है।''

''जी हाँ।'' ''आप साहित्य की कौन सी विधा पढ़ाना चाहेंगी?''
''कोई भी सर''।

''मुझे लगता है आप काव्य विधा पढ़ाएँ।''

''ठीक है सर''। किताबें, टाइमटेबल सब आपको शीघ्र मिल जाएँगे।

''आप कल से ही ज्वाइन कर लें।''

वसुधा उठने लगी तो चाय आ गई।

''चाय तो पी लीजिए।'' पूजा और वसुधा बैठ गई।

डॉ. वर्धन ने गुडलक कहा और सोमवार से कामायनी पढ़ाने के लिए वसुधा को कहा।

वसुधा मान चुकी थी कि डॉ. वर्धन ही उसके लोकल गारजियन हैं। उसने अपने लिए रहने की व्यवस्था हेतु डॉ. वर्धन से जिक्र किया, ''सर यहीं कॉलेज से नजदीक ही कोई रूम मिल जाता तो सुविधा होती।''

''हाँ, क्यों नहीं कॉलेज में गर्ल्स होस्टल है न, उसमें आपके लिए व्यवस्था हो जाएगी।''

''ओह सर मैं आपकी आभारी हो गई हूँ।''

''आभार बाद में, पहले मैंनेजमेंट के नाम एक पत्र दीजिए। मैं उसे फार्वर्ड कर दूँगा।''

आज बेहद खुश थी वसु, डॉ. वर्धन कितना हेल्प करते हैं। घर पहुँच कर वसु ने पूजा को बताया।

''तो क्या तुझे मेरे साथ रहना ठीक नहीं लग रहा है।''

''नहीं पूजा, कॉलेज यहाँ को काफी दूर है और बस इसीलिए रहने खाने का प्रबंध, गर्ल्स होस्टल में हो जाएगा।''

''सच पूजा डॉ. वर्धन बहुत केयरिंग पर्सन हैं।''

वसु होस्टल चली गई। उसका कमरा बेहद हवादार और साफ सुथरा था। वसु ने अपना सामान करीने से आलमारी में लगा दिया। वसु ने सोचा, अब कुछ सामान बाजार से लाना होगा। तभी डोर बेल बजी। कौन होगा। वसु ने दरवाजा खोला। सामने डॉ. वर्धन अपने बेटे के साथ खड़े थे।

''अरे सर आप? आइए, आइए अंदर आइए।''

''बेटे आंटी को नमस्ते करो।''

तोतली भाषा में चारू बोल पड़ा ''नमस्ते आंटी।''

वसु ने चारू को गोद में उठा लिया।

''बैठिए न सर''। डॉ. वर्धन पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गये।

वसु भी चारू को गोद में लिए हुए दूसरी कुर्सी पर बैठ गई।

''आपको अपना काम पसंद आया?''

''बहुत अच्छा है सर?'' डॉ. वर्धन खिड़की की तरफ इशारा करते हुए बोले ''यहाँ से पूरा कॉलेज दिखाई पड़ता है।

''सर मैं समझ नहीं पा रही हूँ, आपको कैसे धन्यवाद कहूँ?''

''कैसी औपचारिकता वसु? जहाँ अपनापन होता हैं वहाँ इन बातों की कोई आवश्यकता नहीं।''

अब तक चाय नाश्ता लेकर चपरासी आ चुका था। ''अरे यह क्या सर?''

''तुम मुझे चाय पिलाना चाहती, लेकिन किचन अभी नहीं है। अब तुम यहाँ अच्छी तरह सेटल हो जाओ तो तुम्हारे हाथ की चाय जरूर पीने आऊँगा।''

''आपको यहाँ दिल्ली में कैसा लग रहा है?''

''सर आप मुझे आप क्यों कहते हैं। मैं आपसे छोटी हूँ, आप मुझे तुम कह सकते हैं।''

''वसुधा अगर तुम ठीक समझो तो बाजार चल कर जरूरी सामान खरीद सकती हो।'' पल भर को वसुधा एकटक डॉ. वर्धन को देखती रही। फिर बोली, ''चलिए सर।''

वसुधा जरूरी सामानों की खरीदारी करके वापस कमरे में आ गई।

वसुधा सोचती रही कि कितना प्यारा बच्चा है पर माँ विहीन। चारू को चाकलेट देते समय वसुधा ने उसके गाल चूम लिए थे। ''फिर आना, पापा के साथ।''

चारू ने मुस्करा कर सर हिला दिया।

वसु ने आलमारी पर पूजा की सामग्री रखी तथा सरस्वती की प्रतिमा को प्रणाम किया।

डॉ. वर्धन का मुस्कुराता हुआ चेहरा बार-बार उसकी दृष्टि के समक्ष आ जाता। घुँघराले बालों के बीच संवेदना से लबरेज दो आँखें उसे अपनेपन का अहसास देती रही।

उधर डॉ. वर्धन का मन बार-बार वसु के पास चला जाता। एक प्रकार की बेचैनी का एहसास उन्हें हो रहा था।

''कामायनी'' उसकी प्रिय पुस्तक है। खूब मनोयोग से वह पढ़ाती रहेगी, इन्हीं विचारों के साथ वह स्टाफ रूम में प्रवेश कर गई। उसे डॉ. वर्धन की उपस्थिति की प्रतीक्षा थी। फिर याद आया, आज तो डॉ. वर्धन की कोई क्लास नहीं है। लेकिन कुछ ही देर बाद वसु ने डॉ. वर्धन को कमरे में प्रवेश करते हुए देखा।

''सर आप, आज सोमवार आपकी... बीच में ही डॉ. वर्धन बोल पड़े, ''मुझे कुछ जरूरी काम था, इसीलिए आना पड़ा।''

एक बार फिर से डॉ. वर्धन ने वसु से गुडलक कहा। वसुधा ने पलकों को झुका कर उत्तर दे दिया। वह क्लास लेने चली गई।

बहुत तन्मयता से वसु ने 'कामायनी' का प्रथम सर्ग विद्यार्थियों को पढ़ाया। स्टाफ रूम में आई तो वहाँ डॉ. वर्धन बैठे मिले, मुस्कुरा कर बोले, ''वसु आपने बेहद अच्छी तरह लेक्चर दिया। आपके शिष्यों की तन्यमता दिखाई पड़ी।''

''सर, आप?'' जी हाँ, मैं उधर से गुजर रहा था, तभी देखा।''

डॉ. मृदुला ने कहा, ''यह अनुशासन प्रियता, तो डॉ. वर्धन की ही देन है।''

वसु अपनी कक्षाएँ समाप्त कर जाने लगी। तभी डॉ. वर्धन ने कहा, ''वसुधा जी, अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो आज मैं आपके हाथ की चाय पीना चाहूँगा।''

''ओह सर। क्यों नहीं, चलिए न सर, मुझे बेहद खुशी होगी।''

अपने जीवन में खुशियों की आहट पाकर वसु मुग्ध थी। समय अपनी सीढ़ियाँ चढ़ता रहा। घर की याद आती रही। खासकर माँ का चेहरा बार-बार सामने आ जाता। कभी-कभी वसु स्वयं से पूछती, ऐसा तो कभी भी उसके जीवन में नहीं हुआ। मन के भीतर प्रसन्नता की हिलोरें? वसु को उत्तर मिल चुका था। एक दिन दोनों ने ही अपने मन के पिटारे खोल लिए। स्नेह की उत्ताल तरंगें उछाह भरती रहीं।

डॉ. वर्धन ने साफगोई से मन की खिड़कियाँ खोलकर, वसुधा के सामने रख दी।

''चारू को देखता हूँ तो एक अजीब अपराधबोध-सा महसूस करता हूँ। चारू को माँ की कमी किस तरह पूरी कर पाऊँगा। मुझे जाने क्यूँ ऐसा लगता है कि वसु तुम स्नेह और ममता दोनों को ही अच्छी तरह से समझती हो। चारू तुमसे कितने अच्छी तरह से हिलमिल गया है। उसे तुम्हारी गोद में देखता हूँ तो एक संतोष सा मिलता है।''

वसुधा बड़ी तन्यमता से डॉ. वर्धन की बातें सुन रही थी तनिक झिझकते हुए बोली, ''आप मुझे चारू की छोटी माँ होने का सौभाग्य क्यूँ नहीं दे देते।''

डॉ. वर्धन को नहीं मालूम था, वसु इतनी बड़ी बात इतनी सहजता से कह देगी। ''लेकिन क्या तुम्हारे माता-पिता इस निर्णय को स्वीकारेंगे। हमारे बीच उम्र का अंतराल है, और मेरा विधुर होना? मैं कभी ऐसा सोच नहीं सकता, मैं स्वार्थी नहीं हूँ वसु।''

''नहीं डॉ. वर्धन स्वार्थी तो मैं हूँ। मैं जान गई हूँ कि आपके साथ मेरा जीवन सुरक्षित और स्नेह सिक्त रहेगा।''

''वसु, तुम्हें पाकर कोई भी पुरुष स्वयं को भाग्यशाली समझेगा। किंतु विवाह का निर्णय मेरे लिए संभव नहीं होगा, यह सच है कि जीवन के जिस मोड़ पर तुम हमें मिली वसु वह मरूस्थल में बारिश की नन्हीं-नन्हीं बूँदों जैसा था। तुम्हारे साथ बाँटे गये क्षण मेरे लिए अलौकिक निधि जैसा है। तुम यहाँ रहे या सात समंदर पार।''

उस रात वसु सो नहीं पाई थी। बार-बार डॉ. वर्धन के कहे वाक्य उसे बेचैन करते। क्यूँ नहीं समझते डॉ. वर्धन, प्रेम में विधुर होना या उम्र की कोई जगह नहीं।

डॉ. वर्धन अपने निर्णय पर अटल रहे।

वसुधा ने माँ को फोन किया। ''माँ मैं अब आपको और परेशान नहीं करूँगी। आप चाहती है न अब मैं शादी कर लूँ तो अब मैं तैयार हूँ।''

माँ ने वसु से कहा ''एक रिश्ता बहुत अच्छा है। लड़का मल्टीनेशनल कंपनी में एम.डी. हैं। ये लोग बनारस के रहने वाले है। ठीक है माँ। अब मैं फोन रखती हूँ।''

शारदा ने यह खुशखबरी पति को सुनाई।

''ठीक है वसु और रीतेश एक दूसरे से मिल लें, समझ लें, फिर बात-आगे बढ़ाई जाए।''

बड़े दिन की छुट्टियों में वसुधा भी इलाहाबाद आ गई। वसुधा और रीतेश ने एक दूसरे से मुलाकात की, सब कुछ साँझा भी किया। इसी दिन शाम को सगाई की रस्म भी पूरी कर दी गई।

रीतेश के पिता ने कहा, ''अगर आपकी सहमति हो तो, फरवरी में शुभ मुहूर्त देखकर विवाह संपन्न कर लें।

''जी हमें कोई आपत्ति नहीं है।''

दोनों परिवार विवाह की तैयारियों में लग गये। 7 फरवरी को वह शुभ दिन भी आ गया। सादगी से विवाह संपन्न हो गया। डॉ. वर्धन भी विवाह में आए। उनकी और रीतेश की अच्छी पहचान हो गई। रीतेश ने उन्हें कनाडा आने का निमंत्रण भी दे दिया। डॉ. वर्धन ने, रीतेश को कनाडा आने की स्वीकृति दे डाली।

वसु ब्याह के कुछ दिन बाद कनाडा आ गई। दिन पखेरू से उड़ते रहे। रीतेश का मृदुल स्वभाव, अपनापन, प्रेम, पतीत्व, और वसुधा के हर सुख:दुख का ख्याल रखने पल, वसुधा के अतीत को हरा देते।

वसुधा जान चुकी थी। रीतेश उसके सर्वस्व है। रीतेश को पाकर वह सचमुच धन्य हुई है। उसके जीवन में किसी दूसरी छवि का स्थान नहीं।

एक दिन डाइनिंग टेबल पर बैठे रीतेश ने कहा, ''वसु, तुम्हें माँ पिता, चारू और डॉ. वर्धन भी याद आते होंगे।''

स्वाभाविक है यह रीतेश, विवाह के बाद हम एक नये तरोताजा जीवन में प्रवेश करते है। पिछली सुखद स्मृतियों को भी साथ रखते हैं। किंतु समय के कुहासे उन्हें धूमिल करते चलते हैं।

''तुम्हारा डॉ. वर्धन के प्रति प्रेमयुक्त श्रद्धा स्वाभाविक रही है। स्त्री की संवेदना उसे किसी आदर्श पुरुष से जोड़ती है। इसमें कुछ भी गलत नहीं है। ऐसा पुरुषों के साथ भी होता है।''

वसु नजरें झुकाए, मौन रही। उसकी आँखों में प्रेम, सम्मान की लहरें, हिलौरें लेने लगी। वह रीतेश के वक्ष से लिपट गई। मन में कहा, ''तुम्हें पाकर मैं धन्य हुई हूँ। मैं धन्य हुई हूँ रीतेश। तुम, तुम्हारा परिवार ही मेरा सर्वस्व है।''

समय निर्बाध चलता रहा। इसी बीच वसुधा गर्भवती हुई। एक नया जीवन चैतन्यता वसु के भीतर आकार ले रही थी।

रीतेश ज्यादातर दौर पर ही रहते। मगर वसु का हाल वे फोन पर हर रोज लेते रहते। उसके खान-पान और दिनचर्या की पूरी जानकारी लेते रहते।

वसुधा रीतेश का कहा मानती। माँ, पापा से भी फोन पर बातें करती रहती। समय अपनी रफ्तार से खिसकता रहा।

वसु ने एक नन्हीं सी बेटी को जन्म दिया। रीतेश बेहद प्रसन्न हुआ, वसुधा मातृत्व सुख से सराबोर थी।

रीतेश ने कहा, ''जानती हो वसु एक नन्हीं गुड़िया की कामना मुझे थी। ईश्वर ने मेरी इच्छा पूरी की है।'' वसुधा और रीतेश नन्हीं नीसा के लालन-पालन में लग गये।

तीखे नाक, नक्श, गुलाबी रंग, आँखें बिल्कुल वसुधा की तरह, कुल मिलाकर वसुधा की कार्बन कापी।

*   *   *   *

देखते-देखते समय पंख पसारे उड़ता रहा। अब नीसा ने सोलह वसंत देख लिए है। उसका मन पढ़ाई में खूब लगता। वसुधा कहती, ''कितना पढ़ती है बेटी? कभी-कभी घूमने भी जाया करो अपनी सहेलियों के साथ।''

''जाऊँगी न माँ, अभी एक्जाम की तैयारी, फिर प्रोजेक्ट पूरा करना है। उसके बाद जैसा आप कहेंगी, माँ।''

नीसा की काली आँखों और घनी बरौनियों का लावण्य देखती रही वसुधा। ''ठीक है बेटे''।

आज कालेज में सेमीनार है, उसे भी अपना पेपर पढ़ना है। नीसा ने अच्छी तैयारी कर ली है। नीसा अपना प्रोजेक्ट पढ़ने उठी तो सबने उसका स्वागत तालियों से किया। नीसा ने प्रोजेक्ट अच्छा बनाया। इसकी तारीफ भी हुई। प्रोग्राम के बाद न्यूयार्क युनिवर्सिटी से आए एक नौजवान ने नीसा को अपना परिचय दिया। उसने नीसा के पेपर में कई खोट बताए। नीसा को अच्छा न लगा। उसने धैर्य रखते हुए कहा, ''ठीक है आप वो सब मुझे बताएँ, ताकि मैं इसे और सुधार लूँ।''

''ऐसी कोई सुधार की बात नहीं है, मगर आपको कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को और जोड़ने की सलाह दूँगा। जिससे एक नई डाइमेनशन के साथ आपका प्रोजेक्ट शानदार हो जाएगा।''

नीसा मुस्कुराई उसने हौले से संस्कार की तरफ हाथ बढ़ाया। नीसा ने संस्कार के हाथों में मजबूत पकड़ का एहसास किया।

''चलो अब हम एक जैसे हैं, क्योंकि हम दोनों ही भारतीय हैं।'' ''सच संस्कार मुझे आपकी यह सोच बहुत अच्छी लगी हम दुनिया के किसी भी कोने में हों। मगर हमारा भारत देश हमेशा याद रहता है। हमें गर्व है कि हम भारतीय है।''

''तो क्या हम दोनों भारतीय अपनी इस नई दोस्ती को सेलीब्रेट करने, एक काफी पीने चलें।''

''ओह श्योर, संस्कार।''

दोनों पास के एक रेस्त्रां में चले गये। बातों का सिलसिला चला तो समय का पता ही नहीं चला, कब नीले आसमान में तारों ने अपना डेरा जमा लिया था।

''अब हमें वापस चलना चाहिए।'' मैं तुम्हें घर तक छोड़ देता हूँ।'' ''नहीं संस्कार मैं चली जाऊँगी, तुम्हारा होटल तो इधर ही है। मैं टैक्सी ले लूँगी।''

संस्कार, नीसा को देखता रहा, जब तक उसकी टैक्सी ओझल नहीं हो गई।

कल शाम 6 बजे संस्कार ने यहीं पर मिलने को कहा है। माँ से पूछूँगी। माँ ने मना कर दिया तो...? इन्हीं विचारों में नीसा सो गई।

माँ से सब बताया नीसा ने। उसका संस्कार से मिलना। उसके प्रोजेक्ट की तारीफ इत्यादि।

माँ ने कहा, '' ठीक है बेटे चली जाना।''

नीसा ठीक छः बजे पहुँच गई। संस्कार सामने खड़े थे।

''तुम्हें इंतजार तो नहीं करना पड़ा?'' ''नहीं नीसा मैं अभी कुछ समय पहले ही आया हूँ।''

नीले परिधान में नीसा बेहद सुंदर लग रही थी। संस्कार अपलक उसे निहारता रहा। उसके मन ने कहा यही तो है भारतीय सौंदर्य।

नीसा और संस्कार रेस्त्रां में प्रवेश कर गये। ढेर सारी बातें और बेहद रोमांचक मेल मिलाप।

संस्कार ने बताया उसे इसी हफ्ते वापस न्यूयार्क जाना होगा।

वसुधा ने गौर किया। नीसा इन दिनों फोन पर देर तक बातें करती है। एक अद्‌भुत लालिमा उसके चेहरे पर खिली रहती है। अवसर पाकर वसुधा ने पूछ ही लिया, ''बेटे क्या संस्कार को तुम पसंद करती हो? और वह भी...?''

नीसा हमेशा माँ को अपनी सहेली भी मानती है। वह माँ से कभी कुछ नहीं छुपाती।

''हाँ माँ हम दोनों ही...।'' वसुधा ने प्रसन्नता से मुस्कुराते हुए कहा, ''मुझे भी तो मिलवाओ संस्कार से। माँ अभी वह न्यूयार्क जा रहा है। अगले माह सेमीनार में फिर आएगा। तब आपसे और पापा से भी मिलने आएगा।''

''ठीक है बेटे।''

वसुधा ने नीसा से संस्कार के बारे में जाना, उसे रीतेश से भी शेयर किया।

''इलाहाबाद में कहाँ रहते हैं संस्कार के पिता?''

सब कुछ ठीक है। दोनों एक दूसरे को पसंद करते हैं तो बात आगे बढ़ाई जाएगी।

समय दबे पाँव आगे बढ़ता रहा। नीसा ने माँ से कहा ''माँ संस्कार कल कनाडा सेमीनार के लिए आ रहे हैं।''

डाइनिंग टेबल पर नाश्ता लग चुका था। चाय की चुस्कियाँ लेते हुए रीतेश बोले, ''माँ, बेटी में क्या खुसुर-फुसुर चल रही है। तुझे भी तो बताओ।''

वसुधा ने सिक्त नयनों से रीतेश को देखा। ''संस्कार कल कनाडा आ रहे हैं, हम उन्हें कल शाम डिनर पर बुला लेते है।'' नीसा लजा गई।

वसुधा ने घर की सफाई की और ड्रांइग रूम को नये ढंग से सजाया। गुलाबों की महक से घर महक उठा।

शाम के सात बज रहे थे। संस्कार नीसा के घर आ चुका था। नीसा ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया। संस्कार ने वसुधा, रीतेश को प्रणाम किया, फिर पाँव छुए।

वसु ने आशीर्वाद देते हुए बैठने का इशारा किया। बातों का सिलसिला चल पड़ा।

''आंटी आप भी तो भारत की हैं। इलाहाबाद और दिल्ली में भी रही है। आप लोगों से मिलने के लिए बेहद उतावला था।''

''आपके पापा कहाँ रहते है और क्या करते हैं?''

''जी अब वह रिटायर हैं। दिल्ली के एक कॉलेज में हिंदी विभाग के हेड रहे हैं।''

स्टार्टर्स की ट्राली आ चुकी थी।

काफी की चुस्की लेते हुए संस्कार ने कहा, ''अंकल मैं नहीं जानता आप मेरे बारे में क्या सोचेंगे? मगर मैं दिल से नीसा को प्रोपोज करता हूँ।''

नीसा ट्राली लिए खड़ी थी। वसु ने देखा, नीसा के कपोलों पर लालिमा पसर आई थी।

''बैठो नीसा।'' नीसा माँ के बगल में सोफे पर बैठ गई।

संस्कार को निहारते हुए रीतेश बोले, ''इसके लिए मुझे आपके पापा से भी संस्तुति लेनी होगी। उन्हें हमारा परिवार और नीसा पसंद है या नहीं? बेटे विवाह मात्र दो व्यक्तियों नहीं बल्कि दो परिवारों के संबंधों पर भी निर्मित होता है।''

''जी अंकल। माँ तो अब इस संसार में हैं नहीं। पापा आपसे मिलेंगे, आप सबकी सहमति के पश्चात ही हमारा निर्णय होगा।''

''शाबाश बेटे।''

''पापा इलाहाबाद में ही मेरे लिए विवाह के लिए कोशिश कर रहे हैं। मैं उनसे कहूँगा, वो यहाँ आ जाएँ। उनको कुछ चेंज भी हो जाएगा, आप लोगों से मुलाकात भी।''

''ठीक है बेटे।''

संस्कार के जाने के बाद वसुधा को जाने क्यूँ चारू की याद हो चली ''कहीं वो डॉ. वर्धन ही तो नहीं? उसने दिल्ली के कॉलेज का भी जिक्र किया था।'' इन्हीं उलझनों में वसुधा को नींद आ गई।

सुबह रीतेश ने ही छेड़ा, ''वसुधा संस्कार ने कहा था, ''पापा चाहते हैं हमारी शादी ब्राह्मण परिवार में हो, मगर हम तो वैश्य परिवार से हैं।'' मगर उसने यह भी तो कहा था ''अंकल आज जाति को कौन ज्यादे महत्व देता है। दो परिवारों का स्तर, संस्कार, शिक्षा और मानसिक लेवल एक सा हो। मैं पापा को मना लूँगा।''

वसु, संस्कार की बातें याद करती रही, ''अंकल माँ के न रहने पर भी पापा ने मेरे पालन पोषण में कमी नहीं की। बेहद संस्कारित, अनुशासित पापा, वो ही मेरे आदर्श हैं। मुझे पूरा विश्वास हैं वो नीसा को भी बहुत पसंद करेंगे, आपसे, आंटी से मिलकर भी बहुत खुश होंगे।''

कुशाग्र बुद्धि रीतेश जैसे समझ चुके थे कि संस्कार डॉ. वर्धन के ही सुपुत्र है।''

फोन बज उठा। रीतेश ने रिसीवर उठाया, ''हैल्लो मैं संस्कार का पापा डॉ. वर्धन मैं आपसे मिलने कनाडा कब आ जाऊँ?''

रीतेश बहुत प्रसन्न हुए। ''जल्दी से जल्दी, मैं बेहद उत्सुक हूँ आपका इंतजार है।''

ठीक हैं। मैं अगले हफ्ते पहुँच रहा हूँ।

डॉ. वर्धन ने जाने की तैयारी कर ली। संस्कार ने पापा को सब कुछ समझा दिया। ''आप आराम से आइए पापा, मैं एयरपोर्ट पर मिलूँगा।''

फ्लाइट में डॉ. वर्धन सोचते रहे। ''यह कैसी लीला है प्रभु की, नीसा वसुधा की बेटी है?''

डॉ. आनंदवर्धन कनाडा एयरपोर्ट पर थे। सामने बेटे को देख प्रसन्न हुए। बेटे को गले लगाते हुए, नयन सजल हो उठे।

''आराम से आए पापा?'' हाँ बेटा परफेक्ट रहा सफर।''

होटल पहुँच कर डॉ. वर्धन ने रीतेश को फोन किया। ''मैं आ गया हूँ रीतेश जी। आज सुबह ही संस्कार भी आ गया है। हम शाम को आपसे मिलने आ रहे हैं।''

''मैं बहुत प्रसन्न हूँ डॉ. वर्धन।''

शाम ने अपने पाँव पसारना शुरू कर दिया। नीले अंबर के चाँदनी की चमक बेहद मनमोहक थी।

वसुधा स्वयं से ही सवाल करती, डॉ. वर्धन का सुपुत्र है संस्कार... शायद...। अगर हाँ तो नीसा भाग्यशाली है हमेशा खुश रहेगी।''

शाम को संस्कार पापा के साथ पोर्टिको में था। रीतेश ने वसु को आवाज दी, ''आरती का थाल लाओ वसु, डॉ. वर्धन अपने सुपुत्र के साथ पधार चुके हैं।''

वसु के भीतर एक अजीबोगरीब सी बेचैनी थी। वह थाल लेकर आगे बढ़ी। डॉ. वर्धन को देख प्रसन्नता के साथ नयनों में श्रद्धाभाव, और नेत्रों में जल था।

आरती हो रही थी, डॉ. वर्धन के होठों पर वही चिर परिचित मुस्कान।

''कैसी हो वसुधा?''

''बहुत अच्छी और खुश भी। मैं नहीं जान पाई थी कि हमारा चारू ही संस्कार है। मैं भाग्यशाली हूँ। हमारी बेटी आपके परिवार में सदैव सुखी रहेगी।

रीतेश मेरे जीवन का सबसे कीमती तोहफा है सर। रीतेश ने मुझे मुस्कान ही नहीं जीने का हुनर भी सिखाया। उनके पतित्व के मैं प्रणाम करती हूँ। हर लड़की को रीतेश जैसा पति मिले। कहते कहते वसुधा की आँखें नम हो गई।

रीतेश ने वसुधा को स्नेह से देखते हुए कहा, ''बेटी को बुलाओ।''

नीसा ने गुलाबी ब्रोकैट की साड़ी पहन रखी थी। शालीनता और सम्मान से ही डॉ. वर्धन के पाँव छुए। डॉ. वर्धन ने अपने पाँवों पर कुछ गरम बूँदों की संवेदना महसूस की।

''उठो बिटिया, मैं और संस्कार दोनों आज धन्य हुए।''

''वसु सबका मुँह मीठा करवाओ।''

रीतेश ने कहा, '' डॉ. वर्धन अगर आप कहें तो इसी हफ्ते इंगेजमेंट करके अगले महीने विवाह, ऐसा हमारे गृह पुरोहित ने कहा है।''

''मैं सहमत हूँ। अब तो मैं यहीं आकर रहूँगा अपनी बहूरानी और बेटे के साथ।'' अब आज्ञा दीजिए।

डॉ. वर्धन जा चुके थे। संतुष्टि, स्नेह, संवेदना और संस्कारों की अपरिमित बेला थी।

रीतेश ने वसुधा को पास खींच कर कहा, ''तुम खुश हो न वसु।''

वसुधा को लगा था, जो उसका खो गया था उसे अचानक वापिस मिल गया, वह पति के वक्ष में खो गई... उसके मुख से निकला, ''हाँ खुश हूँ 'तुम्हारे लिए'...।'' ○○○

अपने होने का एक दिन

जयश्री रॉय

जॉली के कमरे में सब अस्त-व्यस्त। बिस्तर पर बिखरी किताबें, अधखुला लैपटाप, सीडी, गिटार... दीवार पर चीखते-गुर्राते रॉक स्टार के पोस्टर्स! छिदे हुए होंठ-जीभ, बल्लम-भाले से नुकीले बाल, हरे, नीले-पीले रंग में रंगे हुए। हैंगर की तरह कमर की हड्डियों पर लटके फटी-गंदी जींस... सास देखती तो चीख कर बेहोश हो जाती। मनोज अक्सर भुनभुनाते हैं-घर को हिप्पियों का आशियाना बनाकर रख दिया है। जॉली की सारी दादागिरी अपनी माँ के साथ। अपने पचरंगा नाखून चमकाकर चेतावनी देती है-ममा डू नॉट डिस्टर्ब। इट्स माय लाइफ। सबके बीच पंचिंग बैग बनी हुई हूँ, बफर की तरह चौतरफा आघात झेलने को विवश।

सम्पर्क: तीन माड, मायना, शिवोली, गोवा-403517, मो: 9822581137

आँख खुलने के बाद भी देर तक बिस्तर पर पड़ी रही थी। आज उठने की कोई जल्दी नहीं। रविवार है। घर में भी कोई नहीं। मनोज कल ऑफिस के काम से बाहर गए हैं। शाम तक लौटने की बात है। बच्चे स्कूल पिकनिक में। सुबह मुँह अँधेरे निकल कर गए हैं। महरी भी छुट्टी पर।

दीवार से दीवार तक खिंचे खादी सिल्क के भारी पर्दे के पीछे से धूप की कई पतली, उजली लकीरें दिख रही हैं, हल्के अंधकार से भरे बिस्तर पर यहाँ-वहाँ चमकीली तितलियाँ-सी टंकी हैं। पूरे कमरे में एक तांबई उजाला है। गरम, हरारत भरा। कहीं कोई आवाज नहीं, सिवाय दीवार घड़ी की टिक-टिक के। मैं ध्यान से सुनती हूँ इस चुप्पी को। शिराओं में रक्त का प्रवाह जैसे धीरे-धीरे शांत हो आता है। किसी गहरी झील की सतह की तरह खुद को महसूस करती हूँ-ठहरी हुई, अगाध मौन! यह मेरे होने का क्षण है-सिर्फ मेरे होने का-ओने-कोने तक।

व्यस्तता से घिरी सालों हुये, भूल गई थी, मौन की भी एक अपनी आवाज होती है। ठीक जैसे जंगलों में अक्सर गूँजती है-मंद बहती हवा की सर-सर में, पत्तों की धीमी फुसफुसाहट में... अनायास बहुत पहले बिताई जीम कॉर्बेट नेशनल पार्क की एक दुपहरी की याद हो आई थी-किसी कठफोड़वा की निरंतर गूँजती ठक-ठक, स्तब्ध अरण्य में तेज बोलता झींगूर-सब नीरव को और-और गहराता, जीवंत करता हुआ।

सीने पर भींचे तकिये पर अपनी धड़कन महसूस करती हूँ। अजीब लगता है। कोलाहल के जंगल में जैसे खो गई थी। याद नहीं, आखिरी बार कब सुनी थी यह बेतरतीब धक-धक। पहले तो हर बात पर दिल मुँह को आता था। गले में ही अटका रहता था जैसे। परीक्षा का पेपर हो, पत्थर में लिपटा प्रेम पत्र पढ़ना हो... उम्र के पहले चुंबन में तो यह पसलियाँ तोड़ कर जैसे बाहर आ गया था। उस दिन घबराहट में रोई थी, अबोला किया था और फिर महीनों सोच-सोच कर सुर्ख हुई थी। ये मसृण त्वचा वाली किशोर यादें, पर तोलती चिड़िया की भयातुर आँखों जैसी...

सोचते हुए पल में धीरे कदमों सालों पीछे टहल आई थी। एक-एक पड़ाव पर ठहरती-ठिठुरती हुई। वो अपने में होने के

बेफिक्र दिन थे, कटी पतंग से आवारा, उच्छृंखल... चेहरा धोते हुये बाथरूम के आईने में अपना ही चेहरा किसी मुग्ध किशोरी का-सा लगा था। दो-चार पिंपल के गुस्सैल दानों में रंगा मासूम और ताजा। लोग ठीक ही कहते हैं, जॉली मेरी तरह दिखती है। उसकी उम्र में मैं बिल्कुल वैसी ही दिखती थी जंगली बिल्ली जैसे तेवर और घुँघराले वालों वाली बकौल सुनीता मैडम के 'वाइल्ड गर्ल' ओह! पिंपल्स के हौओ के वे दिन। हर सुबह भगवान से प्रार्थना करते हुये उठती थी कि आज किसी नए पिंपल के दर्शन ना हो। किशोर बच्चों के इस घर में वही दृश्य आज भी हर सुबह देखने को मिलता है। जॉली की चीख सुनते ही समझ जाती हूँ, एक नए पिंपल का आविर्भाव हुआ।

बाल्कनी धूप से भरी है। स्ट्राबेरी की लतरों में स्ट्राबेरी आनी शुरू हो गई है। कच्ची हरी गाँठें। देखकर मन पुलक उठा था। बीज खरीदते हुए उम्मीद नहीं थी ये फलेंगे। जॉली के कहने पर खरीद लिया था। वह देखेगी तो पूरे घर में नाचती फिरेगी... फिर यह जासवंती की बोन्साई। टक-टक लाल फूलों से भरा। नहीं, आज थोड़ी स्वार्थी हो जाऊँगी। बच्चों के बारे में नहीं सोचूँगी। जिम्मेदारियों, व्यस्तताओं के बीच झाड़-बुहार कर अपने लिए थोड़ी जगह बनानी पड़ेगी। उनके होने में मैं कहीं नहीं होती। प्राथमिकताओं की कतार में अब तक सबसे आखिरी में खड़ी होती आई हूँ जिस तक पहुँचते-पहुँचते अक्सर सब कुछ खत्म हो जाता है। इसका कभी कोई मलाल भी नहीं था। मगर आज जाने क्यों अपना आप याद आ रहा। एक अरसे बाद खुद के साथ अकेली हूँ। शायद इसलिए।

मेरे साथ-साथ सबने सीख लिया है, मेरी कोई जरूरत नहीं, मुझे कुछ भी चलता है। मगर आज मेरे होने का दिन है। यह अवसर मुझे अनायास मिला है। लॉटरी की तरह। भीतर रह-रह कर चिलक उठती ग्लानि को परे धकेलते हुए खुश होना चाहती हूँ।

खूब मीठी और खुशबुदार गरम चाय की एक प्याली चुस्की ले-लेकर पीना रईसी लगी थी। अपना आप भला लग रहा-सिल्क का सफेद गाउन, सीने पर बिखरे हुए धूप में शहदिया दिख रहे बाल। यह हमेशा पोनी में खींच कर बँधे रहते हैं। सुबह के नाश्ते, स्कूल, ऑफिस के टीफिन के बीच और किसी बात के लिए समय ही कहाँ बचता है। किसी तरह मुँह ही धो लिए तो गनीमत। नीचे शुक्ल जी का माली लान में पानी दे रहा। तेज फुहार में इंद्रधनुष खिला है। एक गौरेया उसमें पंख झटक-झटक कर नहा रही है, तुलसी चौरा झड़े पारिजात से सफेद हो गया है। सुबहें ऐसी भी होती हैं-अलस, मंथर, शांत... सालों से यह कुरूक्षेत्र का मैदान बनी रहती है, आवाज की चलती तलवार से अनवरत गूँजती हुई।

मैंने खुद से पूछा था, रूप, आज नाश्ते में क्या खाना पसंद करोगी? फिर खूब सोच-सोचकर तय किया था और मन लगाकर अपने लिए नाश्ता बनाया था-स्टफ्ड मशरूम ऑमलेट, चीज, सेंडविच, जूस। बाल्कनी की मीठी धूप में बैठ आराम से खाया था। जाने कब से नाश्ता नहीं किया इस तरह। सुबह की दवाई के लिए किसी तरह एक केला या टोस्ट जल्दी-जल्दी निगल लेती हूँ।

रविवार मेरे लिए कोई छुट्टी का दिन नहीं बल्कि एक अतिरिक्त व्यस्तता का दिन होता है। सब घर में होते हैं। आराम के मूड में। उस दिन सबको अपने अधूरे अरमान पूरे करने होते हैं-कब से चिकन करी नहीं खायी, मलाई कोफ्ता नहीं बना। सुबह से फरमाइशों की झड़ी लगनी शुरू हो जाती है-रूप, आज आलू पराठा, मम्मा आज धोसा, नहीं उतप्पम। ऊँह मुझे आलू-पूरी... नाश्ते के बाद दोपहर का खाना, बकौल जॉली के सनडे ब्रंच। फिर रात का खाना, मशीन में हफ्ते भर के कपड़े धुलना-आदि, इत्यादि...।

दिन कैसे बीत जाता है पता ही नहीं चलता। ये सनडे आया और पलक झपकते फुर्र से गया। रात होते-होते फिर सोमवार का टेंशन शुरू। पाँच बजे का अलार्म लगाकर बिस्तर पर गिरते ही नींद के अंधे कुएँ में धंस जाती हूँ। बगल में मुँह बनाए लेटे मनोज का ध्यान ही नहीं रहता।

नाश्ता कर लता के पुराने गीत लगा कर पूरे घर में निरुद्देश्य सी कई चक्कर लगाती हूँ। सब कुछ सजा, साफ-सुथरा, अपनी जगह में व्यवस्थित। किसी डॉल हाउस की तरह। मनोज को हमेशा ऐसा ही घर चाहिए। यह आदत उस कॉलेज की प्रिंसिपल अपनी माँ से मिली है। इस मामले में वे आर्मी वालों की तरह अनुशासन प्रिय थी। उनके रहते मैं बरसों आतंक में जीती रही हूँ। उँगली से छूकर हर सतह पर धूल खोजती थी। टेबल पर सजे गुलदान से लेकर बाथरूम में रखे टावल तक सब अपनी जगह करीने से सजे होने चाहिए। मेरा दम घुटता था। कहीं घर जैसी निश्चिंतता नहीं, बेफिक्री नहीं। एक ठंडा, औपचारिक माहौल।

सोचते हुए मैं टेबल पर पैर चढ़ा कर सुबह का अखबार पढ़ती हूँ। आसपास जूस का गिलास, ऐशट्रे, पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी हैं। डायनिंग टेबल पर नाश्ते के जूठे प्लेट... जाने क्या अच्छा लग रहा है। ठीक जैसे कॉलेज के दिनों में क्लास बंक करके

लगता था। कैंपस के पिछले गेट से चुपके-चुपके निकल कर हम बाँध टूटी नदी-सी दौड़ते थे। तब वही विद्रोह था हमारा, आज वाली 'आजादी-आजादी'।

आँख के कोने से दीवार पर टँगी सास के सुनहरे फ्रेम में जड़ी तस्वीर की तरफ देखते हुए मैं किसी शरारती बच्चे की तरह अपनी मुस्कराहट दबाती हूँ। आज मुझे कहने का मन कर रहा-आई एम माय फेवरिट। इतने दिन कहाँ रही तू? खुद से पूछती हूँ। सास तस्वीर की काँच से मुझे गरम आँखों से घूर रहीं। मगर मैं देख कर भी अनदेखा कर देती हूँ।

जॉली के कमरे में सब अस्त-व्यस्त। बिस्तर पर बिखरी किताबें, अधखुला लैपटाप, सीडी, गिटार... दीवार पर चीखते-गुर्राते रॉक स्टार के पोस्टर्स! छिदे हुए होंठ-जीभ, बल्लम-भाले से नुकीले बाल, हरे, नीले-पीले रंग में रंगे हुए। हैंगर की तरह कमर की हड्डियों पर लटके फटी-गंदी जींस... सास देखती तो चीख कर बेहोश हो जाती। मनोज अक्सर भुनभुनाते हैं-घर को हिप्पियों का आशियाना बनाकर रख दिया है। जॉली की सारी दादागिरी अपनी माँ के साथ। अपने पचरंगा नाखून चमकाकर चेतावनी देती है-ममा डू नॉट डिस्टर्ब। इट्स माय लाइफ। सबके बीच पंचिंग बैग बनी हुई हूँ, बफर की तरह चौतरफा आघात झेलने को विवश।

अपनी सहेलियों के साथ जब उसे पिलो फाइट करते हुए देखती हूँ, जी चाहता है एक तकिया उठा कर मैं भी पिल पड़ूँ, मगर मुझे देखते ही कमरे में सन्नाटा छा जाता है। सहेलियाँ सिमट-सिकुड़ कर बैठ जाती है, जॉली का मुँह बन जाता है-ममा तुम बार-बार झाँकने क्यों चली आती हो। बैड मैनर्स... कहना चाह कर भी कह नहीं पाती, मुझे भी तुम लोगों के बीच होना है। हवा बनना है। पतंग बनना है। लहराते समुद्र के बीच निर्जन टापू-सी हूँ, जल-आकाश की संधि पर ठहरी अपने एकांत में युगों से कैद...

अपने कमरे में आकर मोबाइल चेक करती हूँ। व्हात्सएप्प, मेसेंजर, ईमेल... कही कुछ नहीं। ईमेल में ऑनलाइन शॉप्स, क्रेडिट कार्ड्स, लोन देने वालों की भरमार। लगता है पूरी दुनिया के पास मेरी आईडी है। बस किसी मित्र, आत्मीय के पास नहीं। मैं भी भला किसको याद करती हूँ। व्हात्सएप के गिने-चुने मैसेज कई-कई बार पढ़ती हूँ। अधिकतर तीज-त्योहार के फोर्वर्डेड मैसेज। आजकल नित नये फीचर्स जुड़ रहे-वीडियो कॉल, जीफ्स, ईमोजी... दिल की हर बात जताने के लिए कोट, तस्वीरें, संगीत, ध्वनि... खुद सर खपाने की जरूरत ही नहीं। सब रेडीमेड।

काश यह बस पहले भी होता। जीवन का पहला प्रेम पत्र लिखने के लिए किस तरह दिनों सर फोड़ा था, किस-किस की चिरौरी, मिन्नतें की थी... अंत में माँ के बक्से से उनके गौने से पहले पिताजी को लिखे कुछ पत्र चुराये थे और पकड़ी जाने पर कस के पिटी थी। फोन की तरफ देखते हुए आकाश की याद आई थी। साथ ही पहले प्यार की नीम, शहद अनुभूतियाँ। उन दिनों सच में उसे देख भीतर जलतरंग बजा करता था। लगता था, जीवन फूलों की क्यारी है। एक बुखार-सा चढ़ा रहता था देह-मन में। किसी दाना चुगती चिड़िया की तरह हर पल डर में जीना... कोई देख लेगा, कोई सुन लेगा। अपना चेहरा उसके नाम का इश्तिहार-सा लगता था। काश उसका कोई फोन नंबर होता मेरे पास। आज की तरह विडियो चैट की सुविधा...

डायरी देखकर सुजाता का फोन नंबर खोज लाती हूँ। पाँच साल पहले भांजी की शादी में मिली थी। देखकर पहचान नहीं पाई थी। फूलकर ढोल। बनारसी, गहनों में लदी। स्कूल के दिनों में एकदम सींकिया हुआ करती थी। कई बार कोशिश करने के बाद फोन पर उसकी ऊबी-खीजी-सी आवाज आई थी, एकदम निरूत्साह। पहचान कर भी नहीं पहचाना हो जैसे। दो-चार बातें कर मैंने ही फोन रख दिया था। इसके बाद देर तक एक प्रच्छन्न अवसाद छाया रहा था मेरे चारों ओर। आज जब मुझे वक्त मिला है, किसी के पास फुर्सत नहीं... कितना टेकेन फॉर ग्रांटेड ले लेते हैं हम जीवन को। जब चाहेंगे हाथ बढ़ाएँगे और यह हँसता-मुस्कराता मिल जाएगा। वैसा का वैसा। मगर यह तो मेले की भीड़ में हाथ छुड़ा कर खो गया शरारती। बच्चा निकला...

मनोज का फोन आ रहा है, चमकते स्क्रीन पर 'हबी कॉलिंग' देखती हूँ मगर उठाती नहीं। जब बाद में पूछा जाएगा फोन क्यों नहीं उठाया, नहीं जानती क्या जवाब दूँगी। मगर फिलहाल ऐसा कुछ नहीं करना चाहती जो नहीं करना चाहती। बिस्तर के सामने दूसरी दीवार से लगा ड्रेसिंग टेबल है। उसमें खुद को देखती हूँ। दिन के उजाले में। एकदम साफ। धीरे से उठकर सामने जा खड़ी होती हूँ। जाने कितने दिनों बाद खुद को देख रही इस तरह फुर्सत में। रोज भागते-दौड़ते बालों में कंघी फिराते या बिंदी लगाते एक उड़ती-सी नजर डाल लिया करती हूँ, बस।

उँगलियों के पूरे, अधटूटे नाखून, हल्दी से पीली उड़ी नेल पोलिश... मैं दोनों हाथ सामने कर अपनी उँगलियाँ देखती हूँ-पोरों पर सब्जी काटते हुए पड़े चाकू के निशान, भौंहों पर उगे बाल... एक मध्यम वर्गीय हाउस वाइफ का चेहरा। खुद को देखने की उत्सुकता बढ़ती जाती है। खिड़की के पर्दे खींच

अपना गाउन उतारती हूँ, पहले संकोच से फिर झटके से। जमीन पर ढेर हुए पड़े गाउन के बीच खड़ी खुद को सीधी नजर से देखने की कोशिश करती हूँ–उतरती नदी–सी देह, शिथिल और फैलती हुई–भारी तल पेट और जांघों की संधि पर कई सफेद लकीरें, मातृत्व की निशानी। कमर पर चर्बी के घेरे, स्थूल बाँह की गोलाइयाँ...

पहले संकोच से जींस नहीं पहनती थी। कमर पर ढीली होती थी। सबके सामने शर्म आती थी। एकदम हाड़–मांस एक हुआ शरीर था। लोग ताने कसते थे, क्यों भई। तुम्हारे घर बेटियों को खिलाया–पिलाया नहीं जाता क्या? जाने कब यह चर्बियों का पहाड़ देह पर आ जमा। मनोज की नजर से खुद को देखने की कोशिश करती हूँ, ग्लानि आ घेरती है। कल से मॉर्निंग वॉक पर निकलूँगी, तेल–घी भी कम करना पड़ेगा। योग शुरू करती हूँ। मनोज की शिकायत पर हमेश उसी पर झल्ला उठती थी कि फिगर करीना कपूर की नहीं होगी तो क्या उनकी तरह रात–दिन रसोई में सीझने–पकने वाली मीडिल क्लास औरतों की होगी।

जॉली के कमरे में जाकर उसकी जगह–जगह से फटी फेडेड जींस उठा लाती हूँ मगर वे घुटनों से ऊपर नहीं चढ़तीं। थोड़ी देर खींचा–तानी कर ही थक जाती हूँ और उसे फेंक जॉली की फ्लोरीसन लाल लिपस्टिक उठाकर अपने होंठ गाढ़े रंगती हूँ फिर होंठों का पाउट बना तरह–तरह की मुख मुद्रा बनाते हुए खुद को आईने में हर कोने से देखती हूँ। देखते हुए अचानक जोर से रुलाई फूटती है और बिस्तर पर औंधे मुँह गिर कर मैं देर तक रोती हूँ। जाने क्यों? मुझे तो कोई दुख नहीं था। सब कुछ तो था मेरे पास... फिर इस भरे–पूरे घर में खाली बर्तन–सा क्या बज उठा है आज।

ड्राअर से अल्बम निकाल लाई थी–यह मैं हूँ, लंबी–छरहरी। लोग मुझे साधना कहते थे। वैसे ही माथे पर करीने से सजे लॉक्स और तराशे हुए होंठ। देखते हुए कुछ बेहतर महसूस हुआ था–यह मैं हूँ। सबको याद होगा...

कहीं पढ़ा था, अच्छा फील करने के लिए विंडो शॉपिंग करनी चाहिए, अपने गहने निकाल कर देखना चाहिए, किसी को कुछ प्रेजेंट करना चाहिए और आईने के सामने खड़ी होकर बार–बार खुद से कहना चाहिए–मैं खूबसूरत हूँ... आईने के सामने खड़ी होकर कुछ देर खुद को चुपचाप देखने के बाद मैं अलमारी से अपने गहनों का डब्बा निकाल लाई थी और उन्हें बिस्तर पर फैलाकर एक–एक कर देखती रही थी–जड़ाऊ हार, हीरे की अंगूठियाँ, कंगन...

ड्रेसिंग टेबल पर मेरी शादी की तस्वीर रखी है–इन्हीं गहनों से सजी, अपने भारी जोड़े में लदी–फँदी दुबली–पतली, मरियल–सी। याद है, शादी के दिन बार–बार बाथरूम में छिपकर रोती रही थी। हमारा प्रेम प्रकरण ताऊजी के दो झन्नाटेदार थप्पड़ से ही खत्म हो गया था। आकाश को भी पीट–पाट कर सबने समझा दिया था, एक गोत्र के होने से हम दोनों एक दूसरे के भाई–बहन लगते हैं। शादी के दिन वह बारातियों को भोज में कलाकंद परोस रहा था और मैं बाथरूम में फिनाइल की बोतल लेकर फिनाइल पीने की हिम्मत जुटा रही थी जो आखिर तक जुट नहीं पाई थी। किसी फिल्मी नायिका की तरह घर से भाग जाने की अभिलाषा मेरे मन में ही रह गई थी। बाद में जब मायके जाती थी, जॉली, बंटी, आकाश को मामा कहकर संबोधित करते थे और मुझे कुछ अटपटा नहीं लगता था।

अल्बम, गहनों के बीच बैठे–बैठे जाने कब दिन ढल गया था। घड़ी पर नजर पड़ते ही मैं चौंकी थी। छह बज गए। बच्चों को तो अब तक आ जाना था। और यह मनोज... एक बार फोन करके सारा दिन गायब। इन्हें तो बस घर से बाहर रहने का एक मौका चाहिए।

मैं उठकर खिड़की पर आ खड़ी हुई थी। आज दिन को तो कुछ बनाया नहीं। रात को खाना बनाना पड़ेगा। बच्चे आते ही होंगे। आते ही खाना मागेंगे। मैंने मनोज को फोन लगाया था। दूसरी तरफ देर तक घंटी बजती रही थी मगर मनोज ने फोन नहीं उठाया था। झल्लाहट के साथ मन में आशंका उठी थी–मनोज ऐसा तो कभी नहीं करता। फिर...? सोचते हुए फोन के सक्रीन पर जॉली का मैसेज चमका था–मॉम! कमिंग होम। कीप द फूड रेडी। वी आर हंगरी लाइक उल्वस।

मैसेज देखते ही जैसे मेरी जान में जान आ गई थी। तेजी से उठकर किचन आ गई थी। जल्दी से कुछ बनाना होगा। फिर रात का खाना। ड्रांइग रूम भी ठीक करना पड़ेगा। सब बिखरा पड़ा है। मनोज देखेंगे तो... सास की तस्वीर के आगे दीया भी लगाना है। उस पर कल की बासी माला पड़ी हुई है। फिर कल सुबह की तैयारी, मनोज की ढेर सारी शर्ट्स पड़ी है, इस्त्री करने के लिए कह गए थे... सोचते हुए जाने कब मैं प्राथमिकताओं की कतार के अंत में अपने ही अंजाने एक बार फिर आदतन आ खड़ी हुई थी। मेरे आगे सब थे। मेरे होने का दिन खत्म हो गया था।

हथेलियों में कंपन

तेजेंद्र शर्मा

"मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था... मृत्यु सीधी और सरल क्यों नहीं हो सकती? क्यों कुछ लोग मृत्यु में भी ऑनर्स और पीएच.डी. कर लेते हैं। क्यों हम मरने के बाद उनके द्वारा लूटे जाने पर भी उफ़ नहीं करते? क्यों हर मज़हब का इन्सान मौत के सामने इतना बेचारा हो जाता है? क्यों हम मृतक की आत्मा की शान्ति के लिये बेवक़ूफ़ियाँ करते चले जाते हैं? हम तो महानगरों में रहने के कारण पूरी तरह से धार्मिक नहीं रहे... मगर जो छोटे शहरों, कस्बों या गाँव में रहते हैं... उनका शोषण ये धर्म के ठेकेदार किस तरह करते होंगे।"

सम्पर्क: 33ए, स्पेंसर रोड़, हैरोव एंड वेल्डस्टोन, मिडिलसेक्स, हजटन, यू.के., ई-मेल: kathauk@gmail.com

नरेन के लिये यह पहली हरिद्वार यात्रा नहीं है...

वह इससे पहले बहुत बार हरिद्वार जा चुका है। उसके रिश्तेदारों में शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जिसके परिवार के किसी न किसी सदस्य की अस्थियाँ उसने वहाँ जा कर गंगा में न बहाई हों। वह शिव है... हर परिवार की मृत्यु का ज़हर वह स्वयं पी जाता है।

वैसे मुझे उनके बारे में आदर से बात करनी चाहिये क्योंकि वे मेरे मौसा हैं किन्तु नरेन्द्र नाथ त्रिखा लिखने में वह बात नहीं आती जो नरेन में है। पूरा नाम लिखने से आदर भाव तो आ जाएगा मगर चरित्र पूरे का पूरा बदल जाएगा। मौत का जो ज़हर उन्होंने अपने भीतर कहीं छिपा कर रखा हुआ है, उस ज़हर का आभास नरेन नाम से अधिक हो सकता है।

मृत्यु क्या केवल एक शारीरिक स्थिति है? क्या कर्मकाण्ड जीवन और मृत्यु के साथ जुड़ा रहना चाहिये? क्या किसी की मृत्यु पर रोना आवश्यक है?... मुझ जैसे अज्ञानी लोग इन सवालों से जूझते रहते हैं। नरेन को इन सवालों से कुछ लेना देना नहीं है। उसका बचपन जीन्द नाम के छोटे शहर में बीता है। उसके पिता घर में स्याही बनाने का काम करते थे और अपने शहर में सप्लाई करके किसी तरह घर का खर्चा चलाते थे। आर्य-समाजी थे पिता। घर में हर रविवार को हवन होता था। पूरे घर में हवन-सामग्री और देसी घी की खुशबू हमेशा महसूस की जा सकती थी। उसी हवन-सामग्री और देसी घी से बना था नरेन की व्यक्तित्व।

सादगी की इन्तेहा यह कि जो कपड़े उनकी पत्नी खरीद देती, बस पहन लेते। जब विवाह हुआ था तो भारतीय रेल में फ़ायरमैन की नौकरी करते थे। फ़ायरमैन आजकल नहीं होते क्योंकि रेलगाड़ी अब भाप के इंजिन से नहीं चलती। फ़ायरमैन अब केवल हमारी यादों का हिस्सा हैं। वह रेलगाड़ी चलाते नहीं थे उनका काम होता था भाप इंजिन में कोयला भट्टी में झोंकना। फिर उस कोयले से पानी गरम होता और भाप बनती जिससे इंजिन चलता और रेलगाड़ी को खींचता।

मुझे भी मौका मिला था नरेन मौसा के साथ उनके इंजिन में बैठकर दिल्ली से जीन्द जाने का। उनके ड्राइवर का नाम शिवनाथ था... गहरी दोस्ती थी दोनों में। दो महीने पहले उसकी अस्थियाँ भी हरिद्वार पहुँचाने गये थे। शिवनाथ का शरीर पाँच फूट ग्यारह इंच से सिकुड़ कर शायद पाँच फुट का ही रह गया था।... कैंसर... शरीर को खोखला कर के, उसे निचोड़ कर बस एक कमण्डल भर अस्थियों में परिवर्तित कर गया था।

मुझे याद है कैसे नरेन मौसा जब इंजिन की भट्ठी में कोयला डाल रहे थे तो उनके गोरे बदन पर कोयलों की कालिख भी उन्हें स्मार्ट-लुक दे रही थी। नरेन मौसा उन दिनों बिल्कुल फ़िल्म कलाकार धर्मेन्द्र जैसे दिखा करते थे। दिसम्बर की छुट्टियाँ, जब क्रिसमिस मनाने लोग दिल्ली और मुंबई जाते थे, मैं ऐसे समय में जीन्द जा रहा था। छठी कक्षा में भी मैं अंग्रेज़ी अच्छी बोल लेता था... नरेन मौसा रास्ते भर मुझ से अंग्रेज़ी में बात करते रहे... शायद ड्राइवर शिवनाथ अंकल पर मेरी अंग्रेज़ी की धौंस जमा रहे थे। इंजिन की आग की गर्मी दिसम्बर की सर्दी को हमसे दूर रखे हुए थे। इंजिन का माहौल भी कुछ रहस्यमयी सा था... गाड़ी बहादुरगढ़ और रोहतक होती हुई जीन्द जा रही थी। मुझे इंजिन यात्रा का वह रोमांच जीवन भर याद रहेगा... मैं सारी रात जागता रहा... बाल मन की उत्सुकताएँ... भला कैसे आसानी से शान्त हो पाती...

नरेन मौसा का विवाह मुझे हमेशा उन पर अत्याचार जैसा लगा। नरेन मौसा के मुकाबले हमारी विमल मौसी सादा और घरेलू ही मानी जाएगी। कहने को तो दोनों ही दसवीं पास थे... उस जमाने के पंजाब मैट्रिक... सुनकर बहुत अच्छा लगता था फलां फलां ने पंजाब मैट्रिक पास कर ली है। फिर कुछ लोग प्रेप करते थे, फिर इन्टर और बाद में बी.ए. ... मगर न तो नरेन मौसा ने ही बी.ए. की और न ही विमला मौसी ने। मगर नरेन मौसा ने हमारी मौसी को हमेशा बहुत आदर सत्कार के साथ रखा... पूरे परिवार में उनकी पूरी इज्जत थी।

नरेन मौसा को अब तो हरिद्वार का रास्ता भी अच्छी तरह याद हो गया है। दिल्ली से गाजियाबाद, मेरठ, मुज़फ़्फ़र नगर, रूड़की और हरिद्वार।... करीब पाँच घंटे का रास्ता पड़ता है कार से। वैसे पानीपत और सहारनपुर के रास्ते भी हरिद्वार जाया जा सकता है, मगर नरेन मौसा को मेरठ और मुज़फ़्फ़र नगर वाला रास्ता ही पसन्द है।

अपने पिता, चाचा, मामा, दो साढुओं, एक साली, एक साले, अपने समधी और कई दोस्तों की अस्थियाँ हरिद्वार पहुँचा चुके हैं। आजकल वे हमारे कुनबे के वरिष्ठ नागरिक हैं। उन्हें परिवार के बारे में पूरी जानकारी भी है कि मेरी माँ झंग (अब पाकिस्तान में) में कहाँ रहती थीं, या फिर मेरे पिता जी पाकिस्तान में कहाँ रहते थे। भारत में भी अम्बाला, करनाल, फ़िरोजपुर, दिल्ली, मुंबई – सभी जगह के रिश्तेदारों के साथ उनका संपर्क रहता है। वे सबके हैं... सब सवाल एक ही है क्या कोई उनका भी है।

''काका, असी पंजाबी ब्राहम्ण होन्दे हाँ।... यानि पंज जातां... तुसी मोहला हो... ते मैं त्रिखा... ते तुहाडे माता जी होए झिंगन... यानि कि त्रिखा, मोहला, झिंगन, जेतली ते कुमड़िया... बस ऐ पंज जातां होन्दियां ने। साढा इलाका वेस्ट पंजाब है ते असी सारस्वत ब्राहम्ण होन्दे हाँ। गोत्र साढे सारियाँ दे अलग अलग ने। साढा गोत्र है वशिष्ट, ते तुहाडी माता जी दा है भारद्वाज, पर तुहाड़ा गोत्र बड़ा मुश्किल वाला है... बड़ा घट सुणन विच आन्दा है... तुसी लोग सोमस्थम गोत्र वाले हो।... बहुत पुराणे ऋषि सी सोमस्थम... कहन्दे ने कि वेदाँ दे हिसाब नाल हवन शुरू करन वाले ऋषि सी।'' यह मेरी नरेन मौसा के साथ पहली हरिद्वार यात्रा थी।

नरेन मौसा जानते हैं कि मुझे पंजाबी ठीक से समझ नहीं आती... अधिकांश समय मुंबई में बीता है... अंग्रेज़ी में पढ़ाई, रहने को मुंबई शहर... थोड़ी बहुत मराठी तो समझ भी लेता था, बोल भी लेता था मगर पंजाबी भला किस किस के साथ बोलता। फिर भी मुझ से हमेशा पंजाबी में ही बात करते हैं। वैसे मेरी माँ भी मुझसे पंजाबी में ही बात करती हैं... माँ की पंजाबी के एक एक शब्द का अर्थ समझ जाता हूँ।

भाषा किस तरह का जुड़ाव पैदा कर देती है। मराठी का काम-चलाऊ ज्ञान होने के बावजूद जब आसपास कोई मराठी बोलता है तो लगता है कि मेरा कोई अपना है। ठीक उसी तरह पंजाबी में पैदल होने के बावजूद जब कोई पंजाबी बोलता है तो भी अपना ही लगता है। मगर घर से इतनी दूर विदेश में बसने के बाद तो किसी भी भारतीय भाषा बोलने वाला अपना लगता है।

हरिद्वार के पण्डों की भाषा मुझे बिल्कुल समझ नहीं आई थी। नरेन मौसा ने मुझे रास्ते में ही समझा दिया था, ''काका, तूं

उत्थे कुझ बोलणा नहीं। बस चुप करके देखदा रहीं। मैनूं गल करण दईं।

नरेन मौसा इन पण्डों को अच्छी तरह समझते थे। उन्हें इन सबसे बातचीत करने का एक लम्बा अनुभव है। यह सोचने पर मजबूर हो जाता हूँ कि इतने धार्मिक होने के बावजूद नरेन मौसा कर्मकाण्ड में पूरा विश्वास नहीं रख पाते। दरअसल आर्यसमाजी होने की वजह से भी सोच कुछ अलग थी...

हरिद्वार पहुँचते ही मेरे मन में विचार आया कि सुबह तक प्रतीक्षा करते हैं और सुबह अपने पारिवारिक पण्डे को ढूँढ कर उसी ने श्रद्धापूर्वक सारी विधि करवा ली जाए। मगर नरेन मौसा भला कहाँ मानने वाले थे, ''ओय, तैनू नहीं पता। असी कोई सीधा सादा पण्डा ढूँढ के उससे अस्थि विसर्जन करवा लेंगे।... बस सवेरे तुम्हारे परिवार के पण्डे के पास जा कर मौत दर्ज करवा लेंगे। उसके पास यही ज़रूरी काम है।

बाऊजी की मृत्यु के झटके से भला कहां उबरा था। नरेन मौसा की एक एक बात मेरे लिये फ़रमान था। मुझे आशा थी कि किसी ऐसी जगह जाकर अस्थि विसर्जन करेंगे जैसा कि गंगा नदी को चित्रों में देखा है। मगर नहीं... एक पण्डा मिला जिसने कहा कि यहाँ ऊपर जो धारा बहती है यहाँ बेहतर अस्थि विसर्जन होता है। नरेन मौसा ने हामी भर दी।

मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था... मृत्यु सीधी और सरल क्यों नहीं हो सकती? क्यों कुछ लोग मृत्यु में भी ऑनर्स और पीएच.डी. कर लेते हैं। क्यों हम मरने के बाद उनके द्वारा लूटे जाने पर भी उफ़ नहीं करते? क्यों हर मज़हब का इन्सान मौत के सामने इतना बेचारा हो जाता है? क्यों हम मृतक की आत्मा की शान्ति के लिये बेवक़ूफ़ियाँ करते चले जाते हैं? हम तो महानगरों में रहने के कारण पूरी तरह से धार्मिक नहीं रहे... मगर जो छोटे शहरों, कस्बों या गाँव में रहते हैं... उनका शोषण ये धर्म के ठेकेदार किस तरह करते होंगे।

मैंने एक बार फिर शंका जताई कि हमें अपने पुराखों वाले पण्डे को सुबह ढूँढना चाहिये। इस पर पण्डे को लगा कि शिकार हाथ से गया। बिना वक्त गँवाए बोला, ''जी, अपना नाम बताइये, मरने वाले का नाम बताइये... पूरा नाम... आपसे क्या रिश्ता था... कहाँ के रहने वाले थे... उनके पिता का नाम... गोत्र क्या था...'' पूरी तरह से यांत्रिक तरीके से बातचीत हो रही थी। पण्डा सही गलत संस्कृत में श्लोक बोले जा रहा था और मुझे अपने पीछे दोहराने के लिये कह रहा था। जितना मुझे समझ आ रहा था उतना मैं दोहराते जा रहा था।

इतने में उसे पीछे से एक आवाज आई। लगा कि कोई और नई आसामी फँसन वाली है। पण्डे ने कहा, ''बस थोड़ी देर के लिये रोक के रख। अभी आता हूँ।''

मुझे अपने बाऊजी की बातें याद आ रही थीं... बाऊजी अब केवल अस्थियाँ बन चुके थे। मेरे बाऊजी अपने ज़माने के मॉडर्न आदमी थे। उनका एक अंग्रेज़ औरत से इश्क था। दोनों शादी करना चाहते थे। मगर दादा जी के दबाव, परिवार की कटती नाक, और बिरादरी का डर... सब मेरे बाऊजी के प्रेम पर हॉवी हो गये... बाऊजी अपनी मर्जी का विवाह नहीं कर पाए। और भारत का बँटवारा हो गया... स्वतंत्र भारत में जिस औरत के साथ दादा जी ने बाँध दिया... बँध गये।

अगर बाऊजी ने उस अंग्रेज औरत से विवाह कर लिया होता तो क्या मेरा कोई वजूद होता? फिर तो बाऊजी का बेटा एंग्लो इंडियन होता... क्या वह मेरे बाऊजी की अस्थियाँ ले कर हरिद्वार आता। वैसे कई बार यह भी सोचा कि अचानक एक दिन एक गोरा सा लड़का आकर सामने खड़ा हो जाए और मेरे बाऊजी से कहे कि मैं तो आपका पुत्र हूँ।... मैं तो पल भर में उसे बाँहों में भर कर अपना भाई बना लेता... मगर माँ...! उन पर क्या गुज़रती...? लेकिन मेरा विवाह बाऊजी और माँ ने मेरी मर्ज़ी के हिसाब से कर दिया था। एक बार भी नहीं कहा कि पूनम के माँ बाप की जाति हमसे नीची है या फिर बिरादरी का रोना... कुछ भी नहीं हुआ... बस मैंने बताया और बाऊजी और माँ जा कर पूनम के माता पिता से बात कर आए।

पण्डे ने मेरी सोच को झटका दिया, ''जी जजमान, आपने अभी ग्यारह पण्डितों को भोजन करवाने का संकल्प लिया है। आप उसके पाँच सौ पचास रुपये यहाँ रख दीजिये।''

''मगर, मैंने कब संकल्प लिया?''

''अरे अभी आप मेरे श्लोकों के पीछे दोहरा रहे थे न।''

मौसा जी का एक नया ही रूप मेरे सामने उभर कर आया, ''देख भाई जवान, हमारे काके ने ग्यारह नहीं इक्कीस ब्राहम्णों को खाणा खिलाणे का संकल्प लिता है। मगर वो खाणा यहाँ

नहीं खवाएगा। ये खाणा खिलावेगा मुम्बई में, जहाँ ये रहता है। आप इक्कीस ब्राहम्ण ले कर इनके घर पहुँच जाओ, बस जाके छक के भोजन कर आवो।''

पण्डा बगलें झाँक रहा था। ''ऐसे थोड़े ही होता है सेठ'' अचानक हम जजमान से सेठ बन गये थे।

''ओए गल्ल सुण जवान, तूं साढे नाल मजाक ना कर, ते हम तेरे नाल मजाक नहीं करेंगे। लै पकड़ इक सौ इक्यावन रुपय्ये. .. आप वी खुश रह ते सानू वी खुश रहण दे।'' मौसा जी का अनुभव उनके शब्दों में साफ़ सुनाई दे रहा था।

अंतिम संस्कार में भी दुकानदारी... फिर वही पुरानी कहावत याद आती है... कहावतें पुरानी हो कर भी अपना अर्थ नहीं खोती हैं... घोड़ा अगर घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या... शायद इन पण्डों के लिए भी मजबूरी है। महँगाई के साथ साथ घर चलाना है... कोई और जरिया तो है नहीं आमदनी का... जैसे डॉक्टर अपने मरीजों के साथ सहानुभूति नहीं कर सकता ठीक वै ही मरघट और हरिद्वार के पण्डे भी अपने ग्राहकों के साथ रियायत नहीं कर सकते। इनका रिश्ता ही ऐसा है।

रिश्ते कैसे हमें छोड़ छोड़ कर कहीं दूर चले जाते हैं। मगर हम उन्हें केवल हरिद्वार तक पहुँचा पाते हैं... हरिद्वार से हरि तक की यात्रा वे अकेले ही करते हैं... हरिद्वार जब पहली बार रात को देखा तो समझ ही नहीं आया कि जो हम पिक्चरों में देखते हैं वह हरिद्वार कहां है... नरेन मौसा रात को अपने जाने पहचाने गेस्ट हाउस में ले गये। न जाने वहाँ कितनी बार ठहर चुके हैं... रिसेप्शन पर बैठे व्यक्ति ने उन्हें पहचान भी लिया। उसकी आँखों में एक प्रश्न दिखाई दे रहा था, ''अबकी किसे ले आए?''

नरेन मौसा भी देख कर खुश थे कि रिसेप्शनिस्ट उनको पहचानता है, ''देख भाई जवान, हमें एक कमरा चाहिये जिसमें दो बेड हो, साफ सुथरा हो, और बस आज की रात ही रहना है हमको।... और हाँ नाश्ता हम बाहर ही करने वाले हैं... अगर सुबह की चाय मिल जाए तो हमारा काम हो जाएगा।'' मैंने होटल का नाम पढ़ा... हर की पौड़ी!

अब मेरी बारी थी। नरेन मौसा अब मुझे समझाने लगे, ''देखो पुत्तर, रहणे को तो हम फाइव स्टार होटल में भी रह लें। मुझे पता है कि तुझे पैसे की कोई कमी नहीं पर। असी अपणा पैसा सुट्टियों क्यों? रातां दिया नौकरियां कर कर के पैसा कमाया है तूं।''

रात को नीन्द कैसे आती... क्या रात अभी बाकी थी... घड़ी देखी... अब इसे सुबह के दो बज कर पैंतालीस मिनट कहे या फिर या फिर रात के। सुबह सुबह तो नहा धो कर निकलना होगा अपने पण्डे को खोजने।

''काका तूं वेखीं... कोई परेशानी नहीं होंगी... बस असी उत्थे किसी वी पण्डे नूं पुछ लांगे कि साढा पण्डा किथे है, ते मजाल है कि कोई वी साढे नाल झूठ बोल जावे... इन्हां पण्डयां विच आपस विच बड़ी ईमानदारी है। कोई किसे दा जजमान नहीं मारदा। तूं कल वेखीं।''

मौसा जी को शायद थोड़ी परेशानी हो रही थी कि कुछ जवाब नहीं दे रहा था। मैं लगातार सोच रहा था कि बाऊजी को रात को कैसा महसूस हुआ होगा। ऐसा कैसे संभव है कि एक इन्सान रात को सोए और सुबह उठे ही नहीं। नरेन मौसा भी कह रहे थे, ''काका तेरे बाऊजी नूं तां देवतयां वर्गी मौत मिली है। इस तरह नीन्द विच उडारी भर लैणी।... बड़े किस्मत वालिया नूं एहो जही मौत मिलदी है।''

बात करते करते नरेन मौसा के खर्राटे सुनाई देने लगे। उनका जीवन कितना सरल है कितना निश्छल। मेहनती इन्सान हैं, मानवता उनमें कूट कूट कर भरी है। किसी के साथ छल कपट नहीं। मेरे बाऊजी ने ही उनका रिश्ता मेरी मासी से करवाया था। बाऊजी हमेशा कहा करते ''भाई नरेन्दर ने निभाया बहुत सोहणा है... अपणे परवार लई जान देंदा है।''

मेरे शरीर का कुछ ऐसा हाल था कि जागूं तो नींद आए और सोने का प्रयास करूं तो नींद निकट न आए। उस थके हुए शरीर को जब गरम पानी से स्नान करवाया तो महसूस हुआ कि शरीर अभी जीवित है। कमरे में फोन नहीं था। नरेन मौसा मुझसे पहले ही नहा चुके थे। मैंने अभी तक कमरे को ठीक से देखा नहीं था। दो सिंगल बैड जोड कर बिछाए हुए थे। इसीलिये रात को दोनों को अलग-अलग कम्बल मिल गये थे। कम्बलों के नीचे और ऊपर सफ़ेद रंग की चादरें थी। कपड़े टाँगने की एक अल्मारी, एक मेज़ और एक कुर्सी। टी.वी. या रेडियो जैसी कोई चीज नहीं दिखाई दे रही थी। हाँ ऊपर एक

सीलिंग फ़ैन यानि की छत का पंखा जरूर लगा हुआ था। मौसम ऐसा नहीं था कि हमें उस पंखे की आवश्यकता महसूस होती। कमरा साफ़ था... यही वादा नरेन मौसा ने किया भी था कमरा साफ होगा।

नरेन मौसा के आदेशानुसार ट्रे में रखी दो चाय और बिस्कुट भी आ पहुँचे। मौसा चाय को सुड़क कर पीते हैं। कहते हैं कि जब तक चाय को सुड़का ना जाए तो चाय का स्वाद ही नहीं पता चलता। चाय पीते-पीते ही एक सवाल दाग दिया, ''मौसा जी, अब अस्थि विसर्जन हो ही गया है तो फिर हम अपने पण्डे से मिलने क्यों जा रहे हैं।''

''काका जी, बात ये है कि हमने जाके आपके पण्डे के पास बाऊजी की मौत रजिस्टर करवानी है। ये पण्डे दुनिया के किसी भी कम्प्यूटर से ज्यादा ऑर्गेनाइज्ड हैं। ये आपकी पिछली सात पुश्तों की हिस्टरी आपको बता सकते हैं। आपके बाऊजी जब अपने पिता जी को यहाँ छोड़ने आए थे तो उन्होंने एक रजिस्टर में साइन किये होंगे। उसकी एन्ट्री भी आपको मिलेगी। इन पण्डों के बहीखाते तो गिनेस बुक में रजिस्टर होणे चाहिये।''

मौसा जी ने पहले एक दुकान पर रुक कर पूरी भाजी का ऑर्डर दिया... वही कुर्सियाँ लगी थीं। अनमने भाव से मैंने पूरी खानी शुरू की... वैसे ही पूरी परांठे छोड़े हुए एक लम्बा अर्सा हो गया है... कमर कर कमरा बनता जा रहा है... मगर बेदिली से ही पूरी और आलू की भाजी खाने लगा... पूरियाँ अच्छी बनी थीं मगर जब खाने की इच्छा न हो तो माल पूड़े भी लौकी और तुरई जैसे लगने लगते हैं।

मैंने अपने मन की दुविधा नरेन मौसा के सामने उडेंल दी, ''मौसा जी, ब्राहमण तो हम भी हैं, फिर हम अपने ही अंतिम संस्कार के लिये आचार्य और पण्डों पर क्यों निर्भर करते हैं। हम लोग अपने परिवार में ही किसी को यह विधि क्यों नहीं सिखा लेते?''

''कोण सिखेगा? ना तूं सिखेंगा?... काका कहणा बड़ा असान है, पर करण वास्ते कोई तैयार नहीं होन्दा। तूं आप हवाई जहाज दी नौकरी करदां हैं... भला तूं एह कम किवें कर सकदा हैं।... दरअसल असी उच्चे कुल दे ब्राहम्ण होन्दे हाँ। ऐह आचार्य वगैरह मैले ब्राहम्ण होन्दे ने... छोटे ब्राहम्ण... मुर्दयां दा ऐही खा सकते ने। सानु मनाही है मुर्दयां दा खाणा।''

बातें करते करते हम पहुँच गये हर की पौड़ी... मुझ जैसा नास्तिक भी उस दृश्य को देख कर कुछ समय के लिये परमात्मा में विश्वास करने लगा... अद्‌भुत नजारा... वहाँ एक पण्डे से पूछा कि पंजाब के मोहला लोगों के महन्त कहां होते हैं... उन लोगों ने आपस में कुछ खुसर पुसर की... इससे पहले कि कोई हमें बता सकता एक और पण्डा आया, ''बोलो साब, क्या काम है?''

पहले पण्डे ने उसे बीच में ही टोक दिया, ''अरे कुछ नहीं, इनका अपना महन्त है।... जी सेठ, आपके पण्डे का नाम पंडित हुकुम चन्द पाठक... दरअसल आपके पण्डे थे पाठक जी, उनकी तो हो गई मृत्यु। आजकल उनका काम उनकी पत्नी देख रही है - शकुन्तला पाठक। यहाँ नजदीक ही बड़े बाज़ार में उनकी हवेली है - रामगिरी हवेली। यहाँ से कोई दस बारह मिनट लगेंगे पैदल चलने में।... वहाँ आप मौत रजिस्ट करवा सकते हैं।... वैसे वह डांट देती है... बुरा ना मानियेगा।''

इतनी ईमानदारी बहुत कम देखी थी। अभी कुछ ही कदम चले थे के मौसा जी ने कहा, ''काका जी, गंगा-स्नान करणा हैं?''

''जी मौसा जी, पहले काम कर आते हैं, फिर वापसी में कर लेंगे।''

मौसा जी को पण्डों का मजाक उड़ाने में बहुत आनन्द की अनुभूति होती थी, ''काका, ऐथों दे पण्डयां ने इक अलग दुनियां वसाई होई हैं। आ तैनूं इक तमाशा दिखावां।

इसके साथ ही मैंने देखा कि चारों तरफ से घिरा एक स्थान है जहाँ एक गाय बँध खड़ी है, एक चारपाई है, एक बिस्तर बँधा हुआ है, एक लालटेन, एक छाता, एक टाइम पीस, एक जोड़ी मर्दाना कपड़े और एक जोड़ी जनाना कपड़े, एक मर्दानी चप्पल, और एक जनाना चप्पल। वहाँ पास एक और खटिया पर एक पण्डा सुस्ता रहा था। मैं अनायास पूछ बैठा, ''ये सब क्या है?''

नरेन मौसा से पहले ही पण्डा स्वयं बोल पड़ा, ''देखो बेटा हम यहाँ क्रियाकर्म करते हैं। मरने वाले की आत्मा की शान्ति के लिये हम वे सब चीजें यहाँ रखते हैं जिनकी उसे अगली जिन्दगी में जरूरत होगी। तुम यहाँ मृतक के नाम से जो जो चीजें दान कर जाओगे, वे सब उसे स्वर्ग में मुहैय्या हो जाएँगी। यहाँ पाँच सौ से ले कर पाँच हजार तक के क्रियाकर्म की सुविधा मौजूद है।''

मेरी आँखों में अनिश्चितता देख कर पण्डा स्वयं ही बोल पड़ा, ''इसमें परेशान होने की तो कोई बात ही नहीं ना। देखिये अगर आपका बजट पाँच सौ रुपये का है तो बस आप खाट, बिस्तर और कपड़ों को हाथ लगा दीजिये। ये मृतक के नाम से दान हो जाएँगे। जैसे जैसे आप नग बढ़ाते जाएँगे, वैसे वैसे दाम बढ़ते जाएँगे। पाँच हजार में गोदान का लाभ भी मिल जाएगा।''

हड्डियाँ दिखाई देती गाय जैसे पुरजोर तरीके से हमें बता रही थी कि जो पैसे गोदान से पण्डे को मिलते हैं उनके दस प्रतिशत भी गाय के पेट में नहीं जाता। कहते हैं कि धर्म श्रद्धा पर निर्भर करता है मगर यहाँ तो धर्म का पूरा व्यवसायीकरण हो चुका है।

मेरी कोई रुचि न देखकर पण्डे ने आखिरी अस्त्र चलाया, ''देख लीजिये सेठ, आपको डिस्काउण्ट भी मिल सकता है। चलिये हटाइये साढ़े तीन हजार में पाँच हजार वाली क्रिया करवा लीजिये। आपको कुछ खास तो करना नहीं हैं, बस जो जो चीज़ क्रियाकर्म में शामिल करनी है उसको छूना है और मेरे पीछे मन्त्रों का जाप करना है। ज्यादा से ज्यादा बीस मिनट का काम है।'' और मैं सोच रहा था कि यह सारा सामान जो सामने रखा है, दिन भर में कितनी आत्माओं की शांति के लिये इस्तेमाल में लाया जाता होगा... दिन-ब-दिन, सप्ताह दर सप्ताह और फिर महीना और साल। आत्माओं को भी ठगा जा रहा है।

मुझे यह भी समझ नहीं आ रहा था कि मैं अपने बाऊजी के अस्थि विसर्जन के लिये आया हूँ या आलू बैंगन खरीदने। कितनी बेशरमी से मोल भाव हो रहा था। ढिठाई उस पण्डे के चेहरे पर बेग़ैरती से छाई हुई थी। वहाँ रुकना संभव नहीं लग रहा था। बाज़ारवाद तो यहाँ नहीं पहुँचा फिर यह सब क्या है? एक तरह से मृत्यु का बाज़ार तो लगा ही है... गंगा के किनारे आपके सामने नदी से पानी भर-भर कर गंगाजल बिक रहा है... सब कुछ देख कर लग रहा था जैसे यहाँ से सारा सामान हमारे मृतकों की आत्माओं के साथ हवाई जहाज द्वारा भेज दिया जाएगा।

वहाँ से गंगा नदी की खूबसूरती देखते देखते हम चल दिये अपन महन्त का अड्डा देखने के लिये। रास्ते में बातें बाऊजी की सोच के बारे में हो रही थी। क्या वे यह सब करते जो हम कर रहे हैं। फिर याद आया कि बाऊजी भी तो मेरे दादाजी की अस्थियाँ यहाँ लाए थे। उनके हस्ताक्षर भी देखने को मिलेंगे। आज बाऊजी की अनुपस्थिति में उनके हस्ताक्षर देखने के विचार से ही रोमांच सा हो रहा था।

हम पहुँच भी गये। हमारा महन्त तो खासा खाता पीता इन्सान लग रहा था। भव्य सी धर्मशाला और बहुत से कमरे। एक कर्मचारी ने थोड़ी बेरुखी से पूछा, ''किससे काम है?''

''भाई हम दिल्ली से आए हैं, अस्थि विसर्जन...।'' उसने बात पूरी भी नहीं होने दी, बीच में ही काटते हुए बोला, ''पण्डिताइन से मिल लीजिये। वही करती हैं सब हिसाब किताब।''

उस व्यक्ति ने हमें एक मोटी, ठिगनी, गोरी, चश्मेधारी महिला के सामने ले जा कर खड़ा कर दिया। वह नरेन मौसा को शायद पहचान भी गयी थी, ''हाँ जी कहाँ है अस्थियाँ?'' उसने बिना किसी ख़ैर-ख़रीयत पूछते हुए सवाल दाग़ दिया। और मैं तो शर्म के मारे गड़ा जा रहा था।

''वह काम तो हम कर आए।... अब तो नाम लिखवाने आए हैं।''

जैसे बिफर ही तो पड़ी पण्डताइन, ''आप जजमान लोगों के सिर पर ही तो इतनी बड़ी धर्मशाला खड़ी की है। न तो आप आकर इसमें रहो, और न ही आप हमसे अस्थि विसर्जन करवाओ। तो हम यह तामझाम किसके सिर पर चलाएंगे।... ना उस पण्डे ने भी तो अस्थि विसर्जन की दक्षिणा कुछ न कुछ तो ली होगी।... हमारे तो रेट भी सामने बोर्ड पर लिखे हैं। अब आप बताइये कि आपकी रजिस्ट्री करने में हमारा टाइम बरबाद न होगा क्या?''

मैं उस पण्डिताइन के सामने अपराधी सा महसूस करने लगा। मैं नहीं चाहता था कि नरेन मौसा उसके साथ किसी भी तरह की बहस में पड़ें। बिना किसी ना नुकर ने मैंने एकदम ठण्डी आवाज में पूछा, ''जी, अगर आप अस्थि विसर्जन करवातीं तो कितना पैसा लगता।''

''हम कोई लुटेरे नहीं है जजमान, हम भी सिर्फ दो सौ इक्यावन रुपये ही चार्ज करते हैं। देख लो सामने बोर्ड पर लिखा है। वैसे आप चाहें तो जो मर्जी हो दान कर सकते हैं।... यह सब चलाने में खर्चा तो होता है ना।''

''और अगर हम दोनों एक रात आपकी धर्मशाला में रहते, तो कितना पैसा लगता?''

''उसके सौ रुपये लगते।... सुबह की चाय हम मुफ्त में देते हैं।''

मैंने चुपचाप अपनी जेब से पर्स निकाला और पाँच सौ रुपये निकाल कर पण्डिताइन के हाथ में रखते हुए कहा, ''माफ़ कीजियेगा, हमसे गलती हो गई। ये पाँच सौ रुपये आपके बनते हैं। हमें इधर उधर कहीं भटकना ही नहीं चाहिये था। सीधे आप ही के पास आना चाहिये था। अब आप हमारे पिता जी की मृत्यु दर्ज कर लीजिये।'' नरेन मौसा कसमसाए, मगर मौके की नज़ाकत को देखते हुए चुप रह गये।

पण्डिताइन हमें एक बड़े से हॉल में ले गई, जहाँ लाल रंग की पोथियाँ ही पोथियाँ रखी थीं, ''ऐसे चार हॉल हैं हमारे पास जिनमें आप जजमानों के रिकॉर्ड रखे हैं। इनकी सँभाल आपको मालूम कितनी कठिन होती है?... हाँ रे जरा देखियो... ये मोहला हैं झंग के... देखो जी, अगर आपकी सूचना सही होवे न तो हमारे यहाँ ढूँढने में पाँच से दस मिनट लगते हैं बस।... क्यों रे, मिला के...?''

और मैं हतप्रभ उन पोथियों की महक महसूस कर रहा था... उन पोथियों में कितने मृतकों के नाम दफन होंगे... उन्हीं में आज मैं भी अपने बाऊजी का नाम भर कर अपने हस्ताक्षर कर दूँगा... दादाजी का भी नाम होगा... इन पोथियों में मरे हुए नामों के साथ जिन्दा लोगों के हस्ताक्षर साक्षी हैं कि जीवनधारा अविरल बहती रहती है... कभी रुकती नहीं।

लगभग बारह मिनट में पण्डिताइन के कर्मचारी ने एक बहीखाता मेरे सामने लाकर रख दिया। उसमें लिखा था मेरे बाऊजी वहाँ अपने पिता की अस्थियाँ लेकर आए थे। बाऊजी अपने हस्ताक्षरों में अंग्रेजी के 'कैपिटल लेटर' का इस्तेमाल नहीं करते थे बल्कि 'लोअर केस' से ही काम चलाते थे। यही उनके हस्ताक्षरों की पहचान भी थी 'एन' और 'जी' को जिस तरह मिलाया करते थे...। मैंने देखा, और बाऊजी को उन कागज के पन्नों पर महसूस किया... उन हस्ताक्षरों पर अपने दाएँ हाथ की उँगलियाँ फिराई... आँखे बन्द करके मैंने अपनी जिन्दगी भर की बेहूदगियों के लिए बाऊजी से क्षमा माँगी।

उस बहीखाते में मैंने अपने हाथों से अपने बाऊजी की मृत्यु के बारे में विवरण लिखा। ऐसा लगा जैसे बाऊजी की मृत्यु अब हुई है, इसी पल। कमरे की सीलन... बहीखातों की महक... और फाउण्टेन पेन से की गई एन्ट्री... आँखों में जमे हुए आँसू... एक बार छत की तरफ देखा... कम से कम बीस फुट ऊँची तो होगी ही... ऊपर तक बहीखाते ही बहीखाते... चारों तरफ से दीवारें तो दिखाई ही नहीं दे रही थीं... ट्यूब-लाइट जल रही थी... कमरा उजाला था... बस लाल बहीखाते... क्या कभी ये सभी नाम एक दूसरे से बातचीत करते होंगे... ये तो सभी एक ही बिरादरी, भाषा और क्षेत्र के लोग हैं... क्या उस कमरे में सराय की भाषा सुनाई देती होगी... ये मृतक आपस में क्या बातें करते होंगे... इतनी शांति मुझे अस्थि विसर्जन करते समय नहीं मिली थी जितनी कि शकुन्तला पाठक की हवेली में मृत्यु दर्ज करवाते समय मिली।

यह देख कर अच्छा लगा कि नरेन मौसा ने शकुन्तला पाठक के साथ मेरे व्यवहार पर एक भी टिप्पणी नहीं की। शायद उन्हें भी पहली बार महसूस हुआ था कि मैं बड़ा हो गया हूँ। या फिर पैसे की ताकत होती ही ऐसी है कि सामने वाला उसके दबाव में आ ही जाता है। मेरे रिश्तेदारों में मेरी छवि एक अमीर आदमी की है। न जाने कैसे कब बन गई है... मगर महसूस करता हूँ... कि वही रिश्तेदारों की एक ऐसी जमात भी है जो मुझे आज भी लोअर मिडिल क्लास का लड़का ही समझती है... मुझे फर्क नहीं पड़ता।...

दिमाग में सुकून लिये हम वापिस गंगा जी के सामने आ पहुँचे... वहाँ पानी के बहाव को देखकर कुछ डर का सा अहसास होने लगा था। किन्तु सामने महिलाओं, पुरुषों और बच्चों को पानी में डुबकी लगाते देख मन में जोरदार इच्छा जागृत होने लगी कि गंगा जी में हम भी उतर ही जाएँ। मौसा जी ने मेरे मन की इच्छा को भाँप लिया था। मैं जीवन में पहली बार किसी नदी में उतरा था, और वह भी सीधे गंगा-स्नान... क्या सच में मेरे लिये इतना महत्वपूर्ण है यह पल... न जाने क्यों अच्छा लग रहा है... पानी का तापमान मेरी हड्डियों को महसूस हो रहा था... बहाव इतना तेज था कि वहीं लगी लोहे की संगलों को पकड़ कर खड़ा होना पड़ रहा था... पाँव के नीचे से जमीन को पानी उड़ाए लिये जा रहा था... जैसे मैं अचानक जीवित हो उठा था।

मौसा चाहते थे कि मैं रात को महा-आरती देख कर ही जाऊँ, ''काका जी, गंगा जी दी आरती दु:खां नूं गायब कर देन्दी है। मन दे विचों सारे कष्ट आपे ही खतम हो जान्दे ने।''

मेरी चुप्पी नरेन मौसा के लिये स्वीकृति थी और मैं अपने आप को छल रहा था। मेरे भीतर का वामपन्थी यह मानने को तैयार नहीं था कि मुझे इस सबसे सुख प्राप्त हो रहा है। मैं अपने आपसे कह रहा था कि मैं तो नरेन मौसा की बात रख रहा हूँ... मगर क्या यह सच था... नहीं... मैं गंगाजी के वैभव से इतना सम्मोहित हो चुका था कि उन्हें केवल गंगा हीं कह पा रहा था... अचानक वहाँ की हर नकारात्मक चीज सकारात्मक लगने लगी... आरती यदि न देखी होती हो शायद कभी न पता चलता कि जीवन में किस चीज की कमी रह गयी... पानी पर चलते दीपक... पानी और आग का ऐसा संगम... अद्‌भुत!

नरेन मौसा के साथ पहली यात्रा की वापसी भी वैसी ही रही जैसी की शुरुआत थी। मौसा जीवन, मृत्यु, गरुण पुराण, भगवत गीता और मनु स्मृति की बातें करते रहे। बाऊजी को याद करते रहे... और मैं सुनता रहा।

मगर आज, बात दूसरी है... यह हमारी दूसरी यात्रा है आगे टैक्सी ड्राइवर और पीछे मैं और नरेन मौसा। आज उनके हाथ में उनके पुत्र की अस्थियाँ है। तीस वर्षीय पुत्र... हमारे घरों में शायद सभी पुत्रों को काका ही कहा जाता है... नरेन मौसा उसे भी काका ही कहते हैं... वैसे नाम तो अमर था... जिसका अमरत्व बस तीस वर्ष तक ही चल पाया...

आज मौसा की आँखों में मौत का सन्नाटा पसरा हुआ था। उनका भविष्य उनके साथ एक कलश में बन्द था... कैंसर ने अमर को परास्त कर दिया था... कभी छोटा सा अमर ऐसे ही नरेन मौसा की गोद में खेलते खेलते सो जाता होगा... तीन बहनों का अकेला भाई... पत्नी बेहाल... अभी कोई बच्चा नहीं... बस दो साल पहले ही विवाह हुआ था... चेहरे पर हमेशा मुस्कान, बड़ों का सम्मान... इज्जत... स्नेह... आज गंगा उल्टी बहने वाली है... आज पुत्र अपने पिता की मृत्यु बहीखाते में नहीं भरेगा... आज पिता अपने पुत्र का नाम लिख कर हस्ताक्षर करेगा... ठीक उसी पन्ने में नीचे जहाँ उसने अपने पिता की मृत्यु का विवरण भरा था।

आज टैक्सी कहीं रास्ते में नहीं रुकेगी... कोई पण्डा हमें नहीं अन्जान जगह पर ले जाकर ग्यारह पण्डितों को भोजन करवाने का संकल्प नहीं करवाएगा... आज टैक्सी सीधी बड़े बाजार की रामगिरी हवेली के सामने जा कर रुकी। नरेन मौसा और मैं उसी धर्मशाला में जा कर टिके जिसकी मालकिन शकुन्तला पाठक थी।

सुबह मुलाकात हुई हवेली के नये मालिकों से – शकुन्तला पाठक के दोहते नन्द कुमार और राजीव से। पढ़े लिखे महन्त... एक कम्प्यूटर एक्सपर्ट तो दूसरा गुरूकुल कांगड़ी का विद्वान। छोटे राजीव ने बताया, ''हमारा प्रयास यह है कि हमारे पास जितना भी डाटाबेस है उसे हम कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क में सेव कर लें। काम जारी है मगर आप समझ सकते हैं कि कितना बड़ा काम है।... हो सकता है कि जब आप अगली बार आएँ तो आपको हमारी ये पोथियाँ दिखाई दी न दें... कम्प्यूटर ने सब काम बहुत सरल कर दिया है। मेरा मानना है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों का इस्तेमाल जीवन में होना बहुत जरूरी है।''

आज नरेन मौसा ने इतनी बड़ी सूचना पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। उनकी आँखों में गहरे तक केवल मौत की सच्चाई थी। उनके अपने भविष्य में उल्टा हो रहा था... कंम्प्यूटर से बहीखाते की ओर वापसी हो रही थी। दो बेटियों की शादी हो चुकी है... अभी तीसरी तो घर पर है कुँवारी... और काका उन्हें छोड़ कर अपनी अंतिम यात्रा पर निकल चुका है...

अबकी बार कोई डुबकी नहीं, बस बेदिली से किया गया नाश्ता... केवल टोस्ट और चाय... अबकी बार तो अस्थि-विसर्जन भी नन्द कुमार ने ही किया... शकुन्तला को किया वादा उसके दोहतों के साथ निभाया जा रहा था।

टैक्सी वापिस दिल्ली की यात्रा के लिये चल दी थी। नरेन मौसा की आँखों से आँसू बाहर आना चाह रहे थे। मैं देखता था मगर नहीं देखता था। उनकी गीली आँखों में भी एक सवाल था कि कल को उनकी अस्थियाँ कौन लाएगा... कौन सँभालेगा उनका उत्तरदायित्व?

जैसे जैसे दिल्ली निकट आ रही थी, मेरे मन की बेचैनी बढ़ती जा रही थी... मैंने नरेन मौसा का हाथ अपने हाथ में ले लिया, उनकी नम आँखों की तरफ देखा। मेर हथेली उनकी हथेली से कह रही थी, ''नरेन मौसा... बस... आज से आपको आपकी जिम्मेदारियों से रिटायर कर रहा हूँ... अब परिवार की यह जिम्मेदारी मेरी है... जब तक जीवित हूँ... मैं हूँ न...''

नरेन मौसा की हथेलियों में कंपन साफ सुना जा सकता था।

○○○

दो लघुकथाएँ

डॉ. ज्योत्सना शर्मा

किं नरं?

तेज-तेज कदमों से चलती हुई वह अँधेरी गली के मोड़ तक तो पहुँच गयी। मस्ती में सीटी बजाते दोनों साये नजदीक आते जा रहे थे। डर के मारे गला सूख गया और जी बैठा जा रहा था। मुँह से आवाज निकलती न थी कि लंबी परछाइयों ने उसे दोनों तरफ से घेर लिया। धम्म से नीचे बैठ गई और मुँह को घुटनों में छुपा लिया। तभी तड़ाक की जोरदार आवाज आई। और फिर...

किसी ने बाँह से पकड़कर उसे उठाना चाहा। कैसे सख़्त हाथ... मन फिर से आशंकाओं में घिर गया।

उसने धड़कते दिल से आँखें खोली, तो साड़ी का बार्डर देख सुकून आया।

हिम्मत बाँधकर उठी और बोली-बहुत अहसान है आपका मुझ पर।

भरी आँखों और रूँधे गले से उन्होंने कहा-तुझ पर नहीं बिट्टो... इन नालायकों पर...! ऐसे ही किसी पाप की सजा मैंने भुगती है जो ये करने जा रहे थे। और तू... बोलना कब सीखेगी, तुझे चिल्लाना चाहिए।

अब कौन उन्हें बताए ऐसी आवाजें यहाँ सुनता कौन है?

''कु...''

पार्टी हॉल में प्रवेश करते ही कई निगाहें उनकी तरफ उठीं और बिछ गई। काले बार्डर और बसंती रंग की सिल्क साड़ी में वे गजब लग रही थी।

''गुड ईवनिंग मैडम'', गुप्ता जी बोले।

सम्पर्क: एच-604, प्रमुख हिल्स, छरवाड़ा रोड़, वासी, जिला-वलसाड, गुजरात-396191, मो. 9824321053,
ई-मेल: sharmajyostna766@gmail.com

''लो जी अब आई बहार पार्टी में, मिस्टर अरोड़ा न्योछावर होते पास चले आए, बड़ी देर कर दी आपने आने में।''

''अच्छा क्या लेंगी आप? अभी ड्रिंक्स लेकर आता हूँ।'' गुप्ता जी ने कहा तो मुस्कराते हुए बोली, ''थैंक्यु गुप्ता जी, अभी तो आई हूँ, मैं खुद ले लूँगी।''

''जाने का मन ही किसका है आपके पास से, वैसे अकेली ही आई हैं?''

''नहीं, साहब ऑफिस से सीधे इधर ही आएँगे, लो आ भी गए।'' द्वार की तरफ देखते हुए बोली।

''आइसक्रीम लीजिए आप... बड़ी गरमी है... ए.सी. भी काम करते नहीं लग रहे...'' कहते-कहते अरोड़ा जी ने भी उधर देखा और मुँह घुमा लिया। साहब भी सीधे अपने मित्र-मित्राणियों में व्यस्त हो गए।

...और वो भी ''डेलिशियस!!! आपको मेरी कितनी फिक्र है अरोड़ा जी''-बेहद अपनेपन से कहकर आगे बढ़ गईं।

''ओए-होए'' पास खड़ी चंदना से टोका, ''फिदा हैं आप पर जनाब।''

''हाँ रे! कितनी खूबसूरत बीवी है फिर भी''... अदा से मुस्कुरा दीं।

''वो तो सब ठीक है... साहब को भी सँभालिए, देख रही हैं न... सोनाली, चर्चे हैं आजकल।! फिर मत कहना बताया नहीं।''

''ओह! मुस्कराहट गायब, आँखों में शोले, हिकारत से उधर देखा और बोली, ''आदमियों की जात भी न... और ये औरतें... जरा ढंग का, पैसे वाला बंदा देखा नहीं कि.... लग जाती हैं... आगे राम जाने क्या बड़बड़ाई हमें तो बस 'कु...' सुनाई दिया।''

❍❍❍

शून्य होती संवेदनाएँ

अशोक जैन 'पोरवाल'

जैसे की ट्रेन स्टेशन पर रुकी। ट्रेन में चढ़ने-उतरने वाले यात्रियों की भीड़ बढ़ गई। भारतीय सेना के उस जवान की ड्रेस पर 'परमजीत सिंह' नाम का एक छोटा सा बैज लगा हुआ था। उसके सीधे हाथ पर कंधे से लेकर कोहनी पर प्लास्टर चढ़ा हुआ था। हाथ की सुरक्षा के लिये गले और हाथ के बीच पट्टीनुमा डोरी भी लगी हुई थी।

उसने अपने बायें हाथ से अपना छोटा सा फोल्डिंग बैड उठाया और अपनी पीठ पर टाँग लिया। फिर सूटकेस उठाया और ट्रेन से नीचे उतरने की कोशिश करने लगा। किन्तु, बहुत अधिक भीड़ होने के कारण वो आगे नहीं बढ़ पा रहा था।

अंततः उसने यात्रियों से कहा, ''प्लीज मुझे उतरने में मदद कीजिये... मैं भारत-पाक बॉर्डर पर तैनात एक सिपाही हूँ... अभी पिछले सप्ताह सीमा पर हुई छुटपुट गोलीबारी के कारण मुझे हाथ में गोली लग गई थी... जिसे ऑपरेशन कर निकाला गया।''

चढ़ने-उतरने वाले यात्रियों की भीड़ में से एक आवाज आई, ''अरे जब हाथ ठीक नहीं था तो सफर ही क्यों कर रहे हो?'' दूसरी आवाज आई, ''हम कुली नहीं हैं, जो तुम्हारा सामान नीचे उतारें।'' तीसरी आवाज आई, ''गोली खाई है तो क्या हुआ?... देश की सरकार से मोटी तनख्वाह... चिकित्सा सुविधा... और भी बहुत सारी सुविधायें और भत्ते भी तो लेते हो।''

लोगों की प्रतिक्रियात्मक आवाजों को सुनकर उसे ऐसा लगा मानो वो भले ही देश की सीमा के दुश्मनों से जीत गया हो। किन्तु, अपने ही देश के अति स्वतंत्र नागरिकों की देशप्रेम... मानवता के प्रति शून्य होती संवेदनाएँ के कारण हार गया हो?... उसे अब अपने हाथ के जख्म में ठेस (धक्का) लगने का डर नहीं रहा। क्योंकि उसकी आत्मा को... उसके दिल को तो पहले ही ठेस लग चुकी थी।

लिहाजा, वो हिम्मत करके फुर्ती के साथ अपने सामान सहित भीड़ को चीरता हुआ ट्रेन से उतर आया था। साथ ही उसके हाथ में बँधे प्लास्टर में धक्का लगने से कुछ खून की बूँदे बाहर निकल कर धरती माँ के चरणों में गिर पड़ी थीं।

❍❍❍

सम्पर्क: 66/1, शांति निकेतन कॉलोनी, सेक्टर-1, गोविंदपुरा, भोपाल, मध्य प्रदेश-462023, मो. 9098379074,
ई-मेल: ashokjainporwal@gmail.com

युक्ति

सदाशिव कौतुक

एक विभाग के इंजीनियर को उस क्षेत्र के प्रतिनिधि का फोन आया–''हलो-हलो।''

''जी सर बोल रहा हूँ।''

''सुनो वर्मा जी। कल जो ठेकेदार का बिल पास होने वाला है उसमें मुझे बीस प्रतिशत का कमीशन चाहिये।''

''सर! इतना तो मुश्किल है क्योंकि और लोग भी तो मुँह धोकर बैठे हुए हैं। बीस प्रतिशत अकेले आपको देना मुश्किल है।''

''मैं नहीं जानता कुछ भी करो। कोई भी रास्ता निकालो नहीं तो उसका पेमेंट रोक दो। सब देगा सा...।''

''सर मेरे सामने बस एक ही रास्ता बचा है।''

प्रतिनिधि ने पूछा–''वह क्या?''

''सर वह यह कि मेरे परिवार का पेट काटकर इस माह का पूरा वेतन आपकी हथेली पे रख दूँगा। इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता।''

इतना कह वर्मा जी ने अपना मोबाइल बंद कर दिया था।

❍❍❍

सम्पर्क: श्रमफल, 1520, सुदामा नगर, इंदौर, मो: 9893034149

दूध में छौंहुँका

मृदुला श्रीवास्तव

उस जेठ माह में उसके घर में फ्रिज होता तो कहानी कुछ और ही होती।

सो नियमित दूध उबालना कभी न भूलती थी वह। दूध को उबालने समय उसे लगातार यूँ निहारती कि दूध भी कहता—''क्यों घूरे जा रही है मेरी माँ ऐसी नजरों से, नजर तो हटा लें और फिर वह इस चिंता में कि कहीं दूध निकल न जाए दूध को घूरती ही रहती, लगातार अपलक। और तो और दूध कभी फटता भी न था उससे। दिन में तीन बार उबालती जो थी।

पर यह क्या? जब जब वह बहुत खुश होती तो कुछ ऐसा कर देती थी कि...। ज्यादा कुछ नहीं बस दाल मैं छौंहुँके की जगह दूध में छौंका लगा देती थी। माँ चिल्लाती थी—''कलमुँही, दूध का सत्यानाश कर दिया।''

प्यार में थी वह, किसी के, पर माँ को कौन समझाता? तुम्हें पता है आज क्या हुआ''—अपने प्रेमी से वह कह रही थी। मैंने तुम्हारे प्यार में खुद को भूलकर गलती से आज दाल की जगह दूध में छौंहुँका लगा दिया। सुनकर प्रेमी ने मुँह मारा। बोला—''ऐसा भी क्या प्यार? अक्ल नहीं क्या तुम्हें? सारा दूध खराब हो गया होगा। ध्यान से काम किया करो यार।'' उसके प्यार को प्रेमी समझ सके, देरी थी शायद अभी।

विवाह हो गया। होना ही था।

दस साल बीत गए। बीतने ही थे।

सम्पर्क: फ्लैट नं. 3, द्वितीय तल 'हिमालय अपार्टमेंट, कुसुम्पटी, शिमला-171009 (हि.प्र.) ई-मेल: srivastava1464@yahoo.co.in

इस बीच उसने कभी दूध में जीरे का छौंहुँका नहीं लगाया। लगाती कैसे? प्यार जैसी कोई बात ही नहीं हुई थी।

उस दिन प्रेमी से पति बन चुके का दस साल बाद प्रोमोशन हुआ था। लोग मिठाई बाँटते है उसने भी बाँटी। इतनी खुश कि बस। ज्यादा कुछ नहीं उसने एक बार फिर उस दिन दाल की जगह दूध में छौंहुँका लगा दिया था। पति समेत सास और देवर ने तो ठीक ठाक सुनाया। पति बोला, ''तुमने फिर वही पागलपन शुरू कर दी।'' सास बोली—''घर से दहेज में 40 साल के दूध के पैसे ही ले आती। कम से कम बर्बाद दूध की कीमत ही वसूल हो जाती।''

''देखो मेरी बीवी भी तो है रोज दूध उबालते हुए आधा दूध गिराती है, हफ्ते में चार दिन दूध फट कर दही बन जाता है। पर दूध में छौंहुँका तो कभी न लगाया माँ उसने। कोई पागल ही कर सकता है ऐसा तो।... इलाज करवाओ भैया, भाभी का—''देवर कहते हुए खूब हँसा।''

सास गलती से ही कभी-कभी कह जाती थी मेरी बहू तो मिल्क बायलर है उसके रहते दूध उबल कर बाहर नहीं आ सकता। वह अपने इस घटिया उपमान को सुन बस हल्का सा मुस्करा देती। यूँ ही रही उसकी दिनचर्या बेटे बेटी के बड़े होने तक।

बारात विदाई के लिये दरवाजे पर आने वाली है तीन दिन बाद। घर मेहमानों से खचाखच भरा। घरातियों के लिए खाना बनकर तैयार। ''माँ खाने का क्या हुआ?'' बेटा चिल्ला रहा था। ''लाती हूँ बेटा बस कढ़ी में हींग और साबुत लाल मिर्च का छौंहुँका लगाना बाकी है।''

कह जरूर रही थी पर आँखों के सामने तीन दिन बाद होने वाली विदाई घूम रही थी।

उसने ज्यादा कुछ नहीं, बस बरसों बाद पता नहीं क्यों फिर से आज कढ़ी की थाली हटाने की जगह दूध के पतीले की थाली हटा दूध में हींग का छौंहुँका लगा दिया था।

तीन दिन बाद विदा होने को आतुर बेटी चिल्लाई। ''क्या माँ, जरा भी ख्याल नहीं क्या आपको, मेरी शादी में आये रिश्तेदारों का? अब क्या खाएँगे वो।'' बेटी इतनी नाराज कि बिना एक आँसू निकाले तीन दिन बाद विदा हो गई थी। माँ की आँखे विदा कर बेटी को फूट-फूट कर रो रही थी। कौन था जो उसके इस प्यार को...? खैर सब अपने घर चले गए।

पोते को नहलाकर दूध उबालने चली थी। बेटे की बाँह की गाँठ की रिपोर्ट आज सही आई है यानी कैंसर नहीं है। रिपोर्ट पढ़ मुस्करा रही थी अपनी सफेद लट को पीछे करती भगवान का धन्यवाद कर रही थी।

पर फिर उसी दिन शाम को...।

वही हुआ जो नहीं होना चाहिए था।

अबकी बार छौंहुँका दूध में नहीं बल्कि खीर में लगा था।

बेटा इकलौता चिल्लाया—''माँ पागल हो गई है क्या? दिखाना पड़ेगा पागलों के डॉक्टर को।... एक थैली दूध की कितनी आती है पता नहीं क्या तुम्हें माँ। खरीदना पड़े तो पता लगे।''

किससे कहती पागल होती तो दूध अनियमित उबालना और उबलकर गिरने को भला कैसे बचा लेती है हमेशा। काश कोई होता जो उसके प्यार को...।

वह अब इस दुनिया में नहीं है।

उसकी लाश फर्श पर पसरी पड़ी है। सब कुछ ज्यों का त्यों। दुनिया भर की आवाजें वहाँ थीं बस नहीं थी तो दूध और खीर में जीरे हींग और लाल मिर्च के छौंहुँके की आवाज। होती भी कैसे? सच्चे प्रेम की चिड़िया, जो अब वहाँ नहीं थी।

❍❍❍

आस्था

पुष्पेश कुमार पुष्प

दर-दर की ठोकर खाने के बाद भी उसे कोई काम नहीं मिला। गाँव से शहर में आया था काम की खोज में। सुना था शहर में काम की कोई कमी नहीं है। लेकिन इस मशीनीयुग में उसे कोई काम पर रखने को तैयार नहीं था। वह पिछले चार दिनों से भूखा-प्यासा दर-दर की ठोकर खा रहा था। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या करें? काफी सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया कि वह भगवान की भक्ति करेगा। कहा भी गया है—'हारे को हरिनाम।'

वह सुबह-शाम मंदिर में जाकर पूजा-पाठ करने लगा। एक दिन शाम के छिटपुट अँधेरे में मंदिर प्रांगण में उसे नोटों से भरा एक बैग मिला। यह देखकर उसकी आँखें चमक गयी। उसका भगवान के प्रति आस्था और विश्वास बढ़ने लगा। वह भगवान की भक्ति में दिन-रात तल्लीन रहने लगा। बिना कोई काम किये आसानी से भोजन मिलने लगा। उसे एहसास हो गया था कि यह भगवान की भक्ति का ही फल है कि आज उसका जीवन सुखमय बन गया।

अचानक एक दिन इसी आस्था और भक्ति के बीच जो धन छप्पर फाड़कर मिला था, वह बैग फाड़कर निकल गया। उसे जोर का धक्का धीरे से लगा। उसकी भगवान से प्रति आस्था और भक्ति पलभर में छूमंतर हो गयी। वह एक अंतहीन उदासी में खो गया। वह भगवान की निंदा करने लगा। तभी उसे एक आवाज सुनायी पड़ी—''जो देता है वही लेता है। ईश्वर ने तुम्हें एक मौका दिया था अपने जीवन को संवारने का, लेकिन तुमने कर्म से विमुख होकर गंवा दिया। कुछ मिलने पर आस्था और भक्ति का दिखावा करने लगे और कुछ खोने पर भगवान की निंदा करने लगे। कर्म न करना और भगवान की निंदा करना। यह कैसी आस्था है। भगवान के प्रति तुम्हारे मन में सच्ची आस्था नहीं है। इसीलिए तो कुछ मिलने पर भगवान का गुणगान करने लगे और कुछ खोने पर भगवान की निंदा करने लगे। यह भगवान के प्रति सच्ची आस्था नहीं हो सकती।''

❍❍❍

सम्पर्क: विनीता भवन, निकट-बैंक ऑफ इंडिया, काजीचक, सवेरा सिनेम्प चौक, बाढ़-803213 (बिहार) मो: 9135014901

प्रभात कुमार की दो लघुकथाएँ

आदर्श

मैं दिल्ली के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय में प्राध्यापक हूँ और उसी महाविद्यालय के छात्रावास में रहता हूँ। मेरे एक अन्य प्राध्यापक साथी भी छात्रावास में रहते हैं। पूरे छात्रावास में एक सौ पचास छात्रों के बीच केवल हम दो प्राध्यापक ही रह रहे हैं।

मेरी एक प्राध्यापिका साथी गाहे-बगाहे छात्रावास में मुझसे मिलने आती रहती है। प्राध्यापिका साथी का मेरे कमरे में इस तरह आना-जाना छात्रावास में रहने वाले मेरे आदर्शवादी प्राध्यापक साथी को नागवार गुजरता था। विद्यार्थियों में लोकप्रिय होने के कारण किसी विद्यार्थी ने तो कभी कुछ नहीं कहा किंतु एक दिन मेरे प्राध्यापक साथी ने मित्र-धर्म निभाते हुए मुझसे कहा-'यार, सीमा का छात्रावास में इस तरह तुमसे मिलने आना ठीक नहीं लगता। स्त्री-पुरुष की ऐसी दोस्ती उचित नहीं। अभी तो यह बात छात्रावास में ही धीरे-धीरे सुलग रही है, कहीं ऐसा न हो कि यह विस्फोटक रूप धारण कर ले, और तुम किसी मुसीबत में फंस जाओ। वैसे तो तुम खुद समझदार हो। मैंने तो मित्र होने के नाते यह बात तुम्हें समझा दी।''

मैंने उन्हें कहा, ''सीमा बहुत ही प्रबुद्ध और प्रतिष्ठित प्राध्यापिका है। यह बात तुम भी अच्छी तरह जानते हो। वह खुले विचारों की एक स्वतंत्र महिला है। तुम चाहो तो तुमसे भी मैं उसकी अच्छी दोस्ती करा सकता हूँ। 'अच्छी दोस्ती' का मतलब तुम समझते हो न?'' यह कहकर मैंने शरारतन हल्के से उसका हाथ दबा दिया।

इतनी बात सुनकर उसने सिर्फ इतना कहा - 'यार प्लीज...।' आगे वह कुछ और बोल नहीं पाया। उसका चेहरा लाल हो उठा था और आदर्श प्राध्यापक के मुख से टपकती अदृश्य लार मुझे दिखाई देने लगी थी।

चमत्कारी बाबा

कुछ दिनों से गाँव के बाबा निरंजन चर्चा का विषय बने हुए हैं। बाबा बहुत चमत्कारी हैं, बड़े संत हैं, सिद्ध पुरुष हैं आदि आदि। जितने मुँह उतनी बातें। सचमुच बाबा के चेहरे के तेज़ को देखकर ही ऐसा लगता था कि बाबा के लिए स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, जड़-चेतन सब बराबर है।

एक दिन गाँव के लोगों ने देखा कि एक गिरगिट ने बाबा के हाथ में रखे प्रसाद को खाया और वह अपना रंग बदलना ही भूल गया। यह चर्चा गाव से शहरों और महानगरों तक पहुँची। तब से सैकड़ों डाकू, स्मगलर और नेता बाबा के चरणों में दंडवत करते हैं और बाबा परेशान हैं कि गिरगिट तक तो बात ठीक थी लेकिन...।

❍❍❍

सम्पर्क: बी 4ए/4 राणा प्रताप बाग, दिल्ली-110007

आधा

राजेंद्र उपाध्याय

आधी बाती से भी पूरा उजाला होता है
आधी लौ भी पूरी रोशनी देता है।

आधी गगरी भी पूरी प्यास बुझाती है
आधे रास्ते पर भी मिलती है मंजिल

आधे बने मकानों में भी बसते हैं घर
आधे बगीचों में भी खिलते हैं फूल आता है बसंत

आधी भरी हुई नदी भी नदी कहाती है
आधा समुद्र भी गरजता है उतनी ही शिद्दत से
आधा बादल भी बरसता है तो भिगोता है
आधा आँचल भी छाँव देता है

आधी छतरी ने भी कई बार मुझे भीगने से बचाया
आधी आँच ने भी ठिठुरने से बचाया

आधा सच भी उतना ही काम का जितना आधा झूठ है
पेड़ तब भी पेड़ हैं, जब वह आधा हरा आधा ठूँठ है

आधी खिड़की से भी आती है पूरी रोशनी पूरी धूप
आधे घूँघट में भी नजर आता है पूरा रूप

आधे गाए गीतों की गूँज देर तक रहती है
आधी धुन भी बरसों बरस साथ चलती है

आजकल आधी गर्मी आधी ठंड के दिन हैं
यह नया साल भी आधा नया आधा पुराना।

आधे अधूरे लोगों से भी बनता है राष्ट्र
आधे अधूरे सपनों से बनता है समाज

आधी अधूरी पंक्तियों से लिखा जाता है महाकाव्य
आधे अधूरे उपन्यास हजारों हैं जो कभी पूरे नहीं हो पाए
आधी अधूरी कहानियाँ हजारों
हर प्रेम कहानी आखिर में आधी अधूरी ही रह जाती है
हर कविता आखिर में अधूरी ही रह जाती है

आधी पढ़ी हुई किताबों की संख्या अनंत है
आधी अधूरी मूर्तियों का सौंदर्य कम नहीं है पूरी से
मोनालिसा के चित्र में भी कुछ अधूरा-अधूरा-सा है
आधी अधूरी चीजों से बना है हमारा संसार
चाँद आधा भी उतना ही खूबसूरत

हर चीज पहले पहल अधूरी होती है
चाहे वह पेड़ हो या मनुष्य
यहाँ तक कि हमारे भगवान भी आधे अधूरे होते हैं
हनुमान आधे मनुष्य आधे वानर
गणेश आधे गजानन आधे मनुष्य
नरसिंह अवतार भी तो आधा नर आधा सिंह है

आधे की महिमा पूरे से कम नहीं है
यह धरती भी आधी जमीन में आधी पानी में
शरीर में आधा खून आधा पानी
मनुष्य का जीवन भी आधा जीवन में आधा मृत्यु में

आधा हूँ मैं यहाँ तुम्हारे पास
आधा और कहीं
आधा ही रहूँ मैं हमेशा
कभी पूरा न होऊं

❍❍❍

सम्पर्क: बी-108, पंडारा रोड़, दिल्ली-110003, मो: 9953320721,
ई-मेल: rajendra.upadhyaya58@gmail.com

अशोक वर्मा की तीन ग़ज़लें

एक

सुलगती राह में ठंडी हवाएँ साथ रहती हैं
सफ़र कैसा हो अपनों की दुआएँ साथ रहती हैं

कोई पूछे जो हमसे दोस्ती के मायने क्या हैं
दरख़्तों की हिफ़ाज़त में लताएँ साथ रहती हैं

हवन की आग मेरी उँगलियों को छू नहीं पाती
लबों पर मंत्र, वेदों की ऋचाएँ साथ रहती हैं

अगर बेदर्द बनकर मैं निकल भी जाऊँ चुपके से
सिसकती आह में गीली निगाहें साथ रहती हैं

कि होठों पर खिली मुस्कान का ये राज़ बतलाऊँ
मेरे महबूब की बाँकी अदाएँ साथ रहती हैं

दो

गुब्बारे, फूल, तितलियाँ, आँगन मेरे क़रीब
फिर एक बार आ गया बचपन मेरे क़रीब

गुरबत में था तो रहते थे सब जन मेरे करीब
आई अमीरी ना बचा वो धन मेरे करीब

रेखाएँ लाँघने को कहा लाँघ ली मगर
पलभर में कितने आ गए रावण मेरे करीब

बिटिया रहेगी बन के ये, मैंने वचन दिया
हाथों को जोड़े आई जब समधन मेरे करीब

अब क्या कहूँ पसंद था या नापसंद मैं
हँसकर उन्होंने रख दिया दरपन मेरे करीब

तीन

देर तक बस्ती में ख़तरे का गज़र ज़िन्दा रहा
क्या भयानक दौर था घर में भी डर ज़िन्दा रहा

मौत के सौदागरों की आहटें तो भी मगर
ज़िन्दा रहना था मैं साँसें रोक कर ज़िन्दा रहा

एक सन्नाटा शहर को जब निगल कर रह गया
चन्द बच्चों की हँसी से मेरा घर ज़िन्दा रहा

पास से गुज़रा जो मेरे उसका खुशबू-सा बदन
जिस्म में मीलों तलक उसका असर ज़िन्दा रहा

जो बचाकर ले गए हर दौर में अपना ज़मीर
सर क़लम होने पे भी उनका हुनर ज़िन्दा रहा

❍❍❍

सम्पर्कः 110, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली-110046,
मोः 9250909592, 8383046067

बचपन का स्कूल

डॉ. ब्रिजेश माथुर

आज करीब
चालीस बरसों के बाद
मैं मन में
असीम उत्सुकता लिये
अपने बचपन के स्कूल में आया हूँ;
अनगिनत खट्टी-मीठी यादें
साथ लाया हूँ।

स्कूल के कमरों, बरामदों और
छतों पर घूम घूम कर, और
दीवारों को छू छू कर
मैंने पाया,
कि यह तो बिल्कुल वैसा ही है
जैसा चालीस बरसों पहले था।

इक-इक कौन विस्फारित
नेत्रों से मुझे यूँ निहार रहा था,
जैसे उनका खोया हुआ बच्चा
अचानक ही उनके सामने
आ खड़ा हुआ हो,
और वे उसे अपने अंक में
समेटने को आतुर हो।

लौटते समय
मुझे
सहसा
वर्षों पुराना
वो दिन
याद हो आया,
जब मुझे आगे की
पढ़ाई करने के लिए
शहर भेजने की
तैयारी की जा रही थी
और माँ
घर के दरवाजे पर खड़ी,
आँखें पोंछते हुए एकटक
मुझे निहार रही थी।

फिर,
पीछे मुड़कर,
स्कूल को एक बार और
देखने की मैं,
हिम्मत न जुटा सका।

ooo

सम्पर्क: ए-16, मानसरोवर कॉलोनी, वैशाली नगर, अजमेर-305001,
मो: 9414213022, ई-मेल: brijesh50@gmail.com

तारिक असलम तस्नीम की तीन ग़ज़लें

एक

चुप रहना अच्छा लगता है
ख्यालों में जब कोई रहता है

कुछ भी नहीं इक तिरे सिवा
बार-बार दिल यह कहता है

देखे नयनों ने चाहत के सपने
आग के दरिया से गुजरता है

साँसों में बसी एक तेरी खुशबू
पंछी सा मन यह चहकता है

चाँदनी हो या रातें अमावस की
चाहत का मन में दीया जलता है

रंगत फूलों की चुरायी कब होंठों ने
कशिश ऐसी आसमाँ रंग बदलता है

दो

रात अँधेरी, लगता सवेरा है
देता दिखाई इंसान सपेरा है

आया था, जो भी मेरी मदद करने
कहा दिल ने यह तो लुटेरा है

दीये रोशन हमारे चारों तरफ
पर दिलों में कितना अँधेरा है

ईंट जोड़ता गया, इमारत की
फुटपाथ पर उसका बसेरा है

सिखाया चलना, जिसको हमने
उसी ने वजूद मेरा काँटों से घेरा है

तीन

ज़माने देखे कैसे-कैसे दरो दीवार से पूछिए
यहाँ दफन लोग कैसे-कैसे मज़ार से पूछिए

ज़रूरत है किस शय की, आपको किस कदर
लोगों की नहीं दोस्तों, अब बाजार से पूछिए

पशेमाँ नहीं होते अब यहाँ गुनाहों के देवता
कहे क्या खतीबे शहर, गुनहगार से पूछिए

गुजरती किस तरह फुटपाथ पर ये ज़िंदगी
नहीं समझेंगे वो दर्द, किसी बेजार से पूछिए

किस कदर बेरौनक मौसम ए खिजाँ यहाँ पर
हाल-ए-चमन, गुलशन ए बहार से पूछिए

❍❍❍

सम्पर्क: संपादक/कथा सागर त्रैमासिक, प्लॉट नं. 6, सेक्टर-2, हारून नगर कॉलोनी, फुलवारी शरीफ (समीप रेलव स्टेशन), पटना-801505, मो: 9576661480, ई-मेल: kathasagareditor@gmail.com

शशिकांत की दो ग़ज़लें

1

राम जाने क्या लिखा है भाग में
वक़्त बिरहा गा रहा है फाग में

है यहाँ सबको बस अपनी ही पड़ी
कौन जलता है पराई आग में

घर से चक्की, चूल्हा, हँडिया क्या गए
स्वाद वो आया न रोटी-साग में

ज़िंदगी घटती रही, घटती रही
हम रहे खोए गुणा और भाग में

बर्फ़ को छूकर ये अंदाजा हुआ
कैसे ढल जाती है ठंडक आग में

2

फूल, तितली, महक, हवा लिक्खें
आपको ख़त में और क्या लिक्खें

क्या हुई वो बहार की आमद
क़ाफ़िला वो कहाँ रुका लिक्खें

क्या कुसूर आपका नहीं कोई
क्या है मेरी ही हर ख़ता लिक्खें

गर ख़ता मुझ से हो गई कोई
मेरे हक़ में हो जो सज़ा लिक्खें

दिल में था जो वही कहा मैंने
आपको गर बुरा लगा लिक्खें

सम्पर्क: म.नं. 52/74ए-18, गली नं. 22, नई बस्ती, आनंद पर्वत,
नई दिल्ली-110005, मो: 9868244288
ई-मेल: ghazal.shashikant@gmail.com

काव्य निधि

भानुमित्र की दो ग़ज़लें

1

कुछ हाँफते मिले कुछ खाँसते मिले
जीने की राह में सब दौड़ते मिले

मासूम आँखों में थी दर्द की खुशी,
वे बालपन में बर्तन माँजते मिले,

फिर भी दुलारें गालों को हथेलियाँ
ममता के हाथ पत्थर तोड़ते मिले

जो जूझते रहे दिन में यहाँ-वहाँ
उस के लिए वही निशा जागते मिले

अपने परों को जो नहीं खोलते कभी
अपनी जमीन पर वे रेंगते मिले

घर से निकल पड़े हम धूप के लिए
पर रास्ते भी हम को काँपते मिले

2

दोस्तों से नहीं दुश्मनों से बना हूँ मैं
इसलिए दोस्तों में बुरा ही रहा हूँ मैं

मेरे हाथों ने चलना सिखाया है पाँवों को
गिर गया था कई बार फिर भी उठा हूँ मैं

करना ही है जो शासन तो मेरे हृदय पे कर
देखना हर कदम संग तेरे रहा हूँ मैं

व्यक्त की ही नहीं उसने कोई इच्छा कभी
यदि लुटा हूँ तो फिर प्यार ही में लुटा हूँ मैं

हर पुरस्कार इक दासता का ही रूप है
जो झुका हूँ तो सम्मान सम्मुख झुका हूँ मैं

ऐ गजल यों तो सीमा नहीं है तेरी मगर
सरहदों पर तेरे वास्ते ही खड़ा हूँ मैं

❍❍❍

सम्पर्क: 1-द-8, नन्दनवन, जोधपुर-342008, फोन: 0291-2751354

पनघट-पनघट प्यास भी...

जय चक्रवर्ती

बादल दोहराते रहे, यूँ अपना इतिहास।
सागर-सागर बारिशें, मरुस्थल-में प्यास।।

पानी तक पहुँची नहीं, पानी की अरदास।
पानी की मज़बूरियाँ, थीं पानी के पास।।

पानी बिन प्यासा मरा, पंछी पानीदार।
पानी-पानी हो गया, पानी का बाज़ार।।

पानी के आधिपत्य में, था भूगोल-खगोल।
पानी ने माँगा कहाँ, कब अपना मोल।।

दुनिया जब करने लगी, पानी का व्यापार
पानी रोया फूटकर, अपनी दशा निहार।।

पानी संकट पर इधर, थी संसद गमगीन।
राजमार्ग पर थे उधर, पानी के कालीन।।

दुनिया-भर के रंग थे, यूँ पानी के संग।
पानी था फिर भी मगर, अंग-अंग बेरंग।।

प्यासे पनघट ने लिखा, जब पानी का नाम।
पानी-पानी में हुआ, पानी पर संग्राम।।

धरती, सागर, बदलियाँ, सबकी है प्यास।
सबके अपने दर्द के अंतहीन अनुप्रास।।

प्यासा भी लाचार था, पानी भी लाचार।
पानी पर भारी पड़ा, पानी का बाज़ार।।

पनघट-पनघट प्यास थी, दरिया-दरिया रेत।
मरते पानी ने कहा, पगले अब तो चेत।।

दर्द एक जैसे मगर, अलग-अलग अहसास।
हमने तो पानी लिखा, उसने बाँची प्यास।।

अंतहीन बरबादियाँ, हैं पानी को याद।
पानी की इस पीर का, कौन करे अनुवाद।।

जीवन सारा बन गया, एक चिरंतन प्यास।
मन के मरुस्थल में कहीं, छिपा रहा मधुमास।।

❍❍❍

सम्पर्क: एम-1/149, जवाहर विहार, रायबरेली-229010,
मो: 9839665691

मदन देवड़ा की दो कविताएँ

दर्द

दर्द
क्या जलन है,
रूदन है, घुटन है
नहीं...नहीं
वह तो संवेग है,
अनुभूतियों की
पुलकन का।
और... जब भी मैं
इसमें लिप्त हो
ढूँढता हूँ स्वयं को
तब अनुभूति होती है,
एक अलौकिक सुख-बोध की।
और मेरी प्रज्ञायें
पुनः-पुनः पूछती हैं मुझसे
दर्द,
क्या सचमुच ही
जलन है, रूदन है, घुटन है

सवेरा

जाने क्यों

जाना, अजाना लग रहा है।

अब–

देखता हूँ सिर्फ़।

बूढ़ी रात के

छितराये मेघों में

छिपा चाँद।

भ्रम की–

फिसलती

अधेड़ चाँदनी को

सफेद बालों को

उखाड़ रहा है।

❍❍❍

सम्पर्क: मालीखेड़ी मार्ग, तराना-45665 (जि. उज्जैन), म.प्र.,
मो: 9752045248

जनार्दन मिश्र की दो कविताएँ

परिस्थिति वश

धृतराष्ट्र!
तुम युद्धक्षेत्र में तो
नहीं जा सके
आखिर जाते कैसे?
तुम्हारी आँखें जो बाधक थीं
पर युद्धक्षेत्र की सारी हक़ीक़तें
संजय से सुनते रहे
ऐसे में अपने पुत्रों और
संगे-संबंधियों के मारे जाने
का वृतांत सुनकर
आँसू के घूँट इस कदर
पीते रहे
कि तुम्हारा सारा क्रोध
अंदर ही अंदर
वज्र बन गया
तभी तो स्नेहिल भाव दिखाते हुए
लौह मूर्ति को भीम समझकर
अपनी छाती से लगाकर
इतने जोर से दबाया
कि लौहमूर्ति
इस कदर चिपक गई
कि असल भीम होते
तो भगवान जाने
उनकी क्या गति होती

सम्पर्क: 1897/17, गोविंद पुरी एक्सटेंशन, कालकाजी, नई दिल्ली-110019, मो: 9953950778

यकीनन!
जो परिस्थिति वश
गलतियों का विरोध करने के बजाय
अपनी क्रोधाग्नि को पीता रहता है
समय आने पर
उसकी क्रोधाग्नि
बदला लेने से नहीं चूकती।

अतीत से

भगीरथ!
तुम्हारी कठिन तपस्या से
इस कदर द्रवीभूत हुई
कि धरती पर उतरने को तैयार हो गई
पर जैसे ही तुम्हें पता चला
कि मेरा वेग इतना प्रचंड है
कि धरती मुझे नहीं सँभाल पाएँगी
मैं सीधे पाताल लोक में समा जाऊँगी
तुमने शिव की साधना
इतने तन-मन से की
कि शिव ने मुझे
अपनी जटाओं में उलझा दिया
पर तुम्हारे अनुनय-विनय पर
इतना छोड़ा
कि धरती पर मैं उतरी
और तुम्हारे पूर्वजों के साथ-साथ
अनगिनत जीवों को तारती हुई
समुद्र में समा गई
हालाँकि तुम्हारी तपस्या से

धरतीवासियों के तन-मन को
पवित्र करने के लिए
मैं धरती पर आई
पर यहाँ के लोगों ने
अब अपने क्षुद्र आचरण से
मुझे इतना प्रदूषित कर दिया है
कि बिना साफ किए
वे भी मेरा जल नहीं पी सकते
अब तो लोग
शिव की जटाओं को भी
कतरने लगे हैं
ऐसे में कौन रोक पाएगा
मेरा प्रचंड वेग
भगीरथ! तुम्हारी तपस्या तो
इतनी प्रबल थी
कि लोग मुझे भी
भागीरथी के नाम से पुकारने लगे
पर लोगों ने उसी शिव का मान नहीं रखा
जिस शिव के प्रताप से
मैं धरती पर ठहरी
यकीनन!
जो अतीत से सबक नहीं लेता
वह काल के मुँह में
समय से पहले ही
समा जाता है।

❍❍❍

दोहे

डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल

एक, एक ग्यारह बने, करते नहीं विचार।
एक अकेले को मिला, कब सारा संसार।।

राम सरीखा धैर्य जब, रख पाएँगे लोग।
पूजा होगी बस तभी, देव लगाएँ भोग।।

मौसम का व्यवहार यों, ज्यों मानस की जात।
गरमी में सरदी पड़े, सरदी में बरसात।।

मात्र स्वार्थवश जुड़ रहा, पिता-पुत्र संबंध।
'अर्थ' निकालें मध्य से, मिलने पर प्रतिबंध।।

खुदगरजी का छा गया, सकल विश्व में इत्र।
भाई-भाई शत्रु हैं, दुश्मन-दुश्मन मित्र।।

उगे दहशतों के विटप, महानगर औ' गाँव।
शांति और सद्भाव की, चले ढूंढने छाँव।।

जिसके मन में आ गया, थोड़ा-सा भी खोट।
आहट भी पहुँचा रही, उसके मन को चोट।।

कौओं का होने लगा, जब भू पर सम्मान।
अर्थ रखेंगे क्या भला, कोयल के मधुगान।।

आजमा रहे हादसे, छलना करें फरेब।
खाली-खाली हो गयी, सद्भावों की जेब।।

आग लगी है शहर में, जश्न मनाते काग।
लोग तमाशाई हुए, अपने-अपने दाग।।

ऊँचा सुनती खिड़कियाँ, बहरे-बहरे द्वार।
विजयी हो गयी चुप्पियाँ, हार गयी मनुहार।।

अक़्ल दिला दे रोटियाँ, सोच पिला दे नीर।
राम कसम चौथाई हो, इस दुनिया में पीर।।

हवा टुकड़ियों में बँटी, खंड-खंड सी धूप।
नयी सदी में देखिए, जीवन का नव-रूप।।

प्लास्टिकी व्यक्तित्व है, प्लास्टिकी है प्यार।
असली तो नकली बना, नकली असली यार।।

❍❍❍

सम्पर्क: 785/8, अशोक विहार, गुरूग्राम-122006 (हरि.),
मो: 9210456666

संजीव निगम के दो गीत

साथ हमारा चंद्रग्रहण सा

साथ हमारा चंद्रग्रहण सा
बस कुछ पल की माया है।

एक दूजे में घुलती मिलती
एक दूजे की छाया है।

घूम रहे थे अपनी अपनी
परिधि पर हम अलग अलग
अलग अलग थी चाल हमारी
और रंग थे अलग अलग
अनजाने आकर्षण कैसा
खींच समीप हमें लाया है।

अंतरिक्ष के महानगर में
अनजानों से भरे सफर में
पृथ्वी चाँद मुसाफिर जैसे
दूर दिशा में, दूर डगर में।

पास लाने किसी कामदेव ने
छिपकर तीर चलाया है

वह षड्यंत्र, या आकर्षण,
या किस्मत की मजबूरी,
हम दोनों आए करीब पर
तन और मन से दूरी।

एक दूजे पर पड़ा हुआ बस
अपना अपना साया है।

ये भी कैसा साथ हमारा
जिससे बने अँधेरे हैं
प्यार की राह की रोशनियों
पर हमीं ने डाले घेरे हैं।

बस कुछ साथ और फिर दूरी
अंबर ने हुकुम सुनाया है।

परिवर्तन

दुनिया बहुत बदल गयी है मेरी जान,
और मैं भी, तुम भी...
मैंने अब सीख लिया है अकेले
कॉफी पीना,
सुविधाओं के घने जाल के बीच,
एकाकी जीवन जीना।

तुम भी तो अब ठोस सच्चाई में
जीती हो।

सम्पर्क: डी-204, संकल्प-2, क्लासिक कम्फर्ट होटल के सामने,
पिम्परी पाड़ा, फिल्म सिटी रोड़, मलाड (पूर्व), मुंबई-400097,
मो: 9821285194

जज़्बाती बातों को वक़्त
नहीं देती हो।

लैपटॉप के साथ जी रहे सारे यार,
और मैं भी, तुम भी।

तुमसे क्या, अपनी तो खुद से भी नहीं
मुलाक़ात,
अच्छा है के तुम भी समझती हो
सारे हालात,
तुम भी तो मसरूफ़ हो उनती
जितना कि मैं हूँ,
ये तो कहो कि फिर भी अपनी
हो जाती है बात,

फेसबुक पर हैं अपने सब यार,
और मैं भी, तुम भी।

ऐसे ही अडजस्ट हमें करते ही
रहना होगा।

यही हमारे प्यार-प्रेम का सच्चा
बंधन होगा।

दुनिया की दौलत को पहले अपने वश
में कर लें,
तब तक बस पत्थर बन कर
रहना होगा।

शनिवार की रात को मिल जाते हैं सारे यार,
और मैं भी, तुम भी।

❍❍❍

काव्य निधि

गीत

डॉ. राजेंद्र मिलन

तुम सुबह हुईं/तुम शाम हुईं/दोपहर तुम्हारे नाम हुई।
क्षण-क्षण प्रतिपल/कण-कण अविरल
चौंसठ पल आठों याम हुईं।

हम तुम्हें ढूँढते रहे भीड़ बाजारों में
हम आर-पार मँझधार फिरे गालियारों में
रेस्तराओं-होटल-क्लब-सिनेमा-मालों में
हर चैनल पर हर रोज छपे अखबारों में
तुम चुभन हुईं/तुम तपन हुईं/गंतव्य लक्ष्य परिणाम हुई।

तुममें हमको प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी मिली
कनुप्रिया उर्मिला शाकुन्तल मीरा पगली
या पंत निराला बच्चन की कल्पना सजल
हाड़ा भीम पद्मिनी कल्पना कृष्णकली
तुम तरल हुईं/तुम सरल हुईं/ध्रुवपद लय-गति विश्राम हुईं।

तुमको होठों पर बिठलाएँ या पलकों पर
अंतर में नयनों में या गुम्फित अलकों पर
मस्तक के कारागृह की तुम बंदिनी चपल
भय है कोई ले जाए न तुम्हें मुचलकों पर
तुम क्षार हुई/तुम सार हुईं/तुम मृदुल लब्धि आयाम हुई।

आओ हम मिलकर नए क्षितिज का सृजन करें
अनछूए परिप्रेक्ष्यों पर सोचें मनन करें
हम बुनें विश्वबंधुत्व प्रेम रंग में डूबे
चिंताओं के भ्रम टीलों का उत्खनन करें
तुम हवन हुईं/स्तवन हुईं/चारों पावन सुरधाम हुई।

❍❍❍

सम्पर्क: मिलन मंजरी, आजाद नगर, खंदारी, आगरा-282002,
मो: 9808600607, ई-मेल: rajendramilan.milan@gmail.com

पुष्पिता अवस्थी की दो कविताएँ

संवेदना की जड़ें

मुझमें
मेरी तरह
बचे हो तुम
जैसे— वृक्षों में जंगल
जल में पारदर्शिता
अपने भीतर
महसूस होती है—
तुम्हारी संवेदना की जड़ें

अवतरित करती हूँ तुम्हें
स्मृति की देह में
जहाँ से,
प्रवेश करते हो तुम
मेरी चेतना के सर्वाङ्ग में
निज सर्वस्व के साथ

अनुभूति में
उतरने लगती हैं—
उष्म तासीर
संजीदगी के साथ
जैसे— सूर्य रश्मियाँ झिलमिलाती हैं-
जलाशय में

सम्पर्क: निदेशक, हिंदी यूनिवर्स फाउंडेशन, पो. बॉ. 1080, 1810 के बी अलकमार, नीदरसलैंड, ई-मेल: info@pushpitaawasthi.com

तुम्हारी आँखों में
सोती हूँ—अपनी नींद

तुम्हारे अधरों में
रखती हूँ—अपनी बातें

तुम्हारे चेहरे पर
देखती हूँ—अपना आत्मसुख

तुम्हारी लिखावट में
होती है—मेरी संवेदना

तुम्हारे शब्दों में
होते हैं— मेरे संकल्पों के अर्थ

तुम्हारे सपनों में
होते हैं— मेरी खुशियों के घरौंदे

तुम्हारे रंगों में
होती है—मेरे मन की हल्दी

तुम भी
कर सकोगे—यह सारी यात्राएँ—

मेरी आँखों से
देखो— अपने को
(जैसे— मैं देखती हूँ—तुम्हें)
मेरी तरह सुनो— खुद को
(जैसे— मैं सुनती हूँ—तुम्हारा मन)
मेरी तरह जियो— मेरा सर्वस्व
(जैसे— मैं जीती हूँ—तुम्हें-तुम्हारी तरह)

यात्रा-सुख

गहरी रात गये
सो जाती है—जब
पृथ्वी भी
अपने हर कोने के साथ
पत्तियाँ भी
बंद कर देती है सिहरना
सृष्टि में
सुनायी देने लगती है—
सन्नाटे की साँसें
स्थिरता भी आकार
लेने लगती है स्तब्धता में

सोयी पृथ्वी में
जागती है—सिर्फ रात
और चमकते हैं-नक्षत्र

नींद के बावजूद
नहीं आते हैं सपने-उसे
करती है-तब
वह कोमल संवाद—

मैं जीती हूँ तुम्हें
उसी में
जीती हूँ खुद को

मैं सुनती हूँ तुम्हें
पर सुनायी देती है—
अपनी ही गूँज

मैं देखती हूँ खुद को
जब भी देखना होता है-तुम्हें

मैं देखती हूँ तुम्हारी प्रतिक्षा
अपनी प्रतीक्षा की तरह

मैं चखती हूँ-तुम्हारी विकलता
अपनी असह्य व्याकुलता की तरह

मैं स्पर्श करती हूँ-तुम्हारी आत्मा का अनन्त
अपनी आत्मा की अंतहीन पर्तों में

कि मैं भी करने लगती हूँ-प्रदक्षिणा
प्रणय-पृथ्वी की
स्मृतियों में
तुम्हारे साथ होकर

○○○

ला ट्रोब विश्वविद्यालय में हिंदी कार्यशाला

विवेक गौतम की दो कविताएँ

बाजार में हो

बाज़ार में हो
बाज़ार में चमक है
तुम्हारी आँखों में नहीं।

हर तरफ सामान हैं
सामनों की कीमतें हैं
कीमतों की आवाज़ें भी हैं
तुम्हारी कोई कीमत नहीं
और...
आवाज़ भी

बाज़ार भी नहीं है तुम्हारा
खरीददार भी नहीं

तुम जो अपनी कीमत लगाते हो
बाज़ार नहीं लगाता

यदि टिकना चाहते
बिकना चाहते हो
बाज़ार में
तो हल्के हो जाओ

भारी शब्दों, कपड़ों और विचारों को
उतार फेंको

छोड़ दो मार्के में दलाल
शरमाना छोड़कर
जो मिले जैसा मिले
सवार हो जाओ उसकी पीठ पर
फिर कंधों से होते हुए
कूद पड़ो दूसरों के सिर पर

और...
मौका मिले तो काट डालो
भर लो जेबें

कामयाबी की बोतल का ढक्कन खोलो
नए पार्टनर बनाओ
बाज़ार मुस्कराने लगेगा
सही कीमत लगाने लगेगा

तुम तैयार तो हो बिकने को
बाज़ार किसी को निराश नहीं करता।

जहाँ सड़कें नहीं पाई जातीं

जहाँ सड़कें नहीं पाई जातीं
रास्ते तो पाए जाते हैं
और ज़िंदग़ियाँ भी

जहाँ समाप्त हो जाता है शोर
वहीं तो कुछ कहती हुई
पाई जाती है प्रकृति

सम्पर्क: डी-61, गली नं. 2, पूर्वी विनोद नगर, दिल्ली-110091,
फोन: 9911170832

कानों को खोलोगे
खत्म करोगे आवाज़ों को
तभी तो सुन पाओगे
हवाओं के गीत, बातचीत
पेड़ों की पत्तियों का संगीत
झरनों का नाद

अपने से बाहर आओगे
तभी देख पाओगे बादलों के रंग
बारिश में भीग पाओगे

दफ्तर की व्यस्तता से बाहर कूदोगे
तभी तो दिखाई देगा घर
परिवार और रिश्ते
जन्म देने वाली माँ

रोशनी के बंद होने से
नींद नहीं आ जाती
काम करता रहता है दिमाग
पलकों के बंद होने के बाद भी

सोना है...
तो रात को समझो, पकड़ो
तभी समझ में आएगा चाँद
और चाँदनी भी

हवा में उड़ते रहोगे
तो कैसे जानोगे दर्द
पृथ्वी का

कुछ पलों का
आराम भी जरूरी है
तुम्हारे खुद के लिए।

❍❍❍

7 दिसंबर, 2017 को बक्रिंघम पैलेस, लंदन में हिंदी लेखन, हिंदी साहित्य की सेवा और सामुदायिक एकजुटता की गतिविधियों के लिए ब्रिटेन के प्रिंस चार्ल्स के हाथों श्री तेजेंद्र शर्मा को 'मेम्बर ऑव द ऑर्डर ऑव ब्रिटिश एम्पायर' सम्मान से अलंकृत किया गया। उन्होंने कहा कि "**ब्रिटेन की महारानी द्वारा किसी हिंदी लेखक को उसके साहित्यिक अवदान के लिए सम्मानित किया जाना एक ऐतिहासिक घटना है। इससे हिंदी को वैश्विक भाषा बनने में बल मिलेगा।**"

कारोबार

मनोज कामदेव

पिघल-पिघल कर मोम सी, बैठी हूँ चुपचाप।
काश जिगर की थाप को, सुन लेते पदचाप।।

अँधियारे की ओट में, सुनी आज आवाज।
नोंच रहा कोई वहाँ, इक चिड़िया को बाज।।

आने वाली नस्ल का, बड़ा अलग अंदाज।
जरा-जरा सी बात पर, गुस्सा करते आज।।

आँखों में आक्रोश है, और तल्ख आवाज़।
लगता अपना खून है, अपनों से नाराज़।।

कैसे बतलाऊँ किसे, गूँगी अपनी पीर।
सूखे नयनों में सदा, दिखे पीर गंभीर।।

डेरों में हथियार हैं, थानों में व्यापार।
कितना उलटा हो गया, देखो कारोबार।।

❍❍❍

सम्पर्क: फ्लैट-008, गौड़ रेजिडेंसी, चंदर नगर, गाजियाबाद (उ. प्र.) 201011, मो: 9818750159

विगत

सरिता शर्मा

इस जनम हर पुण्य निष्फल ही रहेगा
उस जनम के पाप अब तक साथ हैं।

एक मन था भावना की भूमि जैसा
चाह का इक बीज अंकुर हो गया
पत्थरों का फूल सा बिखरा समर्पण
देवता अकलंक निष्ठुर हो गया
इस जनम वरदान कैसे मिल सकेगा
उस जनम के शाप अब तक साथ हैं

उम्र सागर की सखी नदिया सरीखी
मरुस्थलों की रेत बन जलती रही
कामना में बादलों की छाँव थी पर
साँस बंजर खेत बन जलती रही
इस जनम सम्भावना कोई नहीं है
उस जनम के ताप अब तक साथ हैं।

❍❍❍

सम्पर्क: एक्स-802, आम्रपाली सैफायर, सेक्टर 45, नोएडा (उ.प्र.)
मो: 9810246322

कुलदीप सलिल की दो ग़ज़लें

एक

दिल की सियाह राहों से ऐसे गुजर गया
मेरे सवेरे शाम सब रोशन वो कर गया

आहट हुई, खुशबू उड़ी, उजला लिबास था
आवाज़ दे के देखा तो जाने किधर गया

वीरानियों में गूँजती थी खोखली हँसी
खुशहाल एक दोस्त के मैं आज घर गया

परछाईयों के आगे-पीछे भागने लगा
दुनिया लगी सँवरने तो इनसाँ बिखर गया

राहे-हयात में मिला इक बार ही मगर
मंज़िल का नक्शा आँखों में रोशन वो कर गया

फिर आज कत्लगाह में है माहौल जश्न का
आशिक वतन का लगता है फिर कोई मर गया

मेरी-तुम्हारी बात क्या ये कितना इश्क का
जिसके भी घर गया बरबाद कर गया

तेरा तो इक-इक लफज में हीरों में तोलना
लेकिन हमारा दौर ही शायद गुजर गया

सम्पर्कः 1770, औट्म लाईन, जी.टी.बी नगर, किंग्जवे कैम्प,
दिल्ली-110009, मोः 9810052245,
ई-मेलः poetkuldipsalil@gmail.com

जाता रहा मरीज तो मैं चौंका सोचकर
ये क्या हुआ, दुआओं से मेरी असर गया

हँसता-हँसाता आता है वो याद आज भी
आया साहिल न जाने कब जाने किधर गया

दो

दिल में सोख ख्वाब कोई जब चुपके-से जग जाता है
अपनी हस्ती क्या कहिये आलम को पसीना आता है

प्रीत की पीकर मय कोई जब मस्ती में लहराता है
तेरी कसम उस वक्त हमें तू याद बहुत ही आता है

तपती दुपहरी, धूल-पसीना, भूलके मरना-जीना कोई
देर रात तक फाड़ के सीना मीठी तान सुनाता है

दिल का मर्म वो निकल आयेगा उसको ये मालूम न था
कातिल मेरा अपने किये पे आज तलक पछताता है

काम जनूं का अक्ल करे ये कैसे मुमकिन होना था
आखिरकार इक दीवाने को दीवाना समझाता है

तेरी तबीयत, तेरी सूरत तेरे तौर-तरीके देख
कौन कहे ये भला कि तुझसे अपना पुराना नाता है

पत्थर बरसाती दुनिया में शीशा दिल लेकर कोई
सोया-जागा सलिल अभी तक जख्मों को सहलाता है।

○○○

पंडित सुरेश नीरव की तीन ग़ज़लें

1. कैसे सँभाला जाएगा

दर्द के सूरज को जब लफ़्ज़ों में ढाला जाएगा
तब ग़ज़ल की रूह के भीतर उजाला जाएगा

जानकर ये बात साँसें हँस रही हैं ज़ोर से
ज़िंदगी का मौत के मुँह में निवाला जाएगा

साफगोई की तलब उसको अचानक क्या लगी
देखना हर बज़्म से उसको निकाला जाएगा

आप तो दरिया खुशी का सौंप सकते हैं मुझे
छलनी-छलनी दिल से वो कैसे सँभाला जाएगा

मयकशी में जिसने नीरव पा लिया सारा जहाँ
किस की खातिर अब वो मस्जिद या शिवाला जाएगा।

2. पेड़ वो ढहते नहीं

बात मुँह देखी की कोई हम कभी कहते नहीं
जो सिफारिश का है खेमा उसमें हम रहते नहीं
जो उगा लेते हैं सूरज अपने ही दालान में
वो पराई चाँदनी के आसरे रहते नहीं

फिर उतर जाएँगे चेहरे मौसमों के देखना
जो जमें हैं अपनी जड़ पर पेड़ वो ढहते नहीं

गुम है तनहाई में अपनी और वो खामोश हैं
इक तकल्लुफ बीच में है हम भी कुछ कहते नहीं

सम्पर्क: आई-204, गोविंदपुरम, गाजियाबाद, मो: 9810243966

ज़िंदगी ऐसी गुजारी मौत का डर हट गया
रंगदारी हम किसी की इसलिए सहते नहीं

हम हैं खुद्दारी के सूरज धूप ही ईमान है
अपना साया साथ लेकर हम कभी चलते नहीं

हम हैं तूफानों के तेवर और खुद तूफान हैं
खुश्क दरियाओं में नीरव हम कभी बहते नहीं।

3. सितारों का तू साया कर दे

मुझ पे एहसान तू इकबार तो इतना कर दे
जिसकी पहचान न हो मुझको वो चेहरा कर दे

छाँव में पलकों की, आँसू के समंदर उबलें
धूप के पाँव जलें मुझको वो सहरा कर दे

तीरगी में भी तराशूँगा मैं किरणों के महल
मेरी आँखों में उजाला जो तू अपना कर दे

उनसे ज्यादा कहीं छलनी तो जिगर है अपना
आंसुओं से कोई इस बात की चर्चा कर दे

ऐ बहार अब न उठा पाऊँगा नखरे तेरे
करके बरबाद मुझे आज तू सहरा कर दे

अब ख्यालों में जबाँ चाहतें मुस्काने लगीं
दर पे आँखों के कोई नींद का परदा कर दे

ज़िंदगी और भी एहसास के हो जाए करीब
दिल के जख्मों को ज़रा और तू गहरा कर दे

देखी अल्फाज़ के चेहरों पर ख़्यालों की तपन
इन पे नगमों के सितारों का तू साया कर दे।

❍❍❍

परीक्षा के साइड इफेक्ट

डॉ. अतुल चतुर्वेदी

सार्वजनिक परीक्षाएँ सकुशल संपन्न हो जाएँ और आपको निर्विघ्न नौकरी मिल जाए तो आप अत्यंत भाग्यशाली हैं अन्यथा आवेदन, परीक्षा के बाद रिट, पेपर लीक, गलत प्रश्नपत्र आदि विभिन्न चरण भी अब जुड़ गए हैं। कुछ विद्यार्थी जहाँ परीक्षा का टाइम-टेबिल आते ही बीमार पड़ जाते हैं वहीं कुछ पर्चा बिगड़ते ही इहलीला समाप्त कर लेते हैं। परीक्षा का मारक प्रभाव जहाँ कुछ परिवारों को चिड़चिड़ा, असामाजिक, स्वकेंद्रित कर देता है और स्वार्थी बना देता है।

परीक्षाओं का दौर चल रहा है। परीक्षा से हलकान नौनिहाल और उनके माता-पिता चिंता कातर हुए जा रहे हैं। यूं ऐसा कौन है जो जीवन में कभी परीक्षाओं के दौर से न गुजरा हो। औसत मध्यमवर्गीय भारतीय का जीवन सतत् रूप से परीक्षाओं की प्रक्रिया से गुजरता ही रहता है। कठिन परीक्षा की घड़ियों और उसका चोली-दामन का साथ है। नौकरी मिल जाए तो उसके बराबर रहने की चिंता खाए जाती है और अगर उससे मुक्ति मिल जाए तो सुयोग्य पति या पत्नी की तलाश जारी हो जाती है। इन सबके उपरांत अच्छे से आशियाने का जुगाड़, बच्चों का ढंग के स्कूल में दाखिले का प्रश्न किसी परीक्षा के कठिन चरण से कम नहीं है। क्योंकि आजकल कई तथाकथित स्कूलों में माता-पिता का स्तर देख कर ही बच्चे को दाखिला दिया जाता है। कभी वो इन परीक्षाओं में पास होता है तो कभी फेल। कभी ग्रेस लगती है तो कभी डिक्टेंशन।

आजकल परीक्षाएँ भी हाईटेक हो गयी हैं और परीक्षार्थी भी। गए दिन चिटें बनाने के और कुंजियों को जाँघिए और बुशर्टों में छुपाने के। गुरुजी को मस्का लगाने से अच्छा है बल्यूटुथ अर्थात संचार क्रांति का सहारा लिया जाए। वैसे इस प्रक्रिया में लाठी हमेशा शिक्षक और अभिभावक की उम्मीद की ही टूटती है। प्रायोगिक परीक्षाओं के लिए गुरुजी की सेवा-टहल के दिन अब लद चुके। अब न लैब अस्सिटेंट के नखरे उठाने की जरूरत है, न टीपने की। सीधे योग्य कोचिंग में जाइए और अपना भविष्य सँवारिए... शेष व्यवस्था तो स्वयं कर देगा। इसमें बस कोचिंग की फीस नैतिकता के नाते आपको जमा करानी होगी। इसके बाद निश्चिंतता से सो जाइए और सीधे परीक्षा के दिन बिना मुँह धोए भी आप परीक्षा में शामिल हो सकते हैं। अच्छे नंबर देना तो उसका नैतिक कर्तव्य है। महँगा गिफ्ट, आलीशान होटल में सपरिवार ऐश-आराम आखिर किसलिए भोग रहा है। परीक्षाओं के शुरु होते ही बच्चों के साथ दिक्कतें जरूर बढ़ जाती हैं। वे बेचारे टट्टू की तरह कोर्स का बोझ लादे माँ-बाप की शरण में आ खड़े होते हैं। फिर आरंभ होती है अभिभावकों की परीक्षा की घड़ी। समस्त सामाजिकता और शिष्टाचार त्याग घर में अघोषित कर्फ्यू सा लग जाता है।

सम्पर्क: 380, शास्त्री नगर, दादाबाड़ी, कोटा (राज.) 324009,
मो: 9414178745

गलती से यदि कोई मेहमान आ भी गया तो बेचारा ग्लानिबोध से ग्रस्त होकर बैरंग रवाना होने में भी भलाई समझता है। दादा-दादी एक कोने में ऐसे दुबके से पड़े रहते हैं जैसे मानो ग्रहणकाल में कष्ट निवारण हेतु भगवद् भजन कर रहे हो। टीवी की स्क्रीन पर धूल की परतें जम जाती हैं। अचानक दलिए और खिचड़ी के पथ्य की माँग बढ़ जाती है। और बच्चे तो मानो पॉलीथीन का खाली बैग हैं जिसमें ठूँस ठूँस कर ज्ञान के अलग-अलग विषयवार पैकेट डाले जा रहे हैं। ले, जल्दी-जल्दी पचा और कॉपी पर उगल। और हाँ... देख ढंग से कॉपी कर ही उगलना एक भी छींटा इधर-उधर न जाने पाए वरना मैडम नंबर काट लेगी। बच्चा सावधानीपूर्वक सबक याद करता है और कुशलता से परीक्षा के दिन परोस आता है। जिसका परोसने का ढंग जितना सुंदर है वो उतना ही मेधावी है। समय बदला है सोचने का नजरिया बदला है हमारे जमाने में बाहर देख लेने की धमकी ही पर्याप्त असर करती है। अब विद्यार्थी गुड़गाँव और अमेरिका से प्रभावित होकर सीधे ही कपाल क्रिया करने में विश्वास रखते हैं। इस दृष्टि से परीक्षकों के लिए कठिन परीक्षा की घड़ी है।

सार्वजनिक परीक्षाएँ सकुशल संपन्न हो जाएँ और आपको निर्विघ्न नौकरी मिल जाए तो आप अत्यंत भाग्यशाली हैं अन्यथा आवेदन, परीक्षा के बाद रिट, पेपर लीक, गलत प्रश्नपत्र आदि विभिन्न चरण भी अब जुड़ गए हैं। कुछ विद्यार्थी जहाँ परीक्षा का टाइम-टेबिल आते ही बीमार पड़ जाते हैं वहीं कुछ पर्चा बिगड़ते ही इहलीला समाप्त कर लेते हैं। परीक्षा का मारक प्रभाव जहाँ कुछ परिवारों को चिड़चिड़ा, असामाजिक, स्वकेंद्रित कर देता है और स्वार्थी बना देता है। वहीं कुछ परिवार अचानक मिलनसार, बहिर्मुखी, उदार हो जाते हैं। संभावित परीक्षकों से मधुर संबंध बनाके निकम्मी औलादों को उत्तीर्ण कराने का मोह उनमें सौम्यता की यकायक वृद्धि कर देता है। बहरहाल विद्यार्थी तो मुक्त है। वो या तो नेट पर चैटिया रहा है या नशे में धुआँ उड़ा रिया है। माँ-बाप अपने हौसलों से उनके भविष्य के चूल्हे में आग फूँकने में लगे हैं। भले ही उनके सपनों के संतूर का यह अलाप कोई सुने या नहीं।

❍❍❍

काव्य निधि

गंगा का वरदान

अनिता उपाध्याय

माँ ने माँगा गंगा से, बोली सुंदर बिटिया दो।
माँ ने पूजा गंगा को, बोली प्यारी बिटिया दो।

जितना जल तेरे में माँ, उतनी उसको खुशियाँ दो।

बाँहें मैं फैलाए हूँ, आँचल अपनी बिछाई हूँ,
मेरी ममता की आँचल में प्यारी नन्हीं गुड़िया दो।

माँ ने माँगा गंगा से बोली सुंदर बिटिया दो।
जितना जल तेरे में माँ, उतनी उसको खुशियाँ दो।

गंगे माँ ने भर दी गोदी, आँचल में किलकारी गूँजी,
तरूण सुंदरी की शोभा से माँ की बगिया महक उठी।

माँ ने बोला गंगे को, तेरी यह वरदान है माँ,
बिटिया मेरी आँचल में, महिमा अपरंपार है माँ,
मेरा आशीर्वाद है माँ, गंगे का वरदान है माँ।

माँ ने माँगा गंगा से, बोली सुंदर बिटिया दो।
जितना जल तेरे में माँ, उतनी उसको खुशियाँ दो।

सम्पर्क: हाऊस नं. 304, गौड़ गंगा-2, सेक्टर-4, वैशाली-201010, गाजियाबाद

❍❍❍

बनना किस्सागो का व्यंग्यकार

दिलीप तेतरबे

> *साहब, गजब बात करते हैं आप भी। सर्वज्ञता जी को तो भगवान जी भी जानते और मानते हैं। उनका उनसे डायरेक्ट कनेक्शन है। वे जब ध्यान लगाते हैं तो त्रिदेव को अपना काम-धाम त्याग कर उनके मन मंदिर में चले आना होता है-ऐसा तो वे बताते हैं। रोज टीवी चैनल पर भी सर्वज्ञता जी अवतरित होकर इस ध्यान-योग की बात बताते ही हैं। और, सुना है कि आपको भी ध्यान-योग के माध्यम से ही व्यंग्य लिखने का पॉवर मिला है। आप अपने पॉवर का दुरुपयोग करते हैं कि नहीं?*

किस्सागो जब भी मेरे पास आता तो उसे देख कर मेरा मन प्रसन्न हो जाता था। वह सदा निश्चल मुस्कान बिखेरता रहता था। लेकिन, उस दिन जब वह आया तो उसका चेहरा मुरझाया हुआ था। जरा डरा-डरा सा दिख रहा था। मैंने उसे देखते ही पूछा, ''क्या हुआ किस्सागो भाई, जरा नरम दिख रहो हो? तुम्हारी हँसी कहाँ चली गयी? घर-परिवार-गाँव में कुशल-मंगल तो है?''

''साहब, गाँव में कुशल और मंगल दो भाई थे जो अब असम के किसी ईंट भट्ठे में काम करने गए हैं और सुना है कि ईंट के साथ वे भी झुलस-झुलस जाते हैं। एक सुकोमल भी था जो दिल्ली की झोपड़पट्टी में रहता हुआ कठोर श्रम करता है और अब टीबी का बड़ा योग्य मरीज है। मेडिकल कॉलेज के छात्र उसे किताब की तरह पढ़ते हैं ताकि दूसरे किसी टीबी मरीज को इस रोग से बचाया जा सके। शायद, कोई दवा बनेगी ताकि गाँव के लोग गाँव में ही रह पाएँ और टीबी से बचे रहें। एक ज्ञानदेव भी था, जो कभी स्कूल नहीं गया था लेकिन आज कोलकाता में एक स्कूल में चपरासी हो गया है और उसकी बूढ़ी माँ अकेली गाँव में उसकी राह तकती रहती है। किस-किस का हाल बताऊँ। कोई अपने नाम के अनुरूप नहीं रह गया है, साहब, मैं भी नहीं। मैं तो आपका पुराना परिचित किस्सागो हूँ। लेकिन अब किस्सागो कहाँ रह गया हूँ। यूँ ही झकता-बकता-झल्लाता रहता हूँ। कभी-कभी मन करता है कि अपना सिर फोड़ लूँ तो कभी गरियाने का मन करता है, अपने भाग्य के दुर्भाग्य हो।''

''अरे भाई किस्सागो, तुम तो एक अच्छे किस्सागो हो। किस्सा करना तुम्हारा पेशा है। इसे मत त्यागो। क्रोध और क्लेश से मुक्त हो कर किस्सागो ही बने रहो।''

किस्सागो ने कहा, ''साहब, किस्से तो सच से भरे होते हैं। मेरे दादा जी साँच सरोवर भी सत्य किस्सा ही बयाँ करते थे। बापू

सम्पर्क: संपादक 'अनवरत', 423-न्यू नगरा टोली, राँची-834001,
मो: 9304453797

साँच सोची भी वैसे ही थे। मैं यानी आपका सत्यव्रत किस्सागो अपने दादा, अपने बापू की तरह ही सत्य किस्से सुनाता हूँ, लेकिन न जाने कैसा जमाना आ गया है कि कोई सच सुनना ही नहीं चाहता। गाँव के लोग भी मुझे मना करते हैं कि मैं सच्चे किस्से न सुनाया करूँ। खैर, आज मैं कुछ खास बात से आपके पास आया हूँ। साहब, मेरे गाँव में महानगरवासी ग्राम्यांचल समाजसेवी श्री सर्वज्ञाता 'देहाती' जी कभी-कभी गाँव में दर्शन देते हैं। जब-जब वे मुझे दर्शन देते हैं तो मुझे बहुत डाँटते-फटकारते हैं। कहते हैं कि मैं उनके किस्से सुनाता हूँ। जिनसे उनकी बदनामी होती है। फिर ऐसी आँख दिखाते हैं कि लगता है कि मैं भस्म हो जाऊँगा। सो साहब, आप मेरे लिए एक व्यंग्य, सर्वज्ञाता जी पर लिख दें। सुनते हैं कि वे व्यंग्य से भयभीत होकर दुम दबा लेते हैं।''

मैंने किस्सागो से बड़ी विनम्रता के साथ कहा, ''लेकिन मैं श्री सर्वज्ञाता जी को जानता ही नहीं तो मैं उन पर व्यंग्य कैसे लिख सकता हूँ? जरा उनके बारे में बताओ, तो मैं कोशिश करूँगा।''

''साहब, गजब बात करते हैं आप भी। सर्वज्ञाता जी को तो भगवान जी भी जानते और मानते हैं। उनका उनसे डायरेक्ट कनेक्शन है। वे जब ध्यान लगाते हैं तो त्रिदेव को अपना काम-धाम त्याग कर उनके मन मंदिर में चले आना होता है-ऐसा तो वे बताते हैं। रोज टीवी चैनल पर भी सर्वज्ञाता जी अवतरित होकर इस ध्यान-योग की बात बताते ही हैं। और, सुना है कि आपको भी ध्यान-योग के माध्यम से ही व्यंग्य लिखने का पॉवर मिला है। आप अपने पॉवर का दुरुपयोग करते हैं कि नहीं?''

''अरे किस्सागो, यह क्या कह रहे हो? ध्यान-योग से मन स्वस्थ होता है। अस्वस्थ थोड़े ही। मैं तो व्यंग्य मानव जीवन की त्रासदियों को देखकर उसके कारकों की करतूतों पर लिखता हूँ। मैं अपनी विधा का दुरुपयोग क्यों करूँगा?''

''यही विचार तो, आपको प्रसिद्ध नहीं बना रहा है, साहब। देखिये, सर्वज्ञाता जी कितना प्रसिद्ध हैं। आप भी प्रसिद्ध होते तो जरूर उनको जानते। उनकी करतूतों को जानते। हर प्रसिद्ध आदमी के पीछे उनकी करतूतें ही होती हैं, कोई औरत नहीं। बदनामी ही किसी के नाम को सुनामी-प्रसिद्धि देती है, साहब, यह मेरा पर्सनल अनुभव है। दु:ख है कि आप मुझसे ही पूछ रहे हैं कि सर्वज्ञता जी क्या हैं, कैसे हैं, अपने पॉवर का कितना दुरुपयोग करते हैं? देखिये, पॉवर का दुरुपयोग ही किसी के सच्चे पॉवर के आकलन का आधार होता है। साहब, आप मेरे लिए, मेरे गाँववासियों के लिए उन पर रिसर्च कर व्यंग्य लिख मारो न, बड़ी कृपा होगी।''

''इसमें तो समय लगेगा, प्यारे किस्सागो। कम से कम एक साल।''

''तब तक तो सर्वज्ञाता जी हमारी सेवा कर, हमें लील जाएँगे और हम यानी उनसे सेवित गाँववासी वस्तुत: शोषित कहलाएँगे। कुछ कम टाइम लो साहब, मैं आपको चाय-पकौड़ी गाँव बुलाकर खिलाऊँगा- सत्यव्रत किस्सागो की चाय-पकौड़ी भर ही औकात है, साहब।''

''चाय-पकौड़ी तो मैं खाता ही नहीं। तेल और चाय मेरे लिए वर्जित है।''

''साहब, सर्वज्ञाता जी भी चाय-पकौड़ी छूते नहीं, लेकिन आप व्यंग्य लिखने में देर करेंगे तो वे गाँव का सारा दूध, दही, घी निचोड़ लेंगे। गाँव में सियार बोलेगा।''

''भाई किस्सागो, सियार क्या बोलेगा?''

''साहब, सियार बोलेगा कि अब ईंट-भट्ठे में काम करने के लिए निकल जाओ, किस्सा सुनने वाले नहीं रहे। जो तुम्हारा किस्सा सुनते थे रोटी की दौड़ में लग गए हैं। जान लो मानुष, तुम्हारी रोटी न हुई, ज़िंदगी हो गयी। और तुम्हारे ज़िंदगी के किस्से, ज़िंदगी से दूर हो गए।''

''तुम तो अभी भी किस्सा ही कह रहे हो, किस्सागो''

''मैं, अभागा हूँ, अपने डी.एन.ए. का मारा हूँ। जब भी बोलता हूँ, लोग कहते हैं-तुम किस्सा कह रहे हो। सच बोल रहे हो। तुम अपना घटिया नाम सत्यव्रत को बदल डालो। यह तुमको ले डूबेगा, वहाँ, जहाँ चुल्लूभर पानी भी नहीं होगा। तपती हुई रेगिस्तानी रेत होगी।''

''यह तो तुम ठीक कह रहे हो, लेकिन तुम किस्सागो हो तो किस्सा कहना तो तुम्हारा धर्म है। तुम उसे कैसे त्याग सकते हो?''

''साहब, मैं किस्सागो-धर्म का त्याग कर किस्सागो से आदमी बनना चाह रहा हूँ। यह तभी संभव है, जब आप सर्वज्ञाता जी पर व्यंग्य लिख कर मुझे और मेरे गाँववासियों को उनकी सर्वग्राही सेवावृत्ति से बचा लोगे। मेरा बेटा जिसे मैंने सत्य शिरोमणि नाम दिया था, उसके नाम का भी मैं ऐफिडेविट करवा कर अब 'मिथ्या प्रेमी' करने का निर्णय ले चुका हूँ। धर्म ही निभाना है तो मिथ्या धर्म ही क्यों न निभाया जाए, जो धरती पर ही स्वर्ग उतार देता है। सत्य बड़ा कष्टदायी है और सत्य के कारण ही सत्यवादियों को सेवित होने का भय बना रहता है। सर्वज्ञाता ही की तरह का हर सक्षम आदमी हम जैसों की सेवा करने वाला ही मिलता है। कहाँ जाएँ हम, जो हम इन सबकी सेवावृत्ति से बच कर, अपने मन की उड़ान भर सकें?''

मुझे किस्सागो की बातें सुनकर उसकी दिली हालत का ज्ञान होने लगा। लेकिन, मैं उसकी क्या और कैसे मदद करूँ यह मेरी समझ में आ ही नहीं रहा था। सो, मैंने किस्सागो से कहा कि वह मुझे सर्वज्ञाता जी का अता-पता बताए।

''साहब, मैं तो गाँव में रहता हूँ और सर्वज्ञाता जी तो किसी महानगर से आते हैं, कुछ घंटों के लिए और हमारी सेवा कर विलोपित हो जाते हैं, जैसे भूत-प्रेत अपनी झलक दिखलाकर सबको भयभीत कर जाते हैं। सर्वज्ञाता जी की खोज तो आपको ही करनी होगी। वैसे, यह जानकारी है मेरे पास कि वे प्रत्येक महानगर में किसी बड़ी-सी कोठी में रहते हैं, और वे एक नहीं अनेक है। सभी सर्वज्ञाता जी की कोठियों का एक ही नाम है-'गरीब भवन', गरीबों की कमाई से जो बनी होती है।''

''अच्छा किस्सागो, यह बताओ कि उनकी सेवा से तुम घबराते-डरते क्यों हो?''

''साहब, मेरे गाँव में कभी कोई आपराधिक वारदात नहीं हुआ। गाँव के सभी गरीब हैं, एक दूसरे के यहाँ चोरी चपाटी करके कया पा लेंगे? लेकिन हाल में हमार पहाड़ी गाँव में सर्वज्ञाता जी ने सड़क बनवा दी, हजारों पेड़ कट गए। पेड़ असंवेदनशील कुर्सियाँ बन गयीं। सर्वज्ञाता जी की सेवा यहीं नहीं रुकी, उन्होंने गाँव में एक थाना भी स्थापित करवा दिया। अब तो समझिये कि हमारी मुर्गियों की भी खैर नहीं है। जंग विलुप्त हुए तो पेड़ों के फलों से भी हम वंचित हो गए। भूख भी समस्या बन गयी है। जंगल हमारा आधा पेट भरता था, वे अब जंगल बस नाम के ही रह गए हैं। अब गाँव से भागकर हम लोग कहाँ जाएँ? साहब, सर्वज्ञाता जी हाल में गाँव से गुजरते हुए धमका गए हैं कि वे अगली बार जब भी आएँगे तो गाँव का और विकास करेंगे, हमारी और सेवा करेंगे। फिर हम सब तो मर ही जाएँगें।''

''लेकिन मेरे व्यंग्य लिखने से सर्वज्ञाता जी की मोटी चमड़ी पर क्या असर पड़ेगा? कुछ इस पर भी प्रकाश डालो किस्सागो।''

''साहब, किस्सागो से प्रकाश की बात न करो, हमसे अँधेरे और अँधेरे की बात करो। ज़िंदगी की नहीं खून-पसीने की बात करो, साहब, ज़िंदगी तो हम बचपन में ही खो देते हैं और जीते हैं, साँस लेते हैं, पसीने से भीगी हुई हवा में। एक बार तो आप मेरे गाँव आये थे न, देखा था कि न अखरा (नृत्य स्थल) में हम गाँववासी कितना नाचा-गाया करते थे? हमारे गाँव के बच्चों को गीत-संगीत सीखना नहीं पड़ता है। वे बाँसुरी से लेकर मांदर (ढोल के तरह के एक वाद्य यंत्र) तक बजा सकते हैं। सब कुछ देख-सुन कर सीख लेते हैं। पुरखों के गीत गा सकते हैं और नए गीत रच सकते हैं। गीत रचने के बाद कोई उसके साथ अपना नाम नहीं जोड़ता। गीत तो गाँव के जीवन से निकलता है, फिर उस पर कोई अपना स्वामित्व कैसे लाद सकता है, साहब? और अब अखरा सूना हो गया है। मांदर को दीमक चाट गए, बाँसुरी भी लापता हो गयी।''

मुझे किस्सागो से हुई इस बातचीत से इस बात का ज्ञान हुआ कि गाँव में थाना बनने से गाँववासियों की मुर्गियों की सुरक्षा का सवाल उठ जाता है। गाँवों में सड़क बनने से जंगल गायब हो जाते हैं। पेड़ असंवेदनशील कुर्सियाँ बन जाती हैं और सीधा-सादा किस्सागो व्यंग्यकार बन जाता है। ○○○

एक खुला पत्र

अशोक स्वतंत्र

> *मुझे मालूम था कि लेखक के रूप में तुम्हारा 'निर्दोष सहाय' का नाम देखकर प्रकाशकों को इसमें निरे दोष ही दिखायी देंगे। फिर सहाय भी असहाय हो जायेगा। मेरा निश्चय इसे किसी भी कीमत पर पाठकों तक पहुँचाने का था। एक नेक विचार अचानक मेरे दिमाग में गूँज गया। पुराने जमाने में गुप्तचर वेश बदलकर दुश्मन की सेना में घुस जाते थे। देश महत्वपूर्ण नहीं महत्वपूर्ण तो संदेश था। सबसे महत्वपूर्ण था कि संदेश उन तक पहुँचा कि नहीं जहाँ पहुँचना था। मैंने भी कुछ ऐसा ही करने की ठान ली। मैंने उस सब प्रकाशकों से तुम्हारी ओर से बदला लेने का भी दृढ़ निश्चय कर लिया, जो तुम्हारे क्रांतिकारी विचार जनता तक पहुँचने से रोक रहे थे।*

हे निन्दनीय व्यक्तित्व,

तुमने लेखक संघ में जो मेरी शिकायत की है कि मैंने तुम्हारी पुस्तक को अपने नाम से प्रकाशित करवाया है, उसी से संदर्भ में मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

तुम्हें याद होगा जब दो महीने पहले तुमने मुझे अपनी पुस्तक के बारे में बताया था। मुझे अभी तक तुम्हारे चेहरे के वे भाव याद हैं जो विकट अभाव में ही किसी की शक्ल पर आते हैं। तुमने कहा था कि तुम्हारी वह पुस्तक देश के बारे में कुछ ऐसी दुर्लभ जानकारी समेटे है कि जिसके प्रकाशन से पूरे देश को लाभ होगा। तुमने बताया था कि इस लेख के लिये तुमने इतनी शोध की थी कि उसके प्रकाशित न होने से क्रोध का बोध होने लगा था।

तुम्हारी शिकायत थी कि तुम्हारे इस दुर्लभ ग्रंथ को सब प्रकाशक दुर्लभ ही रहने देना चाहते थे। देश भर के प्रकाशक षडयंत्र करके बैठ गये थे कि तहलका मचा देने की क्षमता रखने वाला तुम्हारा यह लेख जनता तक ना पहुँचे, ऐसा तुम्हारा मानना था। तुम्हारे अनुसार, तुम्हारे तहलके से वैसा ही प्रभाव हो सकता था जैसा तहलका डॉट काम की करतूत से हुआ था। तुम्हारे अंग प्रत्यंग से, हाव भाव से, रोम-रोम से, हर शब्द और मौन से, दिल से दिमाग से, आँखों की आग से, कपड़ों से चप्पल से, शरीर से, अक्कल से, कुर्ते की सलवटों से, माथे की लटों से, हाथ के थैले से और मुँह में दबाये हुए पान कसैले से, यानि हर चीज से ऐसी झलक मिल रही थी जैसे किसी महिला को नियत तिथि के एक महीने बाद भी प्रसव न हो रहा था, क्यूँकि तुम्हारी वह महान दुर्लभ पुस्तक प्रकाशित नहीं हो रही थी।

तुम्हारा दावा था कि वह पुस्तक प्रकाशित होने के बाद देश में क्रांति होगी और दुनिया में भारत का एक नया ही रूप निकलकर आयेगा। भारत को पूरी दुनिया के लोग अलग ही नजरिये से देखने लगेंगे हालाँकि तुम उसे एक साप्ताहिक अखबार में भी धारावाहिक रूप से छपवाने को तैयार थे, जिसकी वेस्टेज समेत दो सौ प्रतियाँ ही छपती थीं, जो तीन गलियों को भी पार नहीं कर पाती थी।

फिर तुमने मुझसे अनुरोध किया था कि मैं तुम्हारी इस कृति को देखकर उस पर कुछ टिप्पणी करूँ (टिप्पणी माने कहाँ से और कैसे छपवाने का जुगाड़ किया जाय)। और जब तुमने मुझे

सम्पर्क: 473, संगम अपार्टमेंटस (पुलिस लाइंस के सामने), पीतमपुरा, दिल्ली-110034, मो: 9990094040

इस पुस्तक को कौरूलिपि सौंपी तो इसे छपवाने का दायित्व भी मुझ पर ही लाद दिया। तुम्हारे चेहरे के भावों से ऐसा लग रहा था जैसे महाराज दशरथ राज्य का भार राम को सौंप कर निश्चिंत हो रहे हों। मैंने भी उसी भक्ति भाव से यह दायित्व ग्रहण किया। मुझे क्या मालूम था कि तुम्हारे कारण मेरी प्रतिष्ठा पर ग्रहण लग जायेगा।

तुम्हारी उस पुस्तक को मैंने पढ़ा नहीं। मैं डर गया था कि उसे पढ़कर में अपने घर में ही क्रांति न कर बैठूँ। उसकी सुंदर टाइपिंग और मजबूत जिल्द देखकर कोई भी अंदाजा लगा सकता था कि इसका लेखक कोई टाइपिस्ट ही हो सकता है जिसका कोई नजदीकी मित्र जिल्द चढ़ाने का काम करता हो। मैं भारत के विकास में अपने योगदान का स्वर्णिम अवसर जानकर उस महान कृति को छपवाने के लिए ऐसे निकल पड़ा जैसे ननिहाल से लौटकर भरत अपने भाई राम के प्रति भक्ति दिखाने के लिये वन में निकला था।

मुझे मालूम था कि लेखक के रूप में तुम्हारा 'निर्दोष सहाय' का नाम देखकर प्रकाशकों को इसमें निरे दोष ही दिखायी देंगे। फिर सहाय भी असहाय हो जायेगा। मेरा निश्चय इसे किसी भी कीमत पर पाठकों तक पहुँचाने का था। एक नेक विचार अचानक मेरे दिमाग में गूँज गया। पुराने जमाने में गुप्तचर वेश बदलकर दुश्मन की सेना में घुस जाते थे। देश महत्वपूर्ण नहीं महत्वपूर्ण तो संदेश था। सबसे महत्वपूर्ण था कि संदेश उन तक पहुँचा कि नहीं जहाँ पहुँचना था। मैंने भी कुछ ऐसा ही करने की ठान ली। मैंने उस सब प्रकाशकों से तुम्हारी ओर से बदला लेने का भी दृढ़ निश्चय कर लिया, जो तुम्हारे क्रांतिकारी विचार जनता तक पहुँचने से रोक रहे थे।

उस पुस्तक को मैंने अपने नाम से उनके पास भेज दिया। अब वह पुस्तक सहाय नाम के कारण असहाय नहीं थी। मैंने उस पुस्तक की जिल्द, जिस पर तुम्हारा नाम लिखा था, अपने खर्च पर बदलवा दी। नयी जिल्द पर जहाँ मैंने अपना नाम लिखा वहाँ तुम्हारी चप्पलों की छोटी सी ड्राइंग बना दी। जैसे भरत भाई ने रामचंद्र की खड़ाऊँ को उनका टोकन मान लिया, वैसे ही मुझे उन चप्पलों में तुम्हारा ही रूप नजर आया। साहित्य की इस सेवा के लिये मेरा यह कारनामा सोने के अक्षरों में लिखा जाना चाहिये, पर तुम जानते हो मुझे नाम की चाह नहीं है।

प्रकाशक ने स्पष्ट कर दिया कि वह मुझे इस पुस्तक के लिये नकद कुछ नहीं दे पायेगा। मुझे उसके दफ्तर में रखी एक स्टील की पुरानी मेज पसंद आ गयी, जो उसने मुझे रायल्टी के तौर पर दे दी। तुम इसे साहित्यिक भाषा में ऐसे भी कह सकते हो कि तुम्हारे विचार जनता तक पहुँचाने के लिये मैंने प्रकाशक से लोहा लिया।

पुस्तक छप गयी, कुछ सौ प्रतियाँ बिक भी गयीं। तुम्हारे विचार जनता तक पहुँच गये। तुम्हारा प्रयास सफल हो गया। तुम्हारे प्रयास में भागीदार बनकर मेरा जीवन भी धन्य हो गया, भले ही उसके लिये मुझे अपना नाम तक दाँव पर लगाना पड़ा।

अब जब मैं चैन की साँस लेते हुए क्रांति के होने का इंतजार कर रहा हूँ, मालूम पड़ा कि तुमने मेरे खिलाफ शिकायत की है लेखक संघ में। मेरे बलिदान का ये सिला दिया है तुमने मुझे? कोई और होता तो दो चार कुर्ते सिला देता। जब तुम्हारी पुस्तक छप नहीं रही थी तो उसके अंदर के विचार तुम्हारे लिये सबसे महत्वपूर्ण थे। लगता था जीवन में तुम्हारा एक ही ध्येय था कि किसी तरह से एक बार यह महत्वपूर्ण दस्तावेज आम पाठक तक पहुँच जाये, जैसे शत्रु सैनिकों से पीछा किये जाते समय घायल गुप्तचर यही सोचता है कि किसी तरह मरने से पहले उसके द्वारा इकट्ठी की गयी जानकारी राजा तक पहुँच जाये।

अब लगता है तुम्हारे विचार बदल गये हैं। पुस्तक के छपने के बाद सोच जनता की नहीं बदली, बल्कि तुम्हारी बदल गयी है। वैसे भी अपनी रचना मुझे सौंपते समय तुमने मुझे सिर्फ यही कहा था कि इसे छपवाना है, यह नहीं कहा था कि तुम्हारे नाम से छपवाना है। जनता शरीफ है, उसके विचार वैसे के वैसे हैं, तुम्हीं मायावी दुनिया के फेर में पड़ गये। और माया भी क्या, सिर्फ एक स्टील की मेज।

मैं तुम्हें ये मेज दे भी सकता था। मुझे मेज से ज्यादा अपनी इमेज की चिंता है, परंतु एक समस्या है। जिस लेखक संघ में तुमने मेरी शिकायत की है, उसके अध्यक्ष तीन दिन पहले मेरे घर आये थे, उन्हें वह मेज पसंद आयी, और मैंने वह उन्हें भेंट कर दी। अब तुम्हें सीधे उनसे ही इस मामले में निपटना पड़ेगा। मेरा एक सुझाव हैं, जिस दिन पुस्तक के क्रांतिकारी विचार अपनी करामात दिखाना शुरू करें, जिस दिन शहर में बलवा हो, धरने प्रदर्शन हो रहे हों, कर्फ्यू लगा हो या लगने वाला हो, मामला पुलिस के काबू से बाहर हो जाये और प्रशासन की सहायता के लिये फौज के आने में अभी देरी हो, उस समय पाँच दस लोगों के साथ अध्यक्ष के घर से वह मेज लूट लो।

लेकिन वह कयामत का दिन आने तक क्या करोगे? आराम से नींद लो। इसीलिये मैंने पत्र के प्रारंभ में ही लिखा–हे निंदनीय व्यक्तित्व!

तुम्हारा बिल्कुल नहीं
अप्रिय अशांत

रामदरश मिश्र कृत 'रात सपने में'

अलका सिन्हा

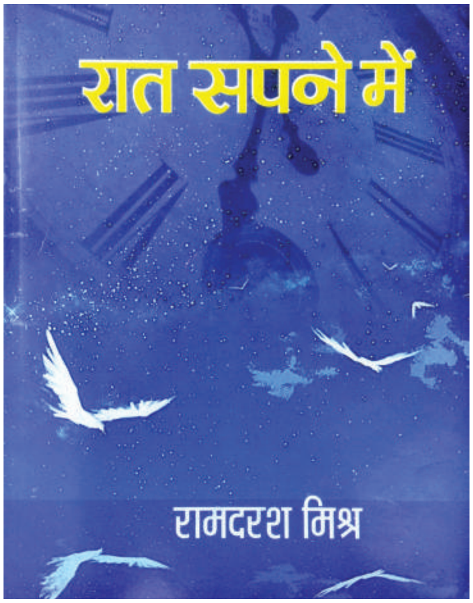

समीक्षित कृति
रात सपने में (कविता-संग्रह)

रचनाकार
रामदरश मिश्र

प्रकाशक
इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, के-71, कृष्णा नगर, दिल्ली-51

मूल्य: 200 रुपये

प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: 371, गुरू अपार्टमेंटस, प्लॉट नं. 2, सेक्टर-6, द्वारका, नई दिल्ली-110075, ई-मेल: alkaraya@gmail.com

औपन्यासिक विस्तार लिए डॉ. रामदरश मिश्र की जीवन यात्रा रचना की विविध विधाओं से परिपूर्ण है। यही कारण है कि मूर्धन्य साहित्यकार डॉ. मिश्र ने उम्र को अपनी लिखी किताबों की गिनती से मात दी है। यों मिश्र जी स्वयं को यात्राभीरू मानते रहे हैं किंतु उनकी पुस्तकें लंबी यात्राओं के साक्ष्य बनकर खड़ी होती हैं और धूल-मिट्टी में सने पैरों के दर्द और आह्लाद को व्यक्त करती हैं। उनकी पहली ही पुस्तक 'पथ के गीत' उस यात्रा को आभास करा देती है, सरकंडे की कलम लिए लेखक जिस ओर निकल चला है। 'रात सपने में' कवि का सद्य: प्रकाशित वह कविता संग्रह है जिसमें लंबी दूरी तय कर लेने के बाद की अलसाई थकन कहीं ठहक कर सुस्ता लेने का आग्रह करती है। मगर स्वप्न में की गई यह यात्रा साधना की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति नाभि से ब्रह्मांड की ओर प्रयाण करता हुआ आत्म-साक्षात्कार के दौर से गुजरता है।

यह सच है कि महानगरीय जीवन जीते हुए भी कवि का मन हरे खेतों और बसंती बयार के नाम बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ लिखता रहा है, बारिश में भीगते बच्चों के बीच दौड़ता रहा है, आलीशान बंगलों के मुख्य द्वार पर आम के पत्तों का बंदनवार सजाता रहा है। इसलिए कह सकते हैं कि यह संग्रह दो ध्रुवों के टकराहट से उपजी गूँज की कविताएँ हैं। आम, महुआ, कटहल जहाँ उपभोक्तावादी समाज को परिलक्षित करते हुए बाँस को हेय दृष्टि से देखते हैं, वहाँ बाँसुरी की मोहक तान पाठक को आत्मिक आह्लाद से भर देती है। ऐसी कई कविताएँ इस संग्रह को विश्लेषण की जमीन देती हैं जो व्यक्ति को भीतर से परिमार्जित करती हैं। कविता भौतिकतावाद को मात देती हुई उस सुख के निकट ले जाती है जो व्यक्ति को भीतर से समृद्ध करता है। 'तालाब', 'वर्दी', 'प्रतिस्पर्धा', 'वापस जा रहा था' जैसी अनेक कविताएँ ऐसे आकलन के प्रति पाठक को सचेत करती हैं। विदेशों में जा बसने की लालसा में अपने देश की अनदेखी आज के समय का बहुत दुखद सत्य है। डॉलरों के सामने रुपयों का बौनापन आज के युवा को बार-बार भरमाता

है और वह विदेश में ही अपना भविष्य सुरक्षित पाता है। इन्हीं के बीच कविमन उस गाड़ीवान के सुख को स्वर देता है जो बैलगाड़ी पर निश्ंचित भाव से बैठा देश की मिट्टी को चंदन की तरह सिर–माथे लगाता है।

इसी प्रकार 'साइकिल और हवाई जहाज' कविता सुविधा संपन्न और वंचित वर्ग के बीच की जीवन शैली की व्याख्या प्रस्तुत करती है जहाँ साइकिल सवार व्यक्ति अगर गिर भी जाए तो जमीन से जुड़े सभी साथी मिलकर उसे सँभाल लेते हैं जबकि ऊँचे महलों में रहने वाले सुविधा संपन्न व्यक्ति जब लड़खड़ाते हैं तो वे जमीन पर गिरे जहाज की तरह धराशायी हो जाते हैं। आज का समय परस्पर विरोधी मानसिकताओं से भरा है। किसी को सफलता की सीढ़ियाँ फलाँगनी हैं तो किसी को अपने भीतर के अहसास को जीना है। कोई मोहल्ले में पुस्तकालय खुलने की खुशी मना रहा है तो कोई गली के नुक्कड़ पर छोले–भठूरे की दुकान खुल जाने की आश्वस्ति का गीत गा रहा है।

जीवन का लंबा अरसा महानगरों में बिता लेने के बावजूद मिश्र जी का मन गाँव के उल्लास के लिए लालायित रहा है। यही कारण है कि महानगरीय स्थितियों के प्रति स्वीकार्यता के बावजूद मिश्र जी की कविताएँ संवेदना की कच्ची मिट्टी की सोंधी सुगंध से स्पंदित होती रही हैं। शहरीकरण की सबसे बड़ी त्रासदी है बाजार जो आज व्यक्ति के घरों के भीतर चला आया है। अपनी आत्मीय संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए आज हम बाजार पर आश्रित हो गए हैं। हर तरह के रागात्मक संबंध को जताने का माध्यम बाजार से ही हासिल होता है। वे मासूम अहसास जो सहज मुस्कान से भी जताए जा सकते थे, आज बाजार से मिलने वाले महँगे कार्ड और तोहफों के मोहताज होकर रह गए हैं। बाजार से संचालित मन के संवेग आज महँगे उत्पादों का विज्ञापन बनकर रह गए हैं। इस प्रकार सहज–सी दिखती यह कविता आज के समय की विरूपता का भयावह चित्रण करती है।

'अपना–अपना बुढ़ापा' कविता इस संग्रह को बेहद महत्वपूर्ण बनाती है। पद–प्रतिष्ठा के चोले में सारी जिंदगी आम आदमी से कट कर जीने वाले ऊँचे ओहदे वाले किरदारों से हम अपरिचित नहीं हैं। जीवन का लंबा हिस्सा जी लेने के बाद जब व्यक्ति सेवानिवृत्त होकर घर को रुख करता है तब कई बार वह अपने पैरों के नीचे की जमीन को पहचान ही नहीं पाता। सारी जिंदगी एक तरह की फैंटसी में जीते हुए, आसमान नापकर जीवन की साँझ बेला में जब वह वापस लौटता है तब उसके पास निरीह अकेलापन के सिवा और क्या होता है? मोहभंग की स्थिति से गुजरता हुआ वह अनुभव करता है कि जिन बच्चों को ऊँचा और बड़ा बनाने की चाहत में वह मशीन बन गया, वे तो उसे छोड़ कर विदेश जा बसे हैं। जिस पद की भव्यता में वह अपने आत्मीय जनों को समय न दे पाया, सेवानिवृत्ति के बाद उनकी कमी उसे बेतरह अखरती है, मगर तब तक वह उनसे छिटक कर बहुत दूर निकल चुका होता है। दफ्तर की ऊँची कुरसी उसे अनजाने–अपरिचितों के बीच सहज नहीं होने देती और अब कुरसी छूटने के बाद परिचित और अपने लोग भीड़ में खो चुके होते हैं। जबकि दूसरी ओर जीवन को सहज भाव से जीने वाला साधारण व्यक्ति किसी के भी साथ हँस लेता है, अपने दुख–सुख बतिया लेता है। ऐसी घटनाएँ आजकल लगातार खबरों का हिस्सा बन रही हैं जहाँ बहुत प्रभावशाली जीवन बिताने वाली नामी–गिरामी शख्सियतों को गुमनाम बुढ़ापा ढोना पड़ता है। हर पल वे इसी आस में बिताते रहते हैं कि उनके बच्चे समय निकाल कर कभी उनके लिए घर वापस आएँगे।

मिश्रजी की रचनाओं की संवादात्मक शैली उनकी कविताओं को और भी आत्मीय बना देती हैं। 'समय', 'ज्ञान और दुकान' जैसी कविताओं में इस शैली का रस लिया जा सकता है। मिश्र जी की रचनाओं में कई विधाओं के छींटे एकसाथ देखने को मिलते हैं। संवाद प्राय: कहानियों की जमीन पर स्थान पाते रहे हैं मगर मिश्र जी की रचनाओं में हर तरह की विधा एकजुट होकर चलती हुई रचना को सौष्ठव और रूपवान बनाती है। 'जाड़े का दिन', 'जब मैं यहाँ से जाऊँगा' कविता में डायरी विधा का स्वाद मिलता है तो कई कविताएँ संस्मरण की याद दिलाती हैं। मानवीकरण भी मिश्र जी के लेखन का एक खास तत्व है। साहित्य अकादेमी सम्मान प्राप्त कविता संग्रह 'आम के पत्ते' की कई कविताओं में मानवीकरण का सौंदर्य प्रस्तर, निर्जीव वस्तुओं को गहरी संवेदना से आर्द्र करता है। सुई, घड़ी, चाकू, झाड़ू जैसी अनेक उपेक्षित वस्तुओं के महत्व को मिश्र जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से बहुत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। रचनात्मकता का यह स्पर्श मिश्र जी की कविताओं को

विशिष्ट चमक से भर देता है। 'कैंची', 'तकिया', 'मोबाइल' शीर्षक से इसी तेवर की कुछ कविताएँ इस संग्रह में भी देखी जा सकती हैं।

संग्रह की शीर्षक कविता अलग से विश्लेषण की माँग करती है। यह प्रश्न तो आदिकाल से चला आ रहा है कि कविता से कौन-सी क्रांति आ सकती है? कविता से कौन-सा किला फतह किया जा सकता है? झोलाधारी कवि से आखिर क्या उम्मीद की जा सकती है? 'रात सपने में' कविता इस प्रश्नों का जवाब एक सवाल उछाल कर देती है-

"हाँ, लेकिन यह उद्विग्न तो कविता से ही हुआ था न!"

(पृ 75)

कवि मानता है कि भले ही कविता हाथ में तीर-कमान थामे नहीं लड़ती मगर वैचारिक धरातल पर कसमसाहट के बीज तो कविता ही बोती है जो धीरे-धीरे व्यक्ति को विरोध करने की ताकत देती है। उसका विरोध किसी तानाशाह को पागल हाथी बना देता है तो कभी अड़ियल घोड़ा। कवि का कोमल मन तब लोगों को एकजुट कर उसके खिलाफ लड़ने का साहस देता है। इस तरह कविता की यात्रा अनवरत चलती रहती है और हर युग में गलत के विरोध में उठने वाला स्वर प्रदान करती है।

'बादल कवि है' कविता में रचनाकार कवि की उस विशेषता को रेखांकित करता है जो समुद्र का खारा जल लेकर उसे अपने स्नेहिल स्पर्श से मीठा कर बरसाता है। कवि भी इसी प्रकार स्वयं विषपान कर समाज के लिए अमृत की वर्षा करता है ताकि दुनिया जीने लायक बची रहे।

जीवन के नौवें दशक में चलते हुए डॉ. रामदरश मिश्र यात्रा के सोपान पर जा पहुँचे हैं जहाँ छलाँगें लगाते लोग भी नहीं पहुँच पाए। यात्राभीरू होने के बावजूद समय की यात्रा में सहज भाव से और अनवरत चल रहे हैं। ठंडी फुहारों-सी ये कविताएँ थके हुए मन को ठंडक और तुष्टि प्रदान करती हैं। कलम के साथ कदमताल करती मिश्र जी की कविता यात्रा अभी भी अगली राहों की ओर अग्रसर है। वे कहते हैं—

अब तो जा पाता न कहीं मैं काया की मजबूरी है
बहुत चला हूँ फिर भी लगता यात्रा अभी अधूरी है
पड़ी सामने कलम यह कह रही सुनो मीत मेरे अब भी
हँसता जीवन जीने को संग मेरा बहुत जरूरी है। (पृष्ठ 18)

सरकंडे की कलम से जिस प्रकार की शुरुआत हुई थी आज उसके स्वर बाँसुरी की तान में फाग और चैती गा रहे हैं और दिशाओं में गूंज रहा है एक अनूठा जीवन-राग।

ooo

राजेन्द्र राजन कृत 'मौन से संवाद'

बी.डी. बजाज

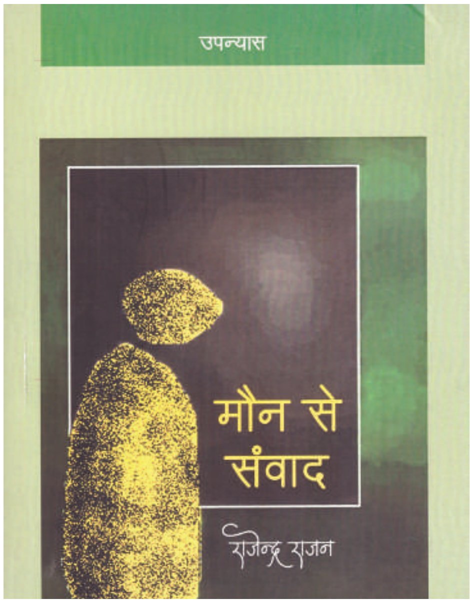

समीक्षित कृति
मौन से संवाद (उपन्यास)

रचनाकार
राजेन्द्र राजन

प्रकाशक
सी-46, सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर-302003

मूल्य: 100 रुपये

प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: ए-83, गुजरांवाला टाउन, दिल्ली-110009, मो: 9899263030

'मौन से संवाद' राजेन्द्र राजन जी का दूसरा उपन्यास है। पहला 'सैलिब्रेशन' भी पाठकों द्वारा बहुत पसंद किया गया था। शरद और शम्पा बंबई से हिमाचल प्रदेश की पांगी वैली की खूबसूरत प्राकृतिक संपदा को कैमरे में कैद करने के लिए निकलते हैं। शरद प्रोडक्शन वृत्त चित्र निर्माण की संस्था है। शरद ही इस संस्था का सर्वेसर्वा है। शम्पा एक निहायत खूबसूरत एंकर होने के साथ-साथ एक संवेदनशील महिला है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक। हिमाचल प्रदेश के चम्पा शहर में इन दोनों की मुलाकात ट्रांसपोर्ट महकमें के रोड इंस्पैक्टर श्री चमन से होती है। पांगी घाटी जाने में दोनों की उत्सुकता को देखकर चमन इनके साथ किलाड़ जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। चंबा से किलाड़ जाते हुए बीच में कई पड़ावों की विशेषता और समस्याओं की चर्चा करते हुए वे किलाड़ पहुँच जाते हैं। पांगी घाटी प्रदेश वह हिस्सा है जहाँ साल में आठ महीने इसका बाहरी दुनिया से संबंध टूट जाता है। पारा शून्य से दस डिग्री कम ही रहता है। आवागमन के सभी रास्ते अवरूद्ध हो जाते हैं। केवल हेलिकॉप्टर से ही आया-जाया जाता है वह भी मौसम साफ होने पर। शरद-शम्पा को किलाड़ के डाकबंगले में शरण मिलती है। घाटी की सुंदरता के अनेकों दृश्यों को शरद ने शूट किया है। जी उकता गया है। वापिस जाने का कोई जुगाड़ बन नहीं रहा इसलिए काफी उदास है। हैलिकॉप्टर सर्विस कई दिनों से बंद है क्योंकि अत्यधिक बर्फबारी और बादलों के कारण मौसम साफ नहीं है।

जब भी मौसम साफ होता है बीमार और अत्यंत जरूरी कारणों से उनको प्राथमिकता दी जाती है-इस कारण शरद-शम्पा को हफ्तों वहीं रुकना पड़ सकता है। डाक बंगले का चौकीदार चंदू इनकी सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहता है। वहाँ के कर्मचारी इस स्थान पर काम करने का मतलब कालापानी की सजा की समझते हैं। इनकी सरकारी ड्यूटी केवल डेढ़-दो साल की होती है लेकिन ट्रांसफर होने के बावजूद यदि इनका स्थान ग्रहण करने कोई न पहुँचे तो इनको वहीं टिका रहना पड़ता है। नए बाबू तिकड़म लगाकर या राजनीतिक दबाव से अपना तबादला

रोके रखते हैं–यह समस्या स्थानीय कर्मचारियों को डिप्रेशन का शिकार बना देती है।

शरद और शम्पा लिव इन रिश्ते में रहते हैं और जल्द ही विधिपूर्वक विवाह में बँधने वाले हैं। लेकिन दोनों की प्रकृति में असमानता भी है। शरद हर फ्रेम, हर रपट में कमर्शियल एंगल तलाश करता रहता है लेकिन शम्पा एक क्रिएटिव राइटर है। इसने बर्फ के दरमियान शिराओं में खून जमा देने वाली नुकीली हवाओं के बीच घाटी में खूबसूरत लफ़्ज़ों और अपनी जादुई आवाज से बर्फबारी का स्वागत किया–किस प्रकार यह स्नोफाल घाटी के बाशिंदों की जिंदगी में तरक्की, खुशहाली और समृद्धि लेकर आती है। जड़ी बूटियों के लिए कुछरत का नायाब तोहफा है यह बर्फबारी।

आत्मीयता बोध से पगे यह पहाड़ी लोग। कुदरत का यह मौन संवाद और मूक संगीत कभी नहीं थमता। शम्पा एक संवदेनशील लेखिका है। चौकीदार चंदू के किरदार में ऐसा रंग भरना चाहती है कि दर्शकों को उसमें अभिरुचि जागृत हो और वे उसके बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने के लिए उत्सुक हो जाएँ। शम्पा बर्फबारी को एक कविता का रूप ही समझती है।

कई बार शम्पा ऊहापोह की स्थिति में पहुँच जाती है–वह सोचती है ''अगर वह परिणय सूत्र में बँध गई तो शरद को ताउम्र झेलना पड़ेगा। क्या वह उसके व्यक्तित्व से सामंजस्य बिठा पाएगी। यह कैसा फिल्ममेकर है जो हर चीज में बाजार की दृष्टि से देखने–परखने का आदी है। वो फिल्म ही क्या जिसमें इमोशंस, सैंटीमेन्टस न हो। आम लोग न हो, उनकी दु:ख तकलीफ न हो।'' जब शरद शम्पा को कहता है ''वीई हैव टू मैरी सून। शम्पा भड़क जाती है।'' खुदा जाने तुम्हारा सून कब आएगा। पाँच साल से तुम मुझे मैरिज का सून दिखा रहे हो। तुम जब चाहो मर्यादा को ध्वस्त कर दो। सहमति, कन्सेण्ट नानसेन्स। समाज कितना ही खुद को प्रोग्रेसिव होने का दावा करे, वह ऐसे संबंधों को मान्यता नहीं देता। संशय के बादल हमेशा मेरे आसपास मँडराते रहते हैं- लिव इन रिलेशन्स की राजेंद्र राजन ने अपने तरीके से भर्त्सना की है।

पहाड़ और पीड़ा सगे भाई–बहन हैं—तरक्की और कुदरत का क्रूर रिश्ता तीसा के फूलों का प्रचलन–एक नई आशा लेकर आया है। शायद यह कुछ हद तक पहाड़ की पीड़ा को मरहम लगाए। पहाड़ की सुंदरता देख लेखक विभोर हो जाता है ''यह स्थल सचमुच कितना मनमोहक है। अछूता सा। क्या इसी को वर्जिन ब्यूटी कहते हैं। धुंध के वृहदाकार छल्ले घूँघट का रूप धारण कर गोशे–गोशे को अपने आगोश में लपेट लेते। धुंध की लंबी–लंबी बलिष्ट बेतरतीब बाहें कुछरत रूपी प्रेयसी को आलिंगनबद्ध करने के लिए आतुर हैं जैसे। ऐसे नयनाभिराम दृश्यों पर कौन फिदा न होगा।'' राजेंद्र जी ने पहाड़ी मौसम और वातावरण का ऐसा मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया है जो बड़े–बड़े कवियों को भी मात देता है। सौंदर्य पान के लिए ऐसी आँखें ही उसका मूल्यांकन कर सकती है। धन्य है राजेंद्र जी। ''मौन से संवाद'' ऐसा असाधारण उपन्यास है कि इसकी सीधी सी कथा भी अनोखी बनती जाती है। यह कृति हमारे समांतर श्वास ले रहे इसी जीवंत संसार की विश्वसनीयता के स्तर पर चलने वाली कहानी है। लेखक जिस निष्कर्ष पर पाठकों को ले जाता है उसमें उसकी समझ और उसका अनुभव परिलक्षित होता है। पहाड़ी कष्टों को लेखक ने बहुत बारीकी से उकेरा है। इस उपन्यास के गौण चरित्र जैसे दोरजे–नरमू वगैरह भी कथानक में अपने मोड़ पर मजबूत उपस्थिति दर्ज करते हैं। 'प्रजा' सिस्टम भी अपने आप में विलक्षण दृश्य है। शम्पा के अनुसार यह तुगलकी फरमान है। इसमें एक बात महत्वपूर्ण है कि बिरादरी से निकाले जाना पहाड़ी लोग बहुत बड़ा दंड समझते हैं। इससे भयभीत भी रहते हैं।

पूरे उपन्यास को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि लेखक ने इसकी सामग्री जुटाने में पर्याप्त खोज की है। 'मौन से संवाद' एक कृति के रूप में अपनी छाप यूँ भी छोड़ती है कि पहाड़ की सामाजिक समस्याएँ अभी तक पारंपरिक रूप से कोई खास बदल नहीं पाई है। भाषा रोचक और कथ्य के अनुकूल और सहज बनी हुई है। 'प्रजा' के अध्यक्ष के रूप में नंदू का किरदार बेतुका लगा। यदि अपने कथन में वह आँचलिक भाषा का प्रयोग करता तो बेहतर लगता। चमन ऐसा पात्र है जो पहाड़ी कष्टों को झेलता हुआ भी रिटायरमेंट तक वहीं रुकना पसंद करता है। शरद–शम्पा से भी उसका आत्मीय संबंध बन जाता है। उसकी मृत्यु पर न केवल यह दोनों अश्रुपूर्ण हो जाते हैं बल्कि अन्य कर्मचारी भी शोक में डूब जाते हैं।

इस सुरुचिपूर्ण उपन्यास की रोचकता की वजह से पाठक एक बार पढ़ना शुरू करता है तो समाप्त करके ही साँस लेता है।

❍❍❍

राहुल सेठ कृत 'अंतर्ध्वनि, तुम भी?'

डॉ. अवध बिहारी पाठक

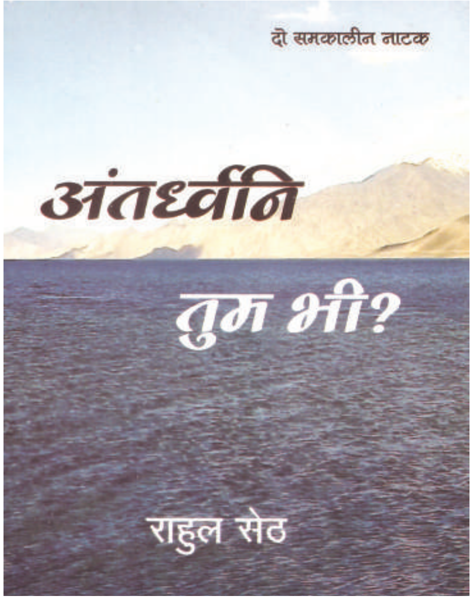

समीक्षित कृति
अंतर्ध्वनि, तुम भी? (दो समकालीन नाटक)
रचनाकार
राहुल सेठ
प्रकाशक
भावना प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य: 250 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: पुराने डाकघर के पास, पोस्ट सेवढ़ा-475682, जिला दतिया, म.प्र, मो. 9826546665

नाटक गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है जो पात्रों के माध्यम से मंच पर वैचारिक उथल-पुथल की दृश्यात्मक प्रस्तुति है। भारत में नाटक की प्रस्तुति या तो धार्मिक, आदर्श, चरित्रों या फिर सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं को लेकर होती रही है। पश्चिम में भी लगभग नाटक का यही लक्ष्य रहा, परंतु विचारक 'इब्सन' ने नाटक को मनोरंजन मात्र के लक्ष्य से निकालकर व्यक्ति केंद्रित करके जीवन और उसकी संवेदनाओं का माध्यम बना दिया साथ ही व्यंग्य भी इसमें शामिल कर दिया गया।

मुझे राहुल सेठ लिखित अंग्रेजी नाटक 'रनिंग ऑन एम्प्टी' का हिंदी अनुवाद देखने को मिला। स्मरणीय है कि राहुल सेठ ने सिटी यूनीवर्सिटी न्यूयॉर्क से एम.बी.ए. करके अमेरिका में ही मैंनेजमेंट, टेक्नॉलोजी, कन्सल्टेंट के रूप में कार्य किया। वाशिंगटन डी.सी. में खेले गये कई नाटकों में मुख्य अभिनेता के रूप में प्रस्तुति देकर ख्याति प्राप्त की। अंग्रेजी में नाटक लिखना उनके अंग्रेजी परिवेश का प्रभाव है। नाटक में पूर्व और पश्चिम दोनों शैलियों में प्रचलित नाटकीय तत्वों का समावेशी प्रयोग नाटककार ने किया है।

गंभीर चिंतन और लेखन की विरासत उन्हें अपनी माँ राजी सेठ-नामचीन कथाकार से मिली। 30 वर्षों के विदेश प्रवास के बाद भारत लौटने पर मानव जीवन की जटिलताओं की ओर ध्यान गया। उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय समाज का ताना-बाना हर मोर्चे पर बदलाव की चपेट में है। जहाँ सामाजिक आर्थिक संघर्षों ने जीवन को इस सीमा तक आक्रांत कर रखा हो, वहाँ आमजन की व्यथा-वेदना का कौन रखवाला, उनके भीतर लगातार दमन होते रहते अस्तित्व के संकट भी तो उतने ही जानलेवा होते हैं। उचित माँगों को लेकर किया गया विरोध प्रदर्शन भी अक्सर भयानक हिंसा और दमन का रूप ले लेता है। ऐसे में मनुष्य अपनी निजी हैसियत को लेकर कहाँ जाये? यह एक तरह का आध्यात्मिक संकट है पूरे नैतिक दिशा बोध का ध्वंश''। (भूमिका पृष्ठ 12-13) राहुल की यह चिंतन दृष्टि ही इस नाटक का प्रस्थान बिंदु है। यह नाटक आज के आदमी की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं करता, वरन् उन स्थितियों को सामने रखना चाहता है, जहाँ आदमी अपने भीतरी और

बाहरी परिवेश से भयाक्रांत होकर दिशाहीन हो रहा है, अपने विधि परिवेश और खुद पर भी प्रश्न चिन्ह लगाता सा, जहाँ सारे चिंतन, दर्शन, आदर्श भी उसे दिशाहीन प्रतीत हो रहे हैं। नाटक में ऐसी अनेक बहुत 'टिपीकल' स्थितियों का चित्रण है, जहाँ आदमी खुद को खोकर खुद की ही तलाश में मुब्तिला है। इस नाटक को समीक्षा के एकेडेमिक खांचे में रखकर देखना यहाँ मेरा लक्ष्य नहीं। यह कृति जिन समस्या बिंदुओं पर केंद्रित है, उनको उस पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में देखना मेरा उद्देश्य है, ताकि रचना की पहुँच तक पहुँचा जा सके। इसके लिए नाटकीय पात्र और कथानक का संक्षिप्त परिचय देना जरूरी है, ताकि नाटकीय घटनाक्रम की कड़ियों को विचार संयुक्ति मिल सके।

नाटक का कथानक छोटा है, पर वह सपाट नहीं, तिर्यक है। जो बाहर से भीतर की ओर खुलता है। शेखर सामाजिक सुधार के कार्यों में लगा रहता है और उसका बेटा कबीर जे.एन.यू. प्रो. बोस एवं अपने पिता के प्रोत्साहन पर पिछड़े समाज के बीच पहुँचकर चेतना जागरण कैंपों में भागीदारी करता है। वहाँ की आबादी उसे शंका की दृष्टि से देखती है। इसी बीच उसकी भेंट उसी पिछड़ी आबादी की एक चेतना संपन्न लड़की शायना से होती है। समान लक्ष्य से कबीर और शायना निकट आते हैं। इसी बीच एक दिन आतंकवादियों की चपेट में पड़कर कबीर को चोट लगती है। वह घर आ जाता है किन्तु स्वस्थ होने पर अपने माता-पिता, बहिन के रोकने के बावजूद फिर कैम्पों में पहुँचा। उसने इस पिछड़े समाज की जिंदगी की जद्दोजहद की फिल्म बनाकर तथाकथित सभ्य समाज को दिखाने का लक्ष्य बनाया ताकि यथार्थ सामने आये, शायना इसमें उसका साथ दे रही थी। एक दिन आतंकियों के एक बेनाम हिंसात्मक आक्रमण में एक लड़की को बचाने के दौरान गोली लगने से घायल कबीर की शायना के सामने ही मृत्यु हो गई। शायना कबीर का सारा सामान फिल्म, चित्र, डायरी, उसके माता-पिता को जाकर सौंपती है। शेखर, नन्दनी-कबीर की मृत्यु से हिल जाते हैं। उनके अपने लक्ष्य, जिंदगी, समाज, आदर्शवादिता और दुनिया को बदलने के प्रयत्न फिजूल लगने लगते हैं। शायना कबीर के माता-पिता से कबीर के प्रति अपनी निष्ठा और बेहद तरल क्षणों की याद करते हुए कबीर के बच्चे का अपने गर्भ में होना बताती है। इस खबर से सारा परिवार आल्हाद में डूबे होकर शायना को अपने पास रखना चाहता है। परंतु वह सब का आग्रह, सुख, साधन, संरक्षण, धन, संपत्ति को नकारते हुए कबीर की संतान के पालन का भरोसा देकर अपने जागरण आंदोलन को जारी रखने के लिए अपनी पिछड़ी आबादी में लौट जाती है। समाज सुधार की कल्पना और दुनिया को बदलने की सारी सिद्धांतवादिता, आदर्श शेखर की दृष्टि में निस्सार हो गये। उसने अपनी जिंदगी का रास्ता बदल दिया। नंदनी शायना की रक्षा और कबीर की निशानी को देखने का सपना मन में पालकर शेखर को छोड़कर चली जाती है। नाटक के इस घटनात्मक चक्रव्यूह में से कुछ प्रश्न उभर रहे हैं उनको निम्नवत देखा जा सकता है—

फासले-दर-फासले—आज की अर्थाधारित जीवन शैली से समय तंगतर होता जा रहा है। सामाजिक डिस्कोर्स, कुछ नारी की आत्मनिर्भरता और पुरुष की अहमन्यता ने जिंदगी की भीतरी, बाहरी पर्त पर एक बासीपन चढ़ा दिया है। पुरुष और नारी वर्ग परस्पर स्पेस चाहते हैं। इससे पारस्परिकता का भावबोध क्षतविक्षत हो गया है। नाटक के पात्र विजय और ज्योति, पंद्रह वर्षों के दाम्पत्य जीवन को धता बताकर अलग हो जाते हैं। परस्पर विश्वास और आस्था के पुल थे, दोनों के बीच, वे ध्वस्त हो गये। ज्योति की दुनिया में विजय को जगह न थी और विजय भी जूलिया-नामक अलग साथी के पास आ रहा था, बावजूद इसके कि विजय इस नये संबंध के प्रति आश्वस्त नहीं है। नंदनी से वह कहता है ''देखते हैं कि मैं और जूलिया कहाँ पहुँचे हैं'' (पृष्ठ-27) यानि दाम्पत्य भावबोध भी प्रयोग धर्मी हो रहा है। याद किया जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटक ''आधे अधूरे'' के पात्र सावित्री और महेंद्र के दाम्पत्य के बीच दुनियादारी के आग्रहों को बचाये रखने का भाव था घोर लम्पटता के बावजूद। परंतु वक्त के दबाव ने विजय-ज्योति को तो सामाजिकता से ही मुक्त होने को विवश कर दिया। उधर देखें, कबीर की मृत्यु के दंश में नंदनी ने कलाकार की हत्या कर डाली। शेखर के सारे आदर्शवादी सिद्धांत उसे केवल 'इंटलैक्चुयल एक्सरसाइज' लगते हैं वह शेखर से कहती है ''ज़िंदगी ऐसे चक्कर चलाती है कि सारा आपस में प्यार अपना सब कुछ धीरे-धीरे कुरेदकर छोड़ देती है'' (पृष्ठ-27) दुनिया 'आर्ट ऑफ बिजनेस' चाहती है, बिजनेस ऑफ आर्ट नहीं' यहीं पर नाटककार प्रश्न उभारने में सफल हुआ कि संबंधों का निर्वाह करते हुए आज जिंदगी कला क्यों नहीं बन पा रही है।

अपरिहार्य होता है होना—इस नाटक के गुजरते हुए मुझे गालिब की एक पंक्ति याद आ गई ''मिटाया मुझको होने ने, न होता ये तो ये क्या होता।'' दुनिया और जिंदगी एक हकीकत है। सचों के बीच एक ऐसा सच जिसे न हम स्वीकार कर पाते हैं, और

स्वीकार ही। यहाँ तो होना होता है, होता रहता है, सारा समय जिंदगी के गुणा-भाग में बीत जाता है, और क्या गलत है और क्या सही, सार्थक और निरर्थक की सीमायें मिलकर एक हो जाती है और इंसान उसी में बिलबिलाता रहता है। शेखर अपनी पत्नी नंदनी से पुत्र की मृत्यु के बाद निराशा में डूबकर पूछता है कि ''अगर ज़िंदग़ी खुद इतनी कठोर और बेमतलब हो सकती है, तो मौत क्यों नहीं? तो मौत क्या मायना रखती है? यह सब कितना नश्वर है'' (पृष्ठ 85)। यहाँ नाटककार की दृष्टि निरीश्वरवादी-प्रकृतिवादी है, जहाँ मनुष्य के बनाये खोजे गये आदर्श व्यर्थ हो जाते हैं और व्यक्ति खुद को ही निरस्त कर देता हैं परंतु नंदनी शेखर के सच को स्वीकार नहीं करती और कहती है, ''मुझे अपने सपने खुद बुनने दो, अपना यथार्थ खुद खड़ा करने दो'' (पृष्ठ 85) ऐसी असलियत के बीच फिर भी लेखक सच को परिभाषित करते हुए कहता है कि ''नाटकों का संसार नाटक शब्द को झुठलाता हुआ असली बना दिखता है और मंच का जीवन असली जीवन'' (भूमिका पृष्ठ 12)। लेखक में यहाँ इंतजार हुसैन (पाक कथाकार) का बौद्ध दर्शन बोल रहा है, जहाँ कछुए कहानी का एक पात्र बौद्ध भिक्षु विद्यासागर कहता है ''हर नर-नारी का अपना जंगल और अपना पेड़ होता है, दूसरे के जंगल में ढूंढने से कुछ नहीं मिलेगा।'' विश्व मंच पर हर व्यक्ति के अपने-अपने सच हैं। शेखर कबीर की मृत्यु को केवल एक संयोग मानता है। कैंप में होना मॉरल इश्यू तो है ''परंतु आतंकवादियों द्वारा चलाई गई गोली से कबीर की मृत्यु के मतलब क्या है''। यही वह बिंदु है जहाँ नाटककार और हम सभी आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व में उलझे हुए हैं और पता नहीं कब तक उलझे रहेंगे।

टकराना आदर्श और यथार्थ का—पात्रों के कथोपकथन और चिंतन में नाटककार ने शब्दों की इतनी जटिल घिसाई की है कि उनके प्रचलित अर्थ तौबा करते नजर आते हैं। शेखर एक जगह नंदनी से कहता है ''किसी ने कहा है कि हम रियलिटी में नहीं जीते हम सब को अपनी निजी रियलिटी की तलाश है मुझे लगता है कि हमारा भ्रम ही हमारी रियलिटी होती है'' (पृष्ठ 87)। एक बिल्कुल एकांतिक वास्तविकता का भाव बोध (मेरे विचार से) रियलटी कोई 'वास्तव' तो हो सकती है, परंतु पूरा सच नहीं। आदर्शवादिता का पलड़ा पकड़कर अपनी स्थिति से हम दूसरों को-यानी सामने वाले को-खुद के आत्मकेंद्रित होने का आभास तो दे सकते हैं, परंतु पूरी तौर पर खुद को पूर्ण नहीं मान पाते, इन दोनों स्थितियों के बीच खड़ी वह मनोदशा होती है, जिसे भ्रम-संभ्रम कहा जाता है। पश्चिमी विचारक फायर बॉख ने, 'द एसेन्स ऑफ क्रिश्चियनिटि' के दूसरे संस्करण की भूमिका में कहा है कि ''जो विभ्रम (इलूजन) है वही पवित्र है, और जो यथार्थ (ट्रूथ) है वह प्रवंचना पूर्ण।' शेखर एक जगह कहता है शायना के गर्भ में पल रहे बच्चे के प्रति कि 'बच्चा हमारा नहीं हो सकता कबीर भी हमारा नहीं था' (पृष्ठ 86) यह राई रत्ती सच है परंतु बच्चे की उपस्थिति को अपना कह लेने का संभ्रम ही तो नंदनी शेखर को दुनिया में जीने की गति दे सकेगा। अस्तु इस होने में ही अपने होने को होना मान लेना चाहिए। यहाँ नाटककार में विचारक 'चेखव' का दर्शन झलका दिखता है। नाटक की हो या धरती की जिंदगी, यहाँ आदमी अच्छा या बुरा कुछ नहीं होगा। वह तो बस होता है, और उस होने में ही उसकी सुगति या कुगति है, जैसा भी वह अनुमाने, निगाह अपनी-अपनी ख्याल अपना-अपना।'

जब सच्चाई खुद में ही उलझी हो तब?—विश्व का हो या भारतीय परिवेश, बुद्धिवाद के चलते आज का आदमी सकारात्मक-एक पॉजेटिव सोच की तलाश में है। एक दूसरे को समझने की कोशिश। परंतु निजी कांईयापन के कारण जो अपेक्षित है वह नहीं हो पाता। घोर मार्क्सवादी कवि मुक्तिबोध ने लिखा है 'पिस रहा वह, दो पाटों के बीच, ऐसी ट्रेजेडी है नीच'। हमारे देश की आबादी का एक भाग आज भी अँधेरों में है जिनकी जिंदगी बहुत जटिल है। शायना कबीर से एक जगह कहती है ''यह जंग (आंदोलन) हमारे लिए बड़े आदर्शों और उद्देश्यों के बारे में नहीं है, बल्कि अपनी जिंदगी की है जो कि कुछ सुरक्षित हो और थोड़ा इज्जत से जीने दे।'' (पृष्ठ 58) अँधेरों में रहने वाली आबादी का उपयोग आतंकवादी उनके अज्ञान, हीनदशा और लाभ देकर अपने हितों में करते हैं। प्रशासन उन्हें अलग से प्रताड़ित करता है, दोनों में 'पावर' ऑफ कंट्रोल' की खींचतान है (पृष्ठ 58) फिर आम आदमी कहाँ जाये। उनकी जिंदगी केवल उसी दिन तक सीमित हो गई हैं जिस दिन वे जीवित रहे होते हैं। एन.जी.ओ. के क्रियाकलाप कुछ अपवाद हैं-सब धंधेबाज हो गये हैं, ऐसे में शेखर और कबीर की दुनिया में बदल देने का नजरिया इंटलैक्चुयल-बकवास सिद्ध हो रहा है। नाटककार का तात्पर्य है कि समाज में आज हिंसा खुद को प्रमाणित करने का हथियार बनती जा रही है इसका कोई अर्थ नहीं। यह सब कुछ निजी स्वार्थ से, कुछ उलझी हुई राजनीतिक सैद्धांतिकी से और कुछ अज्ञान और खुद को जीवित रखने की चेष्टावश होता है। आज का सभ्य समाज खुद को देखे और

सुधार करे तो कुछ बिखरती जिंदगानियों को बचाया जा सकता है। अभी देर नहीं हुई है नये रास्ते मिल सकते हैं।

अतिक्रमित होती निजता—जिंदगी की आपाधापी में हमारे संबंधों की निजता अतिक्रमित हो रही है। नंदनी कबीर के बच्चे को पाने के लक्ष्य से शायना के पास जाना चाहती है क्योंकि वही उसका फेथ है। परंतु शेखर बच्चे को केवल एक एक्सीडेंट का फल मानता है, और शायना-कबीर के संबंधों को केवल आकस्मिक। संबंधों में जो एक तरलता होती है उसको भी शेखर नकार रहा है। ऐसे संबंध और संतति क्या पारिवारिता को न लाँघ जाएँगे? मैं स्वयं अपनी निगाह से बच्चे को केवल इंसीडेंट मान लेना चाहूँगा, एक्सीडेंट कदापि नहीं। इंसीडेंट जिंदगी की दिशा बदल सकता है, परंतु एक्सीडेंट तो सब कुछ ध्वस्त करता है। अस्तु कबीर-शायना की भेंट एक आकस्मिकता और बच्चे का होना इसमें महज भगवद्गीता की 'प्रवृति' की दृष्टि ही हमें मान लेना चाहिये ताकि जिंदगी चले। सभी नाटकीय पात्रों के अपने-अपने ध्रुव हैं। शेखर का लक्ष्य अलग है, विरक्ति जिसमें झाँकती है। नंदनी का रास्ता सृजनशील, यानि गिरकर भी चलते जाना। शायना अपने समाज में सिर्फ जीने की और एक संभावना शील स्थिति बनाने को कृत संकल्पित है, और कबीर ने तो खुद को होम कर दिया, उसे दुनिया से कुछ भी कहने का मौका नहीं मिला। विजय, ज्योति, जूलिया की अपनी-अपनी प्रयोगधर्मिता। सब अपने-अपने मार्गों पर चल रहे हैं। मनुष्यकृत यथार्थ सारे दर्शन मीमांसा आदर्श यथार्थ को नकारते हुए। शेखर एक जगह कहता है "नंदनी हम सब अपने-अपने डांस ऑफ लाईफ में उलझे हुए हैं, अपने दिल में निरंतर बजने वाले सुर ताल के साथ कोई ग्रैंड आर्केस्ट्रा या सिम्फनी नहीं है, न कोई कंडक्टर जो हमें आगे नचाये, सोचो जरा हर कोई अपनी-अपनी धुन पर नाच रहा है। बिल्कुल कॉमीकल, है ना" (पृष्ठ 87) यह एक ऐसा सच है, जो यथार्थ का यथार्थोत्तर यथार्थ है, झूठ, गलत, सही के उस पार का सच। यात्रा को पूर्णता दें। यही समय की खुद को भ्रम-विभ्रम के घेरे में डाल दें और चलते चलें।

नाटक का स्थानीयमान—अपनी समझ से मैं नाटक को दृश्यकाव्य मानता हूँ इस दृष्टि से यह नाटक तुकांत कविता की तरह सूक्ष्म तरीके से संवेदना को जागृत करता है जो परस्पर जुड़ाव का सशक्त माध्यम है, नाटक के संवाद सूक्ष्म, संक्षिप्त, प्रखर हैं दो टूक, जो इतर नाटकों में कम दिखते हैं। नाटक अपने समय की समस्याओं को उभारने में समर्थ है। पात्रों में शायना का आदर्श चरित्र एक आधुनिक स्त्री का चरित्र है, जो केवल अपने स्त्रीपन को लेकर ही जीवित नहीं रहना चाहती, उसमें इंसानियत को जीवित रखने का जज्बा है। वह 'इबसन' के नारी पात्र 'नोरा' की तरह अपने वक्त और परिस्थिति को पराजित करती दिखती है। संक्षेप में कहा जाये तो ये नाटक 'अंतर्ध्वनि-तुम भी?' सदी के आदमी की उधेड़बुन है, जहाँ खड़े होकर वह कभी खुद को, कभी समय की समस्याओं को, कभी अपने परिवेश को, कभी दर्शन शास्त्र की विचारधाराओं को देखता है, परंतु रहता है दिशाहीन ही, ठिठका सा। यह नाटक मूलत: हिंदी में लिखा जाता तो भारतीयता के तरल सांस्कृतिक चिंतन को ज्यादा प्रखरता से प्रस्तुत कर सकता।

अपने समय को पारिभाषित करने वाले नाटकों की परंपरा में देखें, तो धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे' राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन की विडंबनाओं के यदि उत्सव हैं, तो राहुल सेठ का नाटक, 'अंतर्ध्वनि-तुम भी?', वैश्विक स्तर पर आतंकवाद और मानवीय अस्तित्व की चिंता का शोक गीत है। 'अंतर्ध्वनि तुम भी?' ने आदमी और आदमी के बीच उग आई जिस कॉन्ट्रावर्सी की ओर संकेत किया है, और उससे जो अकेलापन जन्मा है—यह अकेलापन कल के इतिहास की, इंसान की जीवन त्रासदी न बन जाये, इस पर हमें विचार करना ही पड़ेगा।

तुम भी?—इसी कृति के दूसरे प्रभाग में राजी सेठ कृत कहानी तुम भी? का नाट्य रूपांतर इसी नाम से है। कहानी का नायक अमर पत्नी सरला की धार्मिक आस्था और विश्वास की टूटन पर कहता है, 'तुम भी?' यह ठीक वैसी ही स्थिति है, जैसी कि शेक्सपीयर की कहानी का एक पात्र एंटोनियो शत्रुओं और विश्वासघातियों में अपने परम मित्र ब्रुटस को शामिल देखकर कहता है 'ब्रुटस यू टू'। आस्था और विश्वास के टूटने पर विचित्र स्थिति से आदमियों को गुजरना पड़ता है, जिसका कोई विकल्प नहीं हुआ करता। कहानी के स्तर पर यह प्रभावी है, परंतु नाटकीय रूपांतर में कहानी जैसी प्रखरता बिखेर पाये इसमें संदेह है। क्योंकि 'ब्रुटस यू टू' कहने की वितृष्णा का बिंब नाटकीय पात्रों के चेहरे पर न उभर पाये, तो कथन-गंभीर कथन खिलवाड़ हो जायेगा। कुल मिलाकर यह कृति पठनीय तो है ही, मंचन में भी उपयोगी और सार्थक हो सकती है।

❍❍❍

डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' कृत 'तेरे चरणों में'

डॉ. शकुंतला कालरा

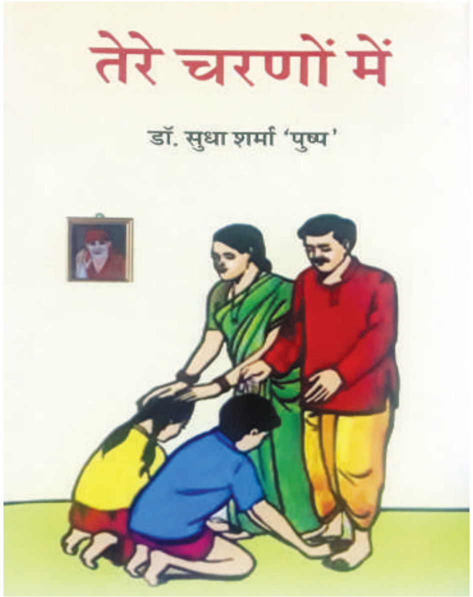

समीक्षित कृति
तेरे चरणों में (एकांकी संग्रह)
रचनाकार
डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'
प्रकाशक
सूर्यभारती, 2596, नई सड़क, दिल्ली–110006
मूल्यः 300 रुपये
प्रकाशन वर्षः 2018

सम्पर्कः एन.डी.–57, पीतमपुरा, दिल्ली–110034, मो. 9958455392

एकांकी आधुनिक युग की देन है जो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रहसन और नाटिका का आधुनिक रूप है। एक अंक वाली यह विधा रंगमंच के उपयुक्त है, इसमें न दृश्यों की भरमार होती है और न साज–सज्जा की विशेष कठिनाई ही। स्कूल, कॉलेज तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा विशेष अवसरों पर बड़े नाटकों की अपेक्षा एकांकी ही अधिक खेले जाते हैं। सहज प्रस्तुति के कारण एकांकी नाटक की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय विधा है। डॉ. सुधा शर्मा ने बच्चों से संपर्क स्थापित कर उन्हें अपना संदेश संप्रेषित करने के लिए इसी विधा को अपनाया है। उन्होंने कथानक और पात्र जुटाने के लिए इसी जीवन की साधारण भूमि को आधार बनाया है। वह इसके लिए स्वप्नलोक में नहीं भटकीं। इसके पात्र स्वयं बच्चे हैं। उनके सहपाठी, मित्र, अभिभावक, माता–पिता, शिक्षक हैं। आवश्यकतानुसार वे पात्र भी हैं जिनसे आपका रोज वास्ता पड़ता है। एकांकियों का कथ्य भी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से बच्चों से जुड़ा है। साथ ही बच्चों के लिए विशेष संदेश संप्रेषित करता है जो शिक्षाप्रद है किंतु उनमें संदेश ध्वनित रहता है। इस संग्रह का प्रमुख उद्देश्य है बच्चों में उत्तम संस्करों का रोपन।

इक्कीसवीं सदी के विगत कुछ वर्षों में समय, समाज और संवेदना के स्वरूप में आए हुए बदलावों को आसानी से देखा–परखा–समझा और महसूस किया जा सकता है। मीडिया द्वारा परोसी गई शानो–शौकत, चकाचौंध की दुनिया में पुराने 'सादा जीवन उच्च विचार' के मूल्य सपने सरीखे लगते हैं। जो कुछ बदल रहा है उसमें हम जीने के लिए अभिशप्त हैं। संयुक्त परिवार के टूटने और बिखरने से हमारी संवेदनाएँ शुष्क हो गई हैं। भौतिक सुखों की ओर भागता मनुष्य आंतरिक सुख–शांति को गँवाता जा रहा है। आज बाजारवाद और व्यवसायिकता के दबाव के कारण मानवीय रिश्तों का निर्वाह करना कठिन होता जा रहा है। दूसरों के सुख–दु:ख से हम निर्लिप्त होते जा रहे हैं। आवागमन की सुविधाएँ चाहे बढ़ती जा रही हैं पर नजदीकियाँ

घटती जा रही है। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' में दूरियाँ सिमटी हैं लेकिन प्रेम और संवेदना की दूरियाँ बढ़ी हैं।

लेखिका स्वयं अध्यापन से जुड़ी हैं। वह जानती हैं कि बाल्यावस्था ज्ञानार्जन और जीवन-निर्माण दोनों की अवस्था है। विद्यालयों में जहाँ आज कैरियरोन्मुखी बच्चों को धनवान, सत्तावान, समृद्धिवान बनने की कला सिखाई जाती है वहाँ सुधाजी ने व्यक्तित्व-विकास के साथ आत्मिक विकास में संतुलन बनाने के गुण भी सिखाए हैं। बच्चे हँसते-खेलते और बातचीत करते हुए परस्पर संवाद करते हुए जीने की कला सीख जाएँगे। सुधाजी ने एक अध्यापक के नाते अपनी एकांकियों के माध्यम से बच्चों तक, हमारी किशोर पीढ़ी को नैतिक मूल्य प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है। सद्गुणों की प्रेरणा दी है। गुरु संस्कारित कर सकता है शिष्य को। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने शिष्य तैयार किया-विवेकानंद। विवेकानंद का आदर्श फिर पूरे क्षेत्र के दात्रों को अनुप्राणित किया करता था। विवेकानंद ने कहा कि मनुष्य-निर्माण ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। छात्र-समुदाय स्वामी जी की रचनाओं और व्याख्यानों से जैसा प्रभावित होता था वैसा किसी और से नहीं। सुधाजी की ये एकांकियाँ भी सचमुच शिष्य तैयार करने की पूरी सामर्थ्य रखती हैं। संग्रह में कुल 11 एकांकी हैं जिनमें विषय वैविध्य भी है और शिल्प का सौंदर्य भी। मनोरंजन बाल साहित्य का प्रथम धर्म है। लेखिका ने खेल-खेल में उन्हें मानवीय मूल्यों की थाती सौंपी है। मर्यादित व्यवहार, शालीन आचरण का वह कहीं पाठ पढ़ाती नजर नहीं आती वरन् एकांकियों के पात्र ही उनके आदर्श बन जाते हैं और उनका अनुकरण उनका जीवन लक्ष्य।

संग्रह की प्रथम एकांकी 'शुभारंभ' है जो भारतीय कालगणना की वैज्ञानिकता सिद्ध करती है। इसमें लेखिका ने अत्यंत रोचक तरीके से कालगणना की जानकारी दी है। भारतीय कालगणना विश्व में प्राचीनतम कालगणना है। इस एकांकी में लेखिका ने बताया है कि दुनिया का प्राचीनतम कैलेंडर भारतीय कैलेंडर है जिनके अनुसार-चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष का आरंभ माना जाता है। इसी दिन ब्रह्मा ने सृष्टि आरंभ की थी। राजा विक्रमादित्य द्वारा नए संवत का आरंभ भी इसी दिन हुआ था। यह भारतीय कैलेंडर वैदिक काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने बनाया था जो ऋषियों और नक्षत्रों के आधार पर बनाया गया था—जिसके अनुसार उसी तिथि पर ही हमारे पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं। जैसे रक्षाबंधन का पर्व श्रावण की पूर्णिमा को और दीपावली कार्तिक की अमावस को मनाया जाता है।

दूसरी एकांकी 'दिल का रिश्ता' है जिसमें विभिन्न पौराणिक आख्यानों के द्वारा मित्रता के आदर्श को प्रस्तुत किया है। तीसरी एकांकी 'आरोप नहीं समाधान' पर्यावरण की समस्याओं और समाधान पर केंद्रित है। 'कर्म ही धर्म है' में कर्म के प्रति जागरुकता का संदेश है तो 'भगाओ बाबा, बुलाओ बाबा' एकांकी में स्व-अर्थ जीने वाले वृद्ध व्यक्तियों को बच्चों के सदव्यवहार द्वारा स्वार्थ का परित्याग कर दूसरों के लिए जीना सिखाया है। इसी तरह के सद्गुणों को संप्रेषित करती अगली एकांकी है-'मिल बाँटकर' जो उदारचित्त बनने की प्रेरणा देती है। 'पहले घर से, फिर जग से' में बताया गया है कि हर आदर्श आचरण का आरंभ घर से होना चाहिए। लोग बाहर अलग जीवन जीते हैं और घर में अलग। दोहरे व्यक्तित्व वाले ऐसे व्यक्तियों की कथनी और करनी में सदा अंतर रहता है। दूसरों को उपदेश देने से पहले अपने आचरण में उन्हें उतारना चाहिए। इसी तरह 'क्या नहीं कैसा' सामान्य से विशेष एकांकी भी बच्चों में नैतिक गुणों की पूँजी चुपके-चुपके प्रदान करती है। बालकों को रचनात्मक दिशा देती है।

संकलन की शीर्षक एकांकी है 'तेरे चरणों में।' आज वृद्धावस्था में माता-पिता को उपेक्षित करना या बेसहारा छोड़ देना समाज की बड़ी समस्या बनकर उभर रहा है। सुधा जी की एकांकी में इसी पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। इसके संवाद जब बालक पढ़ता है या बोलता है तो यकीन मानिए वे कालांतरों में बच्चों के संकल्प बन जाते हैं कि वे अपने माता-पिता के साथ हरगिज ऐसा नहीं होने देंगे...। भोजन-पानी और हवा की तरह संस्कार-ग्रहण भी मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता हैं ये संस्कार बालपन से ही दिए जाएँ तो बालक के रक्त में रच-बस जाते हैं और परिणामतः एक अनुशासित नागरिक का निर्माण अनायास ही हो जाता है। इसे आप समाज-सेवा का नाम दे सकते हैं। समाज-सेवा से तात्पर्य अस्पताल या स्कूल खोलना नहीं और न ही लंबी-लंबी डोनेशन देना है—बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्र की भावी पीढ़ी का चरित्र निर्माण है। यह कार्य ईश्वर किसी-किसी से कराता है जिस पर उसकी कृपा होती है

उसे इस कृपा का आभास होता है और फिर वह ईश्वरीय कार्य में प्रवृत्त होता है। उसे साधन, अवसर, परिवेश, अनुकूलता सब मिलने लगता है—यह कृपा-दैवी कृपा डॉ. सुधाजी पर देखी जा सकती है। सुधा जी को बच्चों को पढ़ाने का कार्य कुदरत ने दिया है और उन्हें संस्कारित करने का भी। इन एकांकियों का मंचन एक विद्यालय में नहीं कई विद्यालयों में होगा और देश की भावी पीढ़ी संस्कारित होगी। मनुष्य अनुकरण प्रिय है विशेष रूप से यह प्रवृत्ति बालकों में सर्वाधिक होती है। नाटक करते वक्त बच्चे जो संवाद बोलते हैं-उसे पहले कंठस्थ करते हैं और कंठस्थ करते-करते वे कब उनके विचार बन जाते हैं, कब उनमें संस्कार बीज रूप में डल जाते हैं इसका पता स्वयं बालकों को भी नहीं चलता। समय पाकर वह बीज अंकुरित होते हैं और पल्लवित और पुष्पित भी।

इन एकांकियों को पढ़ते हुए यह बिल्कुल स्पष्ट होता गया कि इनमें बालकों की भावनाएँ, बालकों की चिंताएँ, बालकों के चाव, उनकी समस्याएँ, उनके समाधान, उनकी जिज्ञासाएँ, उनके उत्तर सब विद्यमान है। इनमें एक अध्यापक और साहित्यकार दोनों की दोहरी जिम्मेदारी निभाते हुए सुधाजी ने नई पौध को संस्कारपूर्ण पनपने का पूरा ध्यान केंद्रित किया है। बालकेंद्रित इन एकांकियों में बच्चों को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से अत्यंत व्यावहारिक शिक्षा दी है जो उपदेश की भाषा न होकर मर्म को छूने वाली है। अंदर एक मंथन की प्रक्रिया आरंभ करने वाली है। सही-गलत का विवेक प्रदान करने वाली है। मूल्यों से कटती जा रही वर्तमान पीढ़ी को मूल्यों से जोड़ने वाली है। यह संस्कार कितने मूल्यवान हैं और वर्तमान में इसकी कितनी आवश्यकता है—यह निर्विवाद है।

समग्रतः सुधाजी की सोद्देश्य लिखी एकांकियों में कथानक-चयन का कार्य उनकी सूझबूझ का परिचायक है। हर एकांकी पाठक को उद्वेलित करती है। सामयिक एवं शाश्वत सूझबूझ प्रश्नों के उत्तर तलाशती है। आधुनिक बोध एवं आज के जीवन की यथार्थ समस्याओं से जुड़े कथानक संकलन की प्रभविष्णुता बढ़ाते हैं। अनुभवपरक विचारों की प्रौढ़ता, हर विषय की सूक्ष्म जानकारी एवं बाल-समाज के लिए संदेश-संप्रेषण इन एकांकियों की विशेषता है।

बालोपयोगी रोचक विषयों पर लिखे इन एकांकियों का शिल्प भी उपयुक्त है। एकांकी के प्रमुख तत्व चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल, भाषा-शैली, उद्देश्य, संकलनत्रय का समुचित निर्वाह हुआ है। इन एकांकियों में कौतूहल, कल्पनाशीलता, मनोविज्ञान एवं मनोरंजन की भरपूर सामग्री के साथ भाषा की सरलता का गुण भी विद्यमान हैं। सुधाजी सजग एकांकीकार हैं। उन्होंने मंच की साज-सज्जा के यथास्थान निर्देश दिए हैं, जिस कारण इन्हें आसानी से अभिनीत किया जा सकता है। लेखिका निरंतर सफल एकांकियों की रचना कर इस विधा के विकास में सहायक होगी ऐसा विश्वास है।

❍❍❍

दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी सम्मेलन

हिंदी संगम फाउंडेशन, भारत और यूएसए द्वारा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली, के सक्रिय सहयोग से हिंदी दिवस के अवसर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के उत्तरी परिसर में स्थित श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज में एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया।

सम्मेलन का उद्घाटन भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की महानिदेशक श्रीमती रिवा गांगुली दास ने श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज के मुख्य सभागृह में किया। श्रीमती रिवा गांगुली दास ने कहा कि ''भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् हिंदी शिक्षण के लिए देश-विदेश में अनेकों कार्यक्रम संचालित कर रहा है।''

समारोह में विभिन्न विश्वविद्यालयों और विदेशों से पधारे वक्ताओं ने भाग लिया। हिंदी संगम फाउंडेशन के सभापति पद्म भूषण आचार्य लक्ष्मी प्रसाद यरलागड्डा ने कहा कि ''अहिंदी भाषी क्षेत्रों में शिक्षार्थियों की समस्याओं के अनुरूप प्रौद्योगिकी की मदद से पाठ्य सामग्री का निर्माण कर हिंदी शिक्षा को समग्र विश्व में विस्तारित करना चाहिए।'' कॉलेज के प्राचार्य डॉ. जसविंदर सिंह तथा अन्य आमंत्रित अतिथियों ने हिंदी शिक्षण को समृद्ध बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

सम्मेलन के तीसरे भाग में चार समांतर सत्र आयोजित किये गए जिनका उद्देश्य हिंदी शिक्षण के अनेक पहलुओं पर विशेषज्ञों के विचार प्रस्तुत करना और उन पर चर्चा करना था। प्रथम और द्वितीय समांतर सत्र के दौरान इन दो विषयों पर चर्चाएँ हुईं: 'सक्षम संसाधन निर्माण और उच्च स्तरीय हिंदी कार्यक्रमों का विकास' तथा 'हिंदी भाषा और संस्कृति शिक्षण के प्रति अत्याधनिक प्रौद्योगिकी से युक्त दृष्टिकोण। प्रथम सत्र में विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव डॉ. विनोद कुमार मिश्रा ने उच्च स्तरीय हिंदी पाठ्यक्रम के निर्माण में अपने सचिवालय के कार्यों का उल्लेख किया। दूसरे सत्र में सोशल मीडिया में हिंदी की स्थिति पर शोध कर चुके इंदौर से आए विशेषज्ञ डॉ प्रकाश हिंदुस्तानी और बैंक ऑफ बड़ौदा के डॉ जवाहर कर्णावत ने तकनीक और प्रौद्योगिकी के प्रयोग से हिंदी को समृद्ध करने संबंधी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये। तीसरे और चौथे सत्र के विषय थे: उच्च स्तरीय हिंदी भाषा और संस्कृति प्रवीणता के लिए शिक्षण नीति और संस्थागत रचनाशीलता एवं सहभागिता। तीसरे सत्र में दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्रति कुलपति डॉ. सुधीश पचौरी ने हिंदी शिक्षण में भाषागत समस्याओं पर चर्चा करते हुए संकेत दिया कि भाषा विज्ञान में नए शोध करने की दिशा में जोर होने चाहिए। इस सत्र की अध्यक्षता प्रोफेसर गैब्रिएला इलेवा ने की। चौथे समांतर सत्र की अध्यक्षता करते हुए स्टारटॉक, अमेरिका के निदेशक अशोक ओझा ने अपने दो संस्थाओं, हिंदी संगम फाउंडेशन और युवा हिंदी संस्थान द्वारा चलाये जा रहे त्वरित हिंदी पाठ्यक्रमों की चर्चा करते हुए कहा कि भारतीय-अमेरिकी समाज में हिंदी शिक्षा को प्राथमिक कक्षाओं से प्रारंभ करना विशेष लाभकारी है। दोनों संस्थाएं विश्वविद्यालय स्तर पर भाषा-विशेषज्ञों के साथ मिलकर शिक्षण प्रशिक्षण और सामग्री निर्माण का कार्य कर रहीं है। इस तरह के कार्यो का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार होना चाहिये। सत्र में लार्सन एवं टूब्रो के संचार निदेशक जयराम मेनन ने बहुराष्ट्रीय उद्योगों में हिंदी के प्रयोग को उपयोगी बताया और कहा कि वह समय दूर नहीं जब कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस सच्चाई को स्वीकार कर हिंदी को अपना लेंगी।

❍❍❍

अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव

शशिप्रभा तिवारी

पिछले तीन सालों से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। इस साल इस महोत्सव में छह देशों के कलाकारों ने शिरकत किया। महोत्सव का उद्घाटन परिषद् के अध्यक्ष डॉ लोकेश चंद्र और निदेशक रीवा गांगुली दास ने दीप प्रज्वलित कर किया। निदेशक रीवा गांगुली दास ने कहा कि रामायण महाकाव्य की हर प्रस्तुति इसकी समकालीनता, वास्तविकता और प्रतीकों के कई स्तरों की पहचान की है। कलाकार और कथाकारों ने समय-समय पर इसी पुर्नव्याख्या की है।

रामायण महोत्सव का आयोजन राजधानी दिल्ली के कमानी सभागार में किया गया। महोत्सव का आरंभ इंडोनेशिया के कलाकारों की प्रस्तुति से हुआ। यह महोत्सव 11-13 सितंबर तक चला। इस दल में जकार्ता के विराग संधी समूह के पुरूष कलाकार शामिल थे। उन्होंने रामायण के मुख्य पात्र हनुमान दूत की कथा आंगुर पाणी को पेश किया। इस क्रम में हाथ ही मुद्राओं, आंखों और मुख के भाव व पैरों के काम के जरिए प्रसंग को प्रस्तुत किया। पहली शाम की दूसरी पेशकश कर्नाटक कला दर्शिनी के कलाकारों की थी। उन्होंने श्रीनिवास संस्थान के निर्देशन में पंचवटी प्रसंग को पेश किया। उन्होंने सीता हरण, जटायु वध और अशोक वाटिका के दृश्यों को चित्रित किया। यक्षगान शैली में प्रस्तुत कलाकारों का गायन और नर्तन मार्मिक था।

महोत्सव की दूसरी शाम मलेशिया के कल्पना डांस थिएटर के कलाकारों की पेशकश अद्भुत थी। उनकी कोरियाग्राफी, नृत्य से लेकर संगीत तक सभी संतुलित, आकर्षक और मोहक

था। कल्पना डांस थिएटर के कलाकारों ने संगीता नमशिवायम के निर्देशन में सीता स्वयंवर भरतनाट्यम शैली में पेश किया। इसकी व्याख्या भावे सुब्रह्मण्यम और नृत्य रचना पीटी नरेंद्रन ने किया था। कल्पना डांस थिएटर की नींव संगीता नमशिवायम ने रखा। उन्होंने प्रतिष्ठित नृत्य संस्थान कलाक्षेत्र से नृत्य सीखा। वह कहती हैं कि भारतीय परंपरागत नृत्य शैली की भाषा बहुत सुदृढ़ है। किसी भी कहानी को कहने के लिए भारतीय नृत्य शैली में रस, मुद्रा, अभिनय, भाव का प्रयोग किया जाता है, जो इस नृत्य शैली को और समृद्ध बना देता है।

रामायण महोत्सव की दूसरी शाम यानि 12 सितंबर को कल्पना डांस थिएटर के कलाकारों ने सीता स्वयंवर पेश किया। भरतनाट्यम की परंपरागत मार्गम का अनुसरण करते हुए, पुष्पांजलि से मंगलम तक की परंपरा का सुंदर निर्वहन करते हुए, प्रसंग को प्रस्तुत किया गया। शुरूआत में नृत्यांगना संगीता नमशिवायम ने 'श्री राम अवध नृपम' रचना पर आधारित नृत्य पेश किया। इसके बाद, विश्वामित्र मुनि के आश्रम, सीता व सखियों की गतिविधि, राम-सीता का प्रथम दर्शन, सीता स्वयंवर को नृत्य में पिरोया गया। जहां जतीस के बोलों पर सीता और राम के पहले मिलन को दर्शाया गया। वहीं, राम पर मोहित सीता के भावों को नृत्यांगना ने रचना 'यर बडेइन्ने नान्नै सखिए' के बोलों पर पेश किया। सरगम के बोलों और रचना 'श्रीराम सीता कल्याण पादं' पर सीता स्वयंवर के प्रसंग को चित्रित किया गया। तिल्लाना के बोलों पर भरतनाट्यम के विशुद्ध तकनीकी बारीकियों को लयात्मक गतियों के जरिए पेश किया गया। वहीं 'कल्याण वैभवम्' मंगलम के जरिए नृत्य प्रस्तुति का समापना हुआ।

इस संध्या की दूसरी प्रस्तुति मॉरीशस के कलाकारों की थी। अनंत नवरंग आर्ट के कलाकारों ने 'राम भरत सम भाई' नाट्य अभिनय के जरिए पेश किया। रामलीला की लोक नाट्य शैली में प्रस्तुत इस नाट्य में कलाकारों ने गुरू वंदना, राम-लक्ष्मण संवाद, राम-भरत संवाद, भरत द्वारा राम के खड़ाऊं का अभिषेक आदि प्रसंगों को खास तौर पर पेश किया। प्रस्तुति में संगीतकार व गायक रवींद्र जैन के गाए गीत 'राम भक्त ले चला रे राम की निशानी' और गायक जगजीत सिंह के भजन 'हे राम! ज्ग में सांचो तेरो नाम' को शामिल किया गया था।

मॉरीशस के इस नाट्य दल के सदस्य अनिल देन्हू कहते हैं कि हमारी प्रेरणा राम हैं। राम विष्णु अवतार हैं। राम का जीवन हमें अपने अंदर सुधार लाने को प्रेरित करता है। रामचरित मानस ग्रंथ का हर कांड गागर में सागर के समान है।

महोत्सव के तीसरी संध्या श्रीलंका वे अरू श्री आर्ट थिएटर के कलाकारों के नाम रही। अरूंधती श्रीरंगनाथन के नेतृत्व में कलाकारों ने रामायण से जुड़े विभिन्न प्रसंगों को पेश किया। इसमें राम, सीता, सखी, जनक संवाद, कैकई-मंथरा, सूर्पणखा-रावण आदि संवादों को नृत्य में पिरोया गया। इस प्रस्तुति में भरतनाट्यम, कथक व कैंडियम-उदरत नटम नृत्यों का सुंदर समन्वय था। कलाकारों का आपसी समन्वय मोहक था। नृत्य रचना के आरंभ में राम का प्रवेश होता है। इसके लिए रचना 'कुजतं रामरामेति मधुरम्' का चयन किया गया था। अगले दृश्य में सीता और सखियों की क्रीड़ा व मयूर के नृत्य को नृत्यांगनाएं पेश करती हैं। कथक की मयूर की गत के साथ तराने में पिरोए तोड़े-टुकड़े व चक्रदार तिहाई को नृत्यांगना ने प्रभावी अंदाज में पेश किया। वहीं रावण का परिचय रचना 'जय-जय परम भक्त रावण' के जरिए दिया जाता है। वहीं सूर्पणखा व रावण के संवाद के साथ प्रस्तुति का समापन हो जाता है।

समारोह का समापन नेपाल के संगीत एवं नृत्य अकादमी की प्रस्तुति से हुआ। काठमांडू के इन कलाकारों ने सीता स्वयंवर प्रसंग को विशेष रूप से पेश किया। इसका निर्देशन माधव प्रधान ने किया। नौ दृश्यों में पिरोई ई, इस पेशकश में सीता के चरित्र का प्रमुखता दी गई थी। सुरसा श्रेष्ठ ने सीता की भूमिका को निभाते हुए, गीत 'सुनो हे, सखी सहेली संगीत मन को' पर मोहक नृत्य पेश किया। कुछ अन्य गीत 'मिथिलानंदिनी जनक दुलारी' व आनंद भए सारे जग मा' को भी प्रस्तुति में शामिल किया गया।

❍❍❍

ईमानदारी एट जिम्मेदारी डॉट कॉम

हरीश नवल

बोर्ड की परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं और अब पर्चे जांचने का घोर मौसम चल रहा था। दसवीं कक्षा का अंग्रेजी का एक प्रश्न-पत्र मैंने बनाया था, अत: मुझ पर उसके मुख्य परीक्षक होने का दायित्व था। मेरे अंतर्गत स्कूलों के 28 अध्यापक परीक्षक के रूप में काम कर रहे थे। जो अध्यापक सालों-साल स्कूलों में विषय को पढ़ाते हैं, उन्हें प्रश्न-पत्र बनाने का मौका कम मिलता है और जो मुझ जैसे कॉलेज के कम अनुभव वाले प्राध्यापक हैं, उनसे स्कूल बोर्ड के प्रश्न-पत्र बनवाए जाते हैं—यह बात कुछ अटपटी थी पर यही चलता है। 28 अध्यापकों की बैठक बुलाने से पहले मुझे प्रश्न-पत्र के उत्तर सही रूप में क्या हों तथा जांचते वक्त क्या-क्या ध्यान में रखा जाए, मैं इसकी तैयारी में व्यस्त था और परेशान था। मेरे परिचितों के बच्चे जो उसी कक्षा के विद्यार्थी थे, पर्चे करके छुट्टियों में बाहर घूमने चले गए थे, अत: मैं उनसे पूछ नहीं पाया था कि स्कूल के विद्यार्थियों की मानसिकता क्या होती है, प्रश्न-पत्र के उत्तर लिखते समय उन पर क्या-क्या दबाव होते हैं। अत: अकेला ही जूझ रहा था कि परीक्षकों के लिए क्या निर्देश तय करने हैं...

...तभी मेरे स्कूल के सहपाठी डॉ. विजय कुमार भाटिया का फोन आया कि वे मुझसे अकेले में मिलना चाहते हैं, बेहद जरूरी काम है। मेरे बताने पर कि मैं घर में अकेला ही हूँ, पत्नी बच्चों के साथ मायके गई हैं, उन्होंने मेरे यहां एक घंटे में आने का तय कर लिया।

डॉ. विजय कुमार भाटिया एक घंटे के बाद मेरे स्टडी में घनघोर रूप से हाजिर थे—घनघोर यूँ कि वे कमला नगर से टिक्की-समोसे और मेरी पसंद की मिठाई लाए थे, साथ ही एक बंडल भी उनके साथ था। डॉ. भाटिया एक कॉलेज में हिंदी पढ़ाते हैं। हम दोनों दरियागंज के एक स्कूल में सहपाठी थे। मैं अंग्रेजी डिबेट और वह हिंदी वाद-विवाद की टीमों में थे। मैं उनके साथ अच्छी हिंदी और वे मेरे साथ अंग्रेजी नहीं सीख पाए थे। वे अंग्रेजी में किसी से ठीक से वार्तालाप नहीं कर पाते थे। जब भी स्कूल के दिनों में उनसे कहता कि मुझसे अंग्रेजी में बातचीत किया करो ताकि अभ्यास हो जाए, पर वे यही कहते थे कि ''हमारे देश के कितने ही महान हिंदी लेखक प्रोफेसर अंग्रेजी नहीं जानते थे पर उनका बड़ा नाम है। मैं भी नहीं जान सका तो क्या?''

समोसे, टिक्की और गजरैला से निपटने के बाद मैंने प्रश्नवाचक दृष्टि से डॉ. भाटिया की ओर देखा। उनका उत्फुल मुख तनिक सा मुरझाया और मेरे समीपस्थ होते हुए उन्होंने मुख खोला, ''बंधु, तुम मेरे बीस वर्ष पुराने दोस्त हो, मेरे सहायता कर दो, मैं जिम्मेदारी के बोझ से दबा हुआ हूँ—तुम बोझ कम कर दो। तुम तो अंग्रेजी लिटरेचर के पर्चे परख रहे हो और मुझे अंग्रेजी लैंग्वेज वाले पर्चे चैक करने हैं, उसी बारे में सहायता की दरकार है।''

मैं चौंक गया, ''डॉ. भाटिया—अंग्रेजी लैंग्वेज? अंग्रेजी के पर्चे आपको चैक करने हैं, आपको? क्यों, हिंदी के नहीं मिले?'' ''मिले थे बंधु, वो तो चैक करके बोर्ड में जमा करवा दिए—अब अंग्रेजी के मिले हैं।'' उन्होंने उत्तर दिया। ''पर तुम्हारे पास ये पर्चे आए कैसे? तुम तो...''। ''हाँ मैं तो हिंदी का प्रोफेसर हूँ, यही नं?'' ''बंधु'', वे बोले, ''मैंने कहा न जिम्मेदारी का दबाव, इन्हें चैक करना मेरी जिम्मेदारी है, इसे पूरा करना ही है, मैं एक ईमानदार जिम्मेदार व्यक्ति हूँ, यह तुम जानते ही हो।'' उन्होंने कहा।

''पर कायदे से तुम्हारे पास ये पर्चे आ ही नहीं सकते, क्या बोर्ड

सम्पर्क: संपादक: गगनांचल, मो:- 9818988225

ने पर्चे भेजने से पहले तुम्हें सहमति-पत्र भरने के लिए नहीं भेजा था? मेरी समझ में कुछ आ नहीं रहा, समझ आ रहा है तो यही कि जो मुश्किल से कभी चाय पिलाता है वह मेरे लिए समोसे-टिक्की क्यों लाया है।'' मैंने तनिक कड़वाहट से कहा।

डॉ. भाटिया विनीत स्वर में बोले थे, ''बंधु! सहमति-पत्र आया था। एक बड़ा खाकी लिफाफा, वही बोर्ड का लिफाफा, जैसे आता है, आया था। मैंने खोला। मेरे नाम पर अंग्रेजी लैंग्वेज वाला पेपर चैक करने का अनुरोध था। मुझे गौरव मिला था, मैंने स्वीकार कर लिया, सहमति-पत्र पर 'हाँ' लिख कर वापिस भेज दिया, उन्होंने छह सौ छिअत्तर पर्चों का बंडल भेज दिया।'' यह कहकर उन्होंने अपने साथ लाए बंडल की ओर संकेत किया।

मैनें पूछा, ''पर सहमति-पत्र के साथ जो परफोर्मा भरना होता है, उसमें तो अपनी योग्यताएँ लिखकर भेजनी होती है, तुमने सब सच ही लिखा होगा?''

''क्या बात करते हो बंधु! मैं एक ईमानदार और जिम्मेदार प्राध्यापक हूँ—मैंने परफोर्मा भरा था, उस पर अपनी योग्यताओं में साफ-साफ लिखा था—हिंदी में एम.ए., पी-एच.डी.। अपने घर के पते में मैंने सच लिखा था, 'डॉ. विजय कुमार भाटिया, हिंदी प्रवक्ता...'' वे बोले थे।

मैंने प्रतिवाद के से भाव से पूछा था, ''पर तुमने स्वीकार क्यों किया, तुम तो जानते थे कि गलती से आया होगा? किसी से सलाह ले लेते, पूछ लेते कोई और उस नाम का तो नहीं?''

''बंधु! पूछ कैसे सकता था, लिफाफा तो खुल चुका था। उसमें साफ-साफ लिखा था कि यह कान्फीडेंशल है, अब जो कान्फीडेंशल है उसे मैं सार्वजनिक कैसे कर देता, भई गोपनीयता की रक्षा तो करनी होती है?''

''पक्का! तुम्हारे नाम से आया''?— मैं फूट-सा पड़ा।

''हाँ, हाँ बंधु मेरे नाम से ही आया, मेरे कॉलेज के पते पर आया, रामप्यारा चपरासी ने मुझे दिया था, मैंने खोल लिया और सच-सच फॉर्म में भर दिया, अब बोर्ड वालों को आपत्ति नहीं हुई तो तुम्हें...तुम्हें क्यों हो रही है। बोर्ड में भी मेरे जैसे ईमानदार और जिम्मेदार अफसर होते हैं—सब कुछ देख-पढ़ कर ही तो अंग्रेजी के पर्चे भेजे, वे नहीं भेजते, मैं तुम्हारे पास फिर आता ही नहीं'' वे आवेश से बोले थे।

''यार तुम्हें स्वीकार नहीं करना था। क्या जरूरत थी? तुम जानते थे यह गलत है।'' मैंने कहा था।

''भई गलत कहाँ, मैं कोई अंग्रेजी के पर्चे लेने तो बोर्ड में गया नहीं था, उनका अनुरोध आया मैंने स्वीकार कर लिया, उनका आदेश था गोपनीय रखो, सो गोपनीय रखा। बाकी रही बात जरूरत की तो बंधु अपने को तो हमेशा जरूरत है, तुम्हारे तरह अंग्रेजी नहीं पढ़ा हूँ मैं। ग्यारह साल से किराए पर रह रहा हूँ—बच्चे पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं, माता-पिता मेरे साथ रहते हैं, दो बहनों की शादी होनी है, यहाँ टीचर को कौन ऊपर की आमदनी है, हिंदी पढ़ाता हूँ जिसकी ट्यूशन कोई लेता नहीं, तुम्हारी तरह अंग्रेजी की ट्यूशनें कहाँ हैं, जो कुछ अतिरिक्त कमाई है बंधु, यह पर्चे और परीक्षा के दिनों में इनवीजिलेशन ही है, फिर क्यों न स्वीकार करता? यह कोई गलत काम नहीं, सम्मानजनक है।''

मुझे लगा कि अब मैं कुछ न कहूँ और उनकी मदद करूँ। उन्होंने अंग्रेजी का प्रश्न-पत्र और उनके मुख्य परीक्षक से मिली हिदायतों की सूची मेरे समक्ष रख दी जिनके अनुसार पर्चे चैक होने थे।

मैंने भाटिया जी के सामने प्रस्ताव रखा कि क्या मैं ये पर्चे जाँच दूँ? इस पर भी उन्होंने अपनी ईमानदारी और जिम्मेदारी की जिल्द चढ़ाते हुए कहा कि वे अपना काम स्वयं करेंगे, किसी से करवाना बेशक गलत है।

मैंने जितना, जैसे बता सकता था, समझा सकता था, समझाया, पता नहीं कितना समझे। हाँ उनके बंडल की उत्तर-पुस्तिकाओं में कुछ उनके सामने पढ़ कर राय दी कि इन पर कितने अंक देने चाहिए। वे मेरा शुक्रिया अदा कर संतुष्ट भाव से जाते हुए मुझसे कह गए ''बंधु! न्याय करूँगा, तुम्हें याद रखूँगा, तुम तो दो साल के लिए स्टडी लीव लेकर सुना है पी-एच.डी. करने लंदन जा रहे हो, भई अच्छा किया भारत में अंग्रेजी की शिक्षा ली, हमने तो हिंदी से पी-एच.डी. की थी, खुश रहो, दिल्ली या लंदन जहाँ भी रहो। हमें तो भारत में ही रहना है।'' जाते-जाते उन्होंने अंग्रेजी में मुझसे विदा लेते हुए 'बाई बाई' भी कहा...

...वक़्त का पहिया समय की सड़क पर अपनी सधी रफ्तार से चलता रहा, मैं लंदन विश्वविद्यालय से पढ़ाई करके लौटा, कॉलेज ज्वाइन किया और ज़िंदगी का वही ढर्रा जारी हो गया, जैसे पहले था। विश्वविद्यालय के कान्वोकेशन दिवस पर एक

दिन डॉ. विजय कुमार भाटिया से अचानक मुलाकात हो गई। मुझे देख वे आह्लादित हो गए और जोर से गले मिल कर बोले, ''बंधु और भी स्मार्ट हो गए हो, लंदन से लौटकर वहीं के लग रहे हो। ट्रीट बनती है।''

मैंने कहा, ''जरूर, चलो, कॉफी हाऊस में बैठते हैं।'' कॉफी पीते और बर्गर खाते हुए हम दोनों की गपशप चली। मुझे विगत का ध्यान आया, मैंने पूछा, ''डॉ. भाटिया, वो तुमने उस बार जो अंग्रेजी के पर्चे लिए थे, फिर उनका क्या हुआ, सब ठीक रहा?''

''हाँ, बंधु! बहुत ठीक रहा, ज्यादातर विद्यार्थियों के नंबर बीच के आए, बस वही फेल हुए जिन्होंने एक-आधे प्रश्नों के ही उत्तर दिए—बाकी को तो मैं पास करता रहा। मेरा रिजल्ट बहुत अच्छा रहा, बोर्ड वाले भी खुश थे, तुमने प्रैक्टिकल सिखा दिया था बंधु, कमाई भी अच्छी रही।'' उन्होंने उत्तर में कहा।

''तो डॉ. साहब अब तो हिंदी के पर्चे दिख रहे होंगे न!'' मैंने हँसते हुए पूछ लिया।

वे बोले, ''वो तो मैं देखता ही हूँ, पर अंग्रेजी के भी देखता हूँ।''

मेरे होश उड़ने को हुए, ''देखते हो, अभी तक, वो कैसे?'' मैंने प्रश्न रखा।

''बंधु, तुम तो जानते ही हो, जब बोर्ड में परीक्षक बनाया जाता है तो उसे तीन साल तक तो यह जिम्मेदारी दी ही जाती है अगर बाकी सब ठीक हो, तो अब यह मेरा तीसरा साल है, आनंद आ रहा है, तुम्हें तो पता ही है कि मैं...''

...मैंने बीच में काटते हुए कहा, ''एक ईमानदार और जिम्मेदार नागरिक हूँ।''

और... मेरे हाथों जो उड़ने थे। उड़ गए ...।

❍❍❍

मॉरीशस के रामदेव धुरंधर को साल 2017 का श्रीलाल शुक्ल इफ्को साहित्य सम्मान

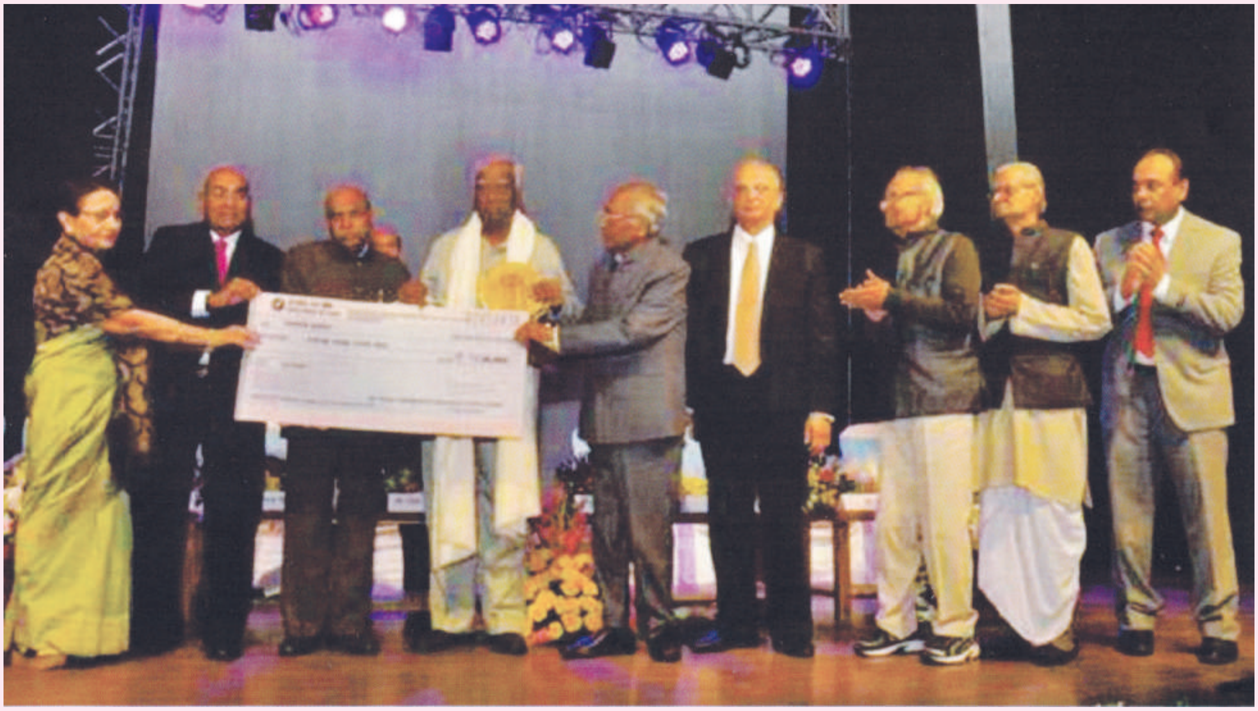

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

....

....

....

....

पत्रिका भिजवाने का पता

....

....

....

....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष................	एक वर्ष	₹ US$	500 100	(भारत) (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹ US$	1200 250	(भारत) (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय पुस्तक विक्रेता		10% 25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक ....

रु./US$ .... बैंक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम अधिकारी (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....

नाम...

पद...

दिनांक ....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 40 वर्षों से हिन्दी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाटयकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698	वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
महानिदेशक	:	23378103 23370471	भारतीय सांस्कृति केंद्र अनुभाग	:	23379274
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228 23378662	अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
			अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
उप-महानिदेशक (पी)	:	23370784	अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
वरिष्ट कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386			
प्रशासन अनुभाग	:	23370834	हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849			

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

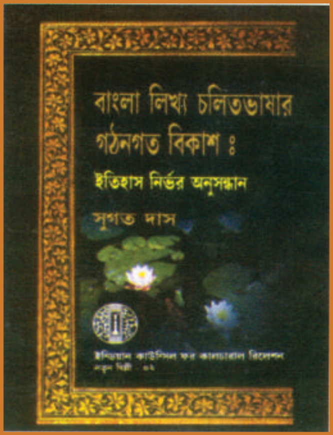

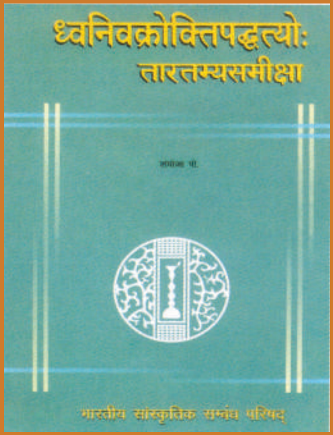

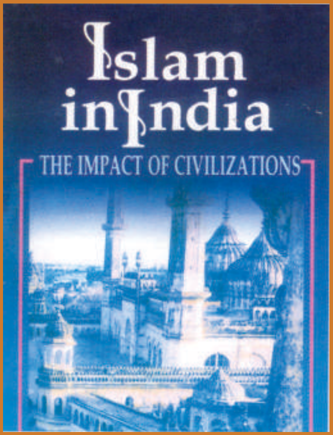

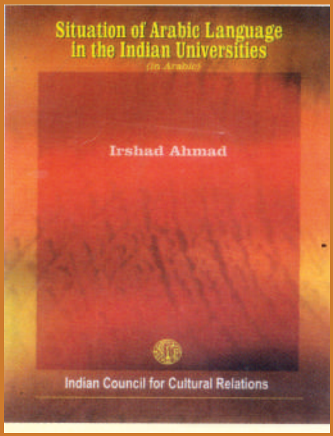

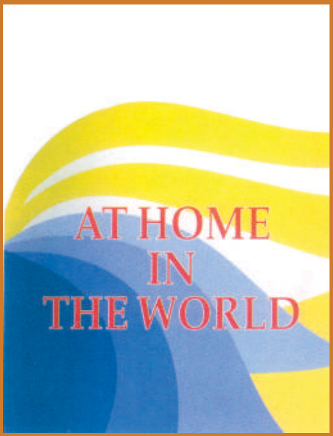

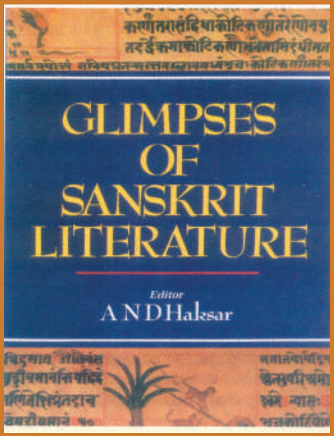

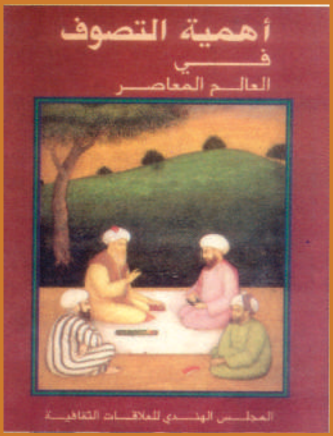

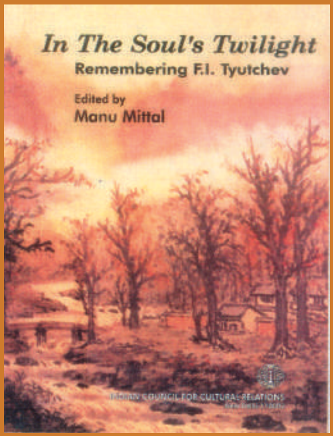

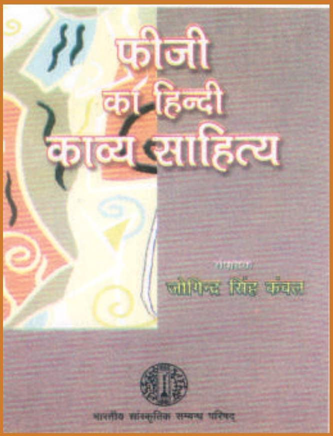

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccrindia.net